हिन्दी-गौरव-ग्रथमालाका २५ वाँ ग्रंथ।

सत्याग्रह और असहयोग

[वर्तमान आन्दोलन पर नई कल्पना, नये विचारों द्वारा अपूर्व प्रकाश डालनेवाला, बड़ी ओजस्वी भाषामे लिखा हुआ सर्वथा मौलिक ग्रंथ।]

लेखक,
आयुर्वेदाचार्य—
श्रीयुत् पं० चतुरसेनजी शास्त्री।

प्रकाशक,
गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार,
कालबादेवी—बम्बई।

प्रथम संस्करण।

मूल्य—
सादी जिल्द १॥।) रु०
पक्की जिल्द २।) रु०

कार्तिक १९७८

प्रकाशक—

उदयलाल काशलीवाल,
गाँधी हिन्दी-पुस्तक भंडार;
कालबादेवी—बम्बई ।



मुद्रक,

चिंतामण सखाराम देवळे,
'मुंबई-वैभव प्रेस,' सँढर्स्ट रोड,
गिरगाँव—बम्बई ।

समर्पण ।

जिसने मुझे विद्वान् समझ कर पूजा, पर जिसके आचारके आगे मेरी तुच्छ विद्याका मस्तक झुक गया; जो अपने गाँवका मुकट-हीन राजा हो कर भी देशका अकिंचन सेवक है; जो वैश्य होकर ब्राह्मण-दुर्लभ त्यागका उदाहरण है; जिसने धनी होकर भी मेरा सच्चा आदर पाया है—

अपनी यह पुस्तक उसकी बिना ही आज्ञा अपनी अन्तरात्माकी इच्छासे उसीको समर्पित करता हूँ।

—लेखक

भूमिका।

अबसे दो वर्ष पहले प्राचीन कालके महाराज्योंकी राजधानी दिल्लीके मस्तक पर वहाँके वीर बच्चोंके रक्तका अभिषेक हुआ और नव्य भारतने गर्दन उठा कर उत्थानके उस प्रारम्भको देखा तब मैं उसी अजमेरमें था जिससे दिल्लीके प्रथम पतनका एक अमिट सम्बन्ध है।

मै तब सत्याग्रहमें शरीक न हुआ। क्योंकि वधिकके साथ ऊँची गर्दन करके वधस्थल पर जाना मेरे लिये अशक्य था। अपनी इस असहन-शीलता पर मैं हाय करता हूँ। मेरे स्वभावमें उग्र क्षात्रत्व है। मुझे हँसते हँसते मरनेवालों पर डाह होती है और मैं भगवानसे वैसे बल-प्राप्तिकी प्रार्थना करता हूँ।

मै सत्याग्रहमें शरीक न हुआ यह बात कुछ दूसरी थी। पर मेरे रोम-रोममें सत्याग्रह भर रहा था और मै इसी उन्मादमें उन्मत्त था। बराबर दिल्ली, अहमदाबाद और पंजाबसे उड़ती हुई गर्म अफवाहें आ रही थीं। नगर-में गर्म गर्म व्याख्यान हो रहे थे। जोशका समुद्र लोगोंके हृदयोंकी पसलि-योंको तोड़े डालता था। प्रत्येक जबान पर एक बात थी—प्रत्येक हृदयमें एक आग थी—प्रत्येक घरमें एक बेचैनी थी। ये दिन थे जब मैने अपने छोटेसे, गरीब मकानकी छत पर, घोर सन्नाटेकी रातमें, मिट्टीके दियेके धुँधले प्रकाशमें, और दो-पहरकी ज्वलन्त धूपमें तपी हुई टीनके नीचे बैठ कर तन मन झुलसा कर केवल ९ दिनमें सत्याग्रहका खण्ड लिखा था और अघा कर साँस ली थी।

लोगोंने मुझे डराया कि यह पुस्तक राजविद्रोह-पूर्ण है। इसे छाप कर फँस जाओगे। जमाना बुरा है—देख-भाल कर काम करो; मेरे

बुजुर्गोंने कहा—फाड़ डालो, जला डालो—हम लोगोंका काम इस राजनैतिक आगमें कूदनेका नहीं है।

मैं चुप था। मेरे कानमें गोलियोंकी गड़गाड़हट, घायलोंकी चीत्कार, विधवाओंका क्रन्दन गूँज रहा था। छातीमें क्रोधका धूँआ भरा था—दम घुटा जाता था। मैंने वह कापी तत्काल छाप कर प्रकाशित कर देनेको एक मित्र प्रकाशकको भेजी। उसकी वीरता पर मुझे भरोसा था—वह वीर था भी, पर मूर्ख निकला। उसने अपने दुर्भाग्यकी छाया मेरी इस घोर परिश्रमकी पंक्तियों पर डाल दी। समय ढीला पड़ गया।

परन्तु राजनैतिक आकाशमें जो बादल आये थे वे बूदाँ-बूँदी करके फट जानेवाले न थे—मैंने अपनी रद्दीको सँभाल कर रख लिया। बराबर वातावरणकी घमस बढती गई, बादलोंका रंग गहरा होता गया। मेरे जीवनमें एक परिवर्तन हुआ। मैं देहाती आदमी बम्बईका निवासी हुआ। उसके बाद मैं केवल गान्धीको देखता रहा। मैंने उसकी उपेक्षा देखी, मौन देखा, प्रतीक्षा देखी, लोगोंकी निन्दा सुनी, हँसी सुनी। मैंने मित्रोंसे कहा—खबर्दार किसी भुलावेमें न रहना, यह सूखा बादलका टुकडा ऐसा बरसेगा कि जल-थल एक हो जावेंगे। शायद मित्रोंको विश्वास नहीं आया। वे हँसे।

पर मैं उधर ही निशाना साध बैठा, हंटर-कमेटी बैठी, काँग्रेस-कमेटी बैठी। सब हुआ। गाँधी फिर भी चुप रहा। लोग भिन-भिनाये। मैंने कहा—चुप, ठहरो, देखो।

अब गान्धी बोला। उसने गवर्नमेन्टको चैलेंज दिया—उसने भारतके नेतृत्वकी कमान ली। उसी दिन एक अद्भुत घटना घटी। भारतके मात्र तिलक अपना सर्वस्व देकर वीतरागी हुए। गान्धी अब एक-छत्र सेनापति हुए। पहली गर्जना सुन कर भारत चकित हुआ—सरकार हँस पड़ी।

कलकत्तेकी कॉंग्रेसकी घड़ी आई और गान्धीको बीड़ा दे गई ; नागपुरमें गान्धीका अभिषिंचन हुआ । यह लो अब मेह बरसा । अब सॅभलो ।

सदाशय जमनालाल बजाजने पूछा कि तुम क्या इस मेहका तमाशा ही देखोगे । मैंने कहा, हाँ । उन्होंने कहा—यह न होगा । मैने कहा—बाढ़ आने दो । बाढ़ आई और मैने लोहेकी क़लम उठाई । मेरे पास यही एक वस्तु थी । वही मैंने उस आदर्श वणिक्पुत्रकी भेंट करनेकी ठानी । मैंने अपने पुराने सत्याग्रहके पत्रे निकाले । उनकी धूल झाड़ कर उन्हें एक बार पढ़ा । मैंने देखा दो वर्ष प्रथम जो मैं लिख गया हूॅ महापुरुष गान्धी वही अब कहने लगे हैं। मुझे गर्व हुआ—साहस हुआ—उत्साह हुआ । धुॅआधार मेरी क़लम चली । वही मेरी लोहेकी क़लम चली और आज पूरे ९ मासमें इसने विश्राम पाया है ।

इस काममें मुझे कितना कष्ट हुआ वह वर्णन करना अशक्य है । थोड़ी योग्यतावाले पुरुष जो भारी काम उठा लेते हैं उनका कष्ट वे ही समझते हैं । रातों मेरी नींद गायब रही—खाने-पीनेकी खबर न रही—पागलकी तरह आवेशित हो कर लिखता रहा । केवल मेरी स्त्री मेरे परिश्रम और कष्टको समझती थीं और जब तक मैं लिखता था कैसा ही काम हो वे कभी सामने न आतीं और यथाशक्ति न किसीको आने देती थीं । एक-बार उन्होंने हॅसीमें कहा भी—इतने परेशान होकर तो तुम किसी रियासतका प्रबन्ध भी कर सकते थे ।

यह कहना कठिन है, देशको उसके युद्धमें मेरी पुस्तक कहाॅ तक सहायता और तसल्ली देगी । क्योंकि मुझे भय है कि मेरी भाषा तीव्र और चुभनेवाली है । कुछ लोग मुझसे नाराज अवश्य होंगे, पर मै क्या करूॅ, मै वास्तवमें देशकी दशासे दुखी हूॅ । और सत्ताधारियों पर अपनी अन्तरात्माके क्रोधको रोकनेमें सर्वथा अशक्य हूॅ ।

यह मेरे लिए ग्लानि और लज्जाकी बात है कि जब देशके मुझसे भी कमजोर व्यक्ति योद्धाकी तरह लड़ रहे हैं तब मेरे जैसा जहरी आदमी बम्बई जैसे भीषण नगरमें, भेड़ियोंकी प्रकृतिके मनुष्योंके झुण्डमें बनियोंकी तरह दिन काट रहा है।

पर मैं लोहूका घूँट पिये बैठा हूँ। मैं स्वभावसे लाचार हूँ। गुण कर्म क्षत्रियों जैसे न होने पर भी मेरे स्वभावमें उग्र क्षातृत्व है। मुझसे बिना मारे न मरा जायगा। यद्यपि मैं हँसते हुए मरनेवालों पर डाह खाता हूँ और शौकतअलीकी तलवारको सचमुच पागलपन समझता हूँ, पर मेरे भीतर मुझे पराजित करनेवाली प्रवृत्ति बारंबार हुलस रही है कि जब भी वह तलवार नंगी होगी तभी मैं भी इन सिपाहियोंमें अपना नाम लिखाऊँगा।

मुझे विश्वास है—ऐसी ही हिंसक प्रवृत्ति हजारों लाखों भारतीयोंके हृदयोंमें अवश्य है, पर जैसे मैं उसे गला घोंट कर मार डालना चाहता हूँ वैसा ही सब भाइयोंसे भी अनुरोध करता हूँ। हिंसा वास्तवमें तुच्छ है।

जो हो। महापुरुष गान्धी, उनके योद्धा, उनके युद्ध, उनके भक्त और उन्हें समझनेकी इच्छा करनेवोलोंको अभी जो कुछ मैं अपनी उत्तमसे उत्तम भेंट दे सकता था वह यही तुच्छ पुस्तक है। मेरे देश-भाई अभी इसे ही स्वीकार कर मुझे आभारी करें।

२४।१०।२१
बम्बई।

चतुरसेन वैद्य।

विषय-सूची ।

सत्याग्रह ।

पहला खंड ।

असहयोग ।

दूसरा खंड ।

सत्याग्रह ।

पहला अध्याय ।

सत्याग्रहका स्वरूप ।

सत्यमेकाक्षर ब्रह्म, सत्यमेकाक्षरं तप. ।
सत्यमेकाक्षरं यज्ञ, सत्यमेकाक्षरं श्रुतम् ॥

—व्यास ।

सत्याग्रहका अर्थ है आत्मबल । सृष्टिके प्रारम्भसे अब तक इसका प्रयोग व्यक्तिगत विचार-स्वातन्त्र्य या धार्मिक आन्दोलनोंमें समय समय पर किया गया था, पर जबसे धार्मिक जगत् पिछड़ गया और यूरोपके अर्थवादने प्रबलता प्राप्त की तबसे सत्याग्रह या आत्मबलके प्रयोग और उपयोगिताको ससार भूल गया ।

जगत् विकार है, इसमे विरोध रहा है और रहेगा, बल्कि यों कहना चाहिए कि विरोध ही समय समय पर ससारकी पुनरावृत्ति करता रहा है । पहले यह विरोध सत्याग्रह या आत्मबलके स्वरूपमें प्रयोग किया गया था और अब यूरोपके अर्थवादने तलवारके विरोधको जन्म दिया है । आत्मबलका विरोध जितना शान्त, स्थिर और सजीवक था उतना ही यह तलवारका विरोध अशान्त, अतृप्त और हत्यारा है । वास्तवमे विरोध कोई पाप नही है, यदि वह अत्याचार न हो और अत्याचारके विपक्षमें हो ।

विरोध दो विपरीत पक्षोंमे होता है । इनमेंसे यदि एक पक्ष न्याय पर हो तो दूसरा अवश्य अत्याचारी होना चाहिये, क्योंकि अत्याचारके सिवा न्याय

किसीका विरोध नहीं करता। अत्याचारी पक्ष स्वेच्छाचारी—स्वाभिमानी—स्वार्थी—और अविवेकी होता है, इस लिये वह स्वयं सवल और प्रधान बने रहनेके लिये किसी भी प्रकारकी सामाजिक, धार्मिक या अन्य शृंखला या उत्तरदायित्वकी परवा नहीं करता। उसे अपने मार्गमें, न्याय, दया, विचार और त्यागकी अपेक्षा नहीं रहती और इसी लिये आत्मवल उसका विरोध करता है, क्योंकि वह परोपकार और सार्वजनिक हितकी दृष्टिसे न्याय, दया, विचार, त्याग और सामाजिक उत्तरदायित्वोंको वनाये रखना चाहता है। अब वह विरोध करती वार अपने इन न्याय, दया आदि स्वाभाविक ध्येयोंकी उपेक्षा करके अत्याचारीके विरोधका उत्तर हूवहू उसीके से अत्याचारसे दे तो उसे न्याय, दया या सार्वजनिक स्वार्थोंके पक्षका अधिकार नहीं रहता—वह दुराग्रह या अत्याचार ही कहाता है, क्योंकि वह विपक्षीके जिन दुर्गुणोंको घृणा करता है उन्हींका अनुसरण भी करता है।

वास्तवमें जैसे चोरीका दण्ड चोरी नहीं है, खूनका दण्ड खून नहीं है, पापका दण्ड पाप नहीं है उसी तरह अत्याचारका दण्ड भी अत्याचार नहीं है।

अत्याचारीसे यदि कोई न्यायका पक्ष लेकर युद्ध करना चाहे और उस युद्धमें वह स्वयं भी अत्याचार करे तो वहुत करके उसकी विजय नहीं होगी। किन्तु यदि वह अत्याचारीके विरोधमे सत्याग्रह या आत्मवल पर दृढ़ता-पूर्वक जमा रहे तो वह निश्चयसे विजयी होगा। क्योंकि अत्याचार प्राय पशु-वलके वढ़ जानेसे होता है और वह उच्छृंखल तथा अनियंत्रित होनेके कारण अपने पशु-वलके प्रयोग और उसके आयोजनमें वड़ी भारी स्वाधीनता और सुभीता रखता है। किन्तु न्यायके पक्षपातीको वे सव साधन तथा सुभीते नहीं प्राप्त हो सकते—वह वहुत कुछ मुकाविलेमें घटिया, कमजोर और मुँहताज रहेगा। एक तो वह मुकाविलेमें सव पदार्थोंको उपलब्ध ही नहीं कर सकेगा, दूसरे वह प्राप्त वस्तुओंका उतनी सुविधासे उपयोग नहीं कर सकता, क्योंकि अत्याचार वास्तवमें उसका ध्येय सिद्धान्त तो है नहीं, प्रत्युत उसकी दृष्टिमें घृणित है—वह तो केवल अत्याचारके नष्ट करनेको पत्थरसे पत्थर मारनेकी नीतिका अवलम्वन कर रहा है, अत एव वह पशु-वलमे सदैव निर्वल वना रहेगा और हारेगा। इसके विपरीत अत्याचारीमें आत्मवल नष्ट हो जाता है, क्योंकि न्याय, दया और लोक-हितकी कोमल वृत्तियाँ नष्ट हो जाने पर ही कोई अत्याचारी वना है और यही आत्मवलको पुष्ट करनेवाली गिजा है।

उधर सत्याग्रहीका आत्मवल बढ़ जाता है, क्योंकि उसका आन्दोलन ही आत्मबल पर है। इस लिये सत्याग्रही अवश्य ही अत्याचारी पर विजय प्राप्त कर सकता है।

विरोध कई प्रकारका है। विरोधके लिये यह आवश्यक वताया गया है कि वह अपनी विपक्षी शक्तिकी टक्करका वजन अवश्य रखता हो—चाहिए तो उससे अधिक, पर अधिक नहीं तो बरावरीकी तो टक्कर होनी ही चाहिए। इतना होने पर भी यह आवश्यक नहीं कि विजय उसीकी होगी, क्योकि जो अपने वलको अधिक कौशलसे प्रयोग करेगा वही विजयी होगा। पर यह नियम सब प्रकारके सजातीय पशुवलके लिये ही है। जहाँ अत्याचारका विरोध अत्याचारसे किये जानेकी निकृष्ट पद्धति है वहाँ एक तो समान वल होना ही कठिन है, दूसरे होने पर भी विजयमें सन्देह है, कारण पशु-वलके उपयोगके उत्तम कौशल अत्याचारीहीको याद हो सकते हैं। किन्तु विजातीय विरोधके लिये समान असमान कुछ नहीं हैं—एक मच्छर सत्याग्रही एक दुराग्रही अत्याचारी हाथी पर निश्चय विजय प्राप्त करेगा। वहाँ तुल्य वल-विरोधका प्रश्न नहीं रहता, बल्कि तुलना ही नहीं हो सकती। तुलना होती है सजातीय द्रव्योंमें। अत्याचार अत्याचार एक से हैं, इनमें यह रियायत नहीं होगी कि थोडा अत्याचार न्याय पक्षवालोंका है और वडा अत्याचार अन्याय पक्षवालोंका है, इस कारण न्यायकी विजय होनी चाहिए। नहीं। जहाँ अत्याचार अधिक होगा वहीं विजय होगी। और यह निश्चय है कि अत्याचार अत्याचारीके ही पास अधिक होगा, इस लिये विजय उसीकी होगी। क्योंकि मुकाविला अत्याचार अत्याचारका हो रहा है, न्याय अन्यायका नहीं। पर सत्याग्रह अर्थात् आत्मवल अत्याचारका विजातीय विरोध है। जैसे दो तलवारोंके योद्धा समान होनेमे ठीक है वे गदा या धनुषमे भी वरावर होने चाहिये, कारण एक तलवारका योद्धा चाहे जैसा तीसमारखाँ हो, पर बन्दूक चलानेवाला एक वालक भी उसे पागल कुत्तेकी तरह मार दे सकता है। क्योंकि दोनो विजातीय पद्धतिके योद्धा थे। इस लिये वलमे महत्त्व नहीं रहा, यन्त्रमे रहा। जैसा कि कहा जा चुका है अत्याचारकी अपेक्षा सत्याग्रह उत्तम यत्र है; सत्याग्रही चाहे जैसा निर्बल हो अवश्य जीतेगा।

इसके सिवा आत्मवल धन है, ऋण नहीं। वह अपनी सत्ता किसीको नहीं देता। वह हठ अवश्य है, पर वह हठ किसी पर नैतिक या आत्मिक वोझ नहीं लादता। वह स्वयं अत्याचार सहता है, करता नहीं। इसी लिये पशु-वलमे और इसमे इतना भारी अन्तर पड़ गया है कि जहाँ पशु-वलके सिपाही ज्यों ज्यो क्षय होते हैं त्यों त्यों

पशु-बल क्षीण होता है, क्योंकि सिपाहियोंकी तुच्छ और अस्थाई शरीर-सम्पत्ति ही पशु-बलका मूलधन है। पर सत्याग्रहके सिपाही ज्यो ज्यो क्षय होते हैं त्यो त्यों आत्मबलका पक्ष विजयी होता है। क्योंकि सत्याग्रहका मूलधन अक्षय आत्मबल है, जिसके बाबत हजारों वर्षोंसे प्रसिद्ध है कि "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहन्ति पावकः"—इत्यादि; और जो मोह त्यागने पर प्रवल होता है।

वहुत लोग जो सत्याग्रहके स्वरूपको नही समझते, यह धारणा रखते हैं कि सत्याग्रह निर्वलोंका वल है। पर यह धारणा ग़लत है। यद्यपि जैसा कि पूर्वमे कहा जा चुका है सत्याग्रहीको किसीके वलकी तुलना नहीं करनी पड़ती, इस लिये मच्छर सत्याग्रही भी हाथी दुराग्रहीका सामना कर सकता है। इस प्रकारके उदाहरणोंसे उपर्युक्त धारणा सत्य-सी प्रतीत होती है, पर सिद्धान्त नहीं मानी जा सकती। सत्याग्रह निर्वलोंका वल नहीं है, वास्तवमें निर्बल पुरुष तो सत्याग्रही हो ही नही सकता, और निर्वलोके सत्याग्रहका कोई मूल्य भी नहीं है। उदाहरणार्थ वकरे, गाय, वैल, भेड़ और मुर्गे तथा भाँति भाँतिके पशु-पक्षी कसाइयोंके सामने सदासे सत्याग्रह करते आये है, पर वे कसाइयोंके अत्याचारको स्वयं अत्याचार सह कर भी नष्ट कर नहीं सके। वल्कि लोगोंने इस सत्याग्रहका अर्थ यही समझ लिया कि ये इसी तरह हमारे खानेको कटनेके लिये ही बनाये गये हैं, कानून और न्यायने भी उनकी ओरसे मुख फेर लिया।

वास्तवमें सत्याग्रह आत्मवल है, और आत्मवल महावल है। निर्वल तो क्या साधारण वलवाला पुरुष भी सत्याग्रह नहीं कर सकता। यदि मनुष्यमे तनिक भी निर्वलता हुई तो वह शान्तिके समय चाहे जैसा सत्याग्रही रहा हो, पर समय पर दुराग्रही बन ही जायगा। शक्ति होने पर ही क्षमाका महत्त्व है। किसी कमजोरके मुँह पर यदि कोई जवर्दस्त आदमी तमाचा मार दे और वह कहे कि क्षमा किया तो निश्चय उसकी हँसी उड़ेगी। हाँ वलवान् पुरुष निर्वलके अपराध ही नहीं, अत्याचार भी क्षमाकी दृष्टिसे देखे तो यह महत्ता है और यदि उसी क्षमाके वल पर उसका नियन्त्रण करे—वलावलकी असमता पर ध्यान ही न दे—तो यह आत्मवल है। यही सत्याग्रह है।

दूसरा अध्याय।

सत्याग्रहके प्रकार।

सत्याग्रहके मुख्य प्रकार चार हो सकते हैं। १—व्यक्ति-गत सत्याग्रह, २—सामाजिक सत्याग्रह, ३—राष्ट्रीय सत्याग्रह, और ४—धार्मिक सत्याग्रह।

व्यक्ति-गत सत्याग्रह—योग्यताके अनुकूल विचार-स्वातन्त्र्य और निर्भीकता तथा आत्म-विश्वासके कारण कोई व्यक्ति ससारके सामने किसी भी एक सिद्धान्त या अनेक सिद्धान्तों पर अपनी अलग सम्मति सप्रमाण पेश करे और जनता अविश्वास-परम्पराके प्रवाहमे पड़ कर न उसकी युक्ति सुने, न उसके सिद्धान्त माने, उलटे उसे भी उन सिद्धान्तोंके माननेसे रोके या अपने अन्ध-विश्वास या परम्पराके प्रवाहके साथ ही धर-घसीटना चाहे तो उस अकेले व्यक्तिका सबके साथ युद्ध होगा और वह 'व्यक्तिगत सत्याग्रह' कहलायेगा।

ये सिद्धान्त ऐसे होने चाहिये जो अपनी भिन्नताका प्रभाव समाजकी सगठन-प्रणाली और उसके वाह्य व्यवहार-परम्परा पर कुछ न डाल सकें। ये सिद्धान्त या तो आध्यात्मिक होने चाहिये या भौतिक, अथवा वैज्ञानिक, पर आध्यात्मिक, भौतिक, वैज्ञानिक उसी हद तक हो जब तक कि वे अप्रत्यक्ष सिद्धान्त मात्र हो और समाज उनके सम्बन्धमे किसी न किसी तरहका ऐसा विश्वास रखता हो जो प्राय सुनने और मानने मात्रका हो और प्रत्यक्ष सामाजिक जीवनमें उसका कभी व्यवहारिक उपयोग न होता हो।

सामाजिक सत्याग्रह—यह सत्याग्रह प्राय कुरीतियोंके विपरीत प्रयोगमें लाया जाता है। ससारको बने और समाजको सगठित हुए इतने दिन हो गये, पर आज तक समाजकी शृंखलामें निर्दोषिता नहीं आई। सब प्रकारकी शक्तियोका सदासे विषम वितरण होता रहा है और इसी लिये उसका दुरुपयोग होता रहा है—जिसने असख्य कुरीतियोंको जन्म दिया है, सारा संसार कुरीतियोंसे छलनी हुआ पड़ा है, समस्त समाज कुरीतिकी दुर्गन्धमे सड़ रहा है। देशके महान् पुरुषोंने समय समय पर इन कुरीतियोंके विरोधमे सत्याग्रह किया है और कभी कभी तो उसे चरम सीमा तक पहुँचा दिया है।

सामाजिक संगठनमें जहाँ विषमता हो, परस्परके उत्तरदायित्वकी उपेक्षा की जाय, निर्बलोंका स्वत्व सबल दबा बैठें और समाजकी नियन्त्रण-सत्ता उसमें हस्ताक्षेप न करे; अज्ञानसे या प्रमादसे अथवा अत्याचारसे समाजका कोई अधिकार-योग्य अंश अपने समान या अपनेसे प्रबल वैसे ही अंशकी स्वेच्छाचारिताको सहे और स्वीकार कर ले, पीछे सामाजिक नियन्त्रण द्वारा वही उसका कर्तव्य बना दिया जाय और अत्याचारी अंशको नियमसे वे अधिकार दे दिये जायँ और जीवन-निर्वाहके यत्नों और उनके वैध फलोंके बीचमें हस्ताक्षेप किया जाय या विषम नियन्त्रण किया जाय, यह सब सामाजिक कुरीतियाँ हैं। और किसी व्यक्तिका पक्ष न लेकर ऐसी ही किसी कुरीतिके विरोधमें आत्मबलका ऐसा आन्दोलन किया जाय जिसका न्यायानुमोदित प्रभाव दोनों अंशों—दलित और अत्याचारी—पर न्यायकी रीतिसे पड़े, और सामाजिक बन्धन—नियन्त्रण—तथा उत्तरदायित्वमें कोई आक्षेप योग्य व्यतिक्रम न हो तो उसे सामाजिक सत्याग्रह कहेंगे।

इस प्रकारके आन्दोलनमें स्वेच्छाचारिताका दुराग्रह नहीं होना चाहिये अथवा कोई महान् पुरुष अपनी महत्ता और अधिकार तथा सर्व-प्रियताको ऐसे स्वरूपमें प्रयोग न करे कि वह समाजके भिन्न भिन्न अंशों पर विरोधात्मक प्रभाव डाले। इसके सिवा जो धर्मान्धता, परम्परा तथा जातीयताके ऐसे चिन्ह हैं जो नहीं मिटाये जा सकते, किन्तु परस्पर-विरोधी अवश्य हैं और उनके कारण समय समय पर सामाजिक संगठनमें क्षोभ होता रहता है तो वे भी कुरीतियाँ ही हैं। किन्तु उनका विरोध अत्यधिक सावधानीसे करना चाहिये।

धार्मिक सत्याग्रह—धार्मिक सत्याग्रह बहुत नाजुक है, क्योंकि उसमें जिस अत्याचारका विरोध करना पड़ता है उसका प्रभाव केवल मात्र आत्मा पर ही पड़ता है। दूसरे अत्याचारोंकी तरह वह छुरी या गोलीकी मार नहीं है, वह विषैली मिठाईके जैसा है। सत्याग्रहीको मिठाई पर न ललचा कर और उसे खाना अस्वीकार करके छुरी खानी पड़ती है। दूसरे अत्याचार तो इस लिये असह्य हो जाते हैं कि उनका प्रभाव तन, मन, समाज-सुख और शान्ति सब पर पड़ता है, पर धर्मका अत्याचार एक मात्र मन पर है, वह भी प्रलोभनोंसे भरा हुआ और मीठा है। इसी लिये कहते हैं कि धार्मिक सत्याग्रह सबसे अधिक नाजुक और महत्त्वका है। और अब तक संसारने धार्मिक अत्याचारके विरोधमें ही अधिक सत्याग्रह किया है, क्योंकि (धर्मका) आत्मासे अति निकट सम्बन्ध था—और सत्याग्रह तो आत्मबल ही ठहरा है

जीवनका कोई ऐसा विश्वास-पूर्ण क्रम—जिसे कोई अपनी एहिलौकिक और पारलौकिक स्पृहाओंके तृप्त करनेके लिये उचित समझता हो और जिससे सामाजिकतामें कोई बाधा या उच्छृंखलता नहीं उत्पन्न होती है, फिर भी उसे केवल शरीर पर बलात्कार करनेकी गुंजाइश देख कर ही कोई सत्ता अपने विचार या विश्वाससे हटाया चाहे तो यह धार्मिक अत्याचार है। और उसे चुपचाप सहन करके भी अपने सिद्धान्त पर अटल बने रहना धार्मिक सत्याग्रह है।

राष्ट्रीय सत्याग्रह—अधिकारोंकी बे-तोल शक्ति शासनके रूपमे न्यायके अर्थोंमे मनमाना उलट फेर करने लगे और राजनैतिक छलकी भित्ती पर कानूनका निर्माण हो, कानून बनानेवाले कानून बनाती बार न्यायकी परवा न कर अपने सुभीते और स्वार्थ-रक्षाके रुखको प्रधान-भावसे देखे· और इन सबका यह परिणाम हो कि शासनके व्यवहारमें न्याय और नीतिका अबाधित सहयोग न होकर न्याय कानूनकी अधीनतामे और नीति अर्थसिद्धिकी उत्कण्ठामे चले और उससे प्रजाके मनुष्यत्व और नागरिकताके जो अधिकार मारे जायँ—उन अधिकारोकी रक्षामे प्रजा जो सत्याग्रह करेगी वह राष्ट्रीय सत्याग्रह होगा।

इस प्रकारका सत्याग्रह आत्मासे अधिक दूर होनेके कारण धीरे धीरे प्रयोग करना चाहिये। कारण कि इसमे निर्बल और अनभ्यस्त प्रजाको साथ लेना है—और जब तक प्रजाको सहन-शक्ति और अक्रोधका पूर्ण अभ्यास न हो तब तक उसके पूर्णाङ्ग प्रयोगको रोक रखना या केवल अभ्यासके लिये वारंवार प्रयोग-सहार करना चाहिये।

तीसरा अध्याय।

सत्याग्रहका प्रयोग-संहार।

प्रयोग-सहार शब्द बहुत पुराना है और यह सैनिक पारिभाषिक शब्द है। युद्धके समय अस्त्र फेंकनेको प्रयोग और उसे वापस बुलानेको संहार कहते थे। सत्याग्रह अमोघास्त्र है। साधारण अस्त्रोका प्रयोग और संहार नहीं हो सकता है—केवल अमोघ अस्त्रोका ही हो सकता है। अब यह विचारना है कि सत्याग्रहका प्रयोग और संहार किस प्रकार करना चाहिये।

अमोघ अस्त्रोका प्रयोग-सहार साधारण योद्धा, साधारण तौरसे नहीं कर सकते। उसके लिये उन्हें चिरकाल तक अभ्यास, अध्यवसाय, तपश्चरण और अनुष्ठान करना पड़ता है। तव उन्हे प्रयोग-सहारकी शक्ति प्राप्त होती है। उसके वाद हर किसी पर वे उसका प्रयोग भी नहीं कर सकते। जव अपने विरोधीको वे साधारण शस्त्रसे नहीं दवा सकते तव उन्हें उस अस्त्रका प्रयोग करना पड़ता है—और इस वातका उन्हें ध्यान रहता है कि उनका वह अस्त्र अपमानित न हो—खण्डित न हो—व्यर्थ न हो और हीन-वीर्य न हो।

ठीक इसी प्रकारकी सँभाल और सावधानी सत्याग्रह महास्त्रके प्रयोग और सहारमे होनी चाहिये। तनिक भी असावधानीसे महास्त्र व्यर्थ हो सकता है, फिर या तो उसका संहार ही न हो सकेगा और या वह सहार होते ही अपना सर्वनाश कर देगा।

प्रत्येक व्यक्ति आत्मवान् है, पर आत्मवल सवको प्राप्त नहीं है—आत्मबलको पुष्ट और सर्वोपरि वनानेके लिये वड़े कठिन तपकी आवश्यकता है। जो व्यक्ति आत्मवलका अधिष्ठाता होना चाहे उसे काम, क्रोध, लोभ, मोह और इन्द्रियोंके समस्त विकार—इच्छा, द्वेष आदि—पर विजय पाना चाहिये। साधारणतया मनका प्रावल्य इन्द्रियों पर होता है, मन पर वुद्धिका और वुद्धि पर आत्माका। पर आत्मवलको प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवालेको सीधे आत्माको ही सर्वाधिकार-सम्पन्न करना होता है, शेष सत्व मन, वुद्धि और इन्द्रियोंको उसके अधीन—सर्वथा अधीन—रहना पड़ता है। उसे ऐसा वन जाना चाहिये कि मन, इन्द्रिय और वुद्धि पर यदि अत्याचार हो—निर्दयता-पूर्वक इनका हनन किया जाय—असह्य यन्त्रणाकी आगमें ये जलाई जायँ—तव भी आत्मा विचलित न हो, इन पर दया न करे—इनकी शिफारिश न करे—इनका लालच न करे, इन्हे भले ही नष्ट हो जाने दे, पर वह इनके लिये अपनी दृढ़तामें वल न पड़ने दे। ये वस्तु—मन, वुद्धि, इन्द्रिय—यदि नष्ट भी हो जायँगी तो कोई चिन्ता नहीं, ये पुन. प्राप्त होंगी, क्योंकि आत्मा इनका अधिष्ठाता है और यह अधिष्ठातृ पद आत्माको नित्य प्राप्त है। इनके नष्ट होते ही ये सव नवीन रूपमें पुन तुरन्त आत्माको दैवीशक्ति द्वारा प्राप्त होंगी। आत्मामे इनके निर्माणकी सत्ता है—योग्यता है—और प्रभुता है।

आत्मवलकी यह स्थिति व्रत, उपवास, तप और हठके निरन्तर अभ्याससे प्राप्त हो सकती है। मनको प्रथम ध्यानमें लगानेका अभ्यास करे। ध्यान कहते हैं मनके

निर्विषयत्वको। मन जैसा चंचल और काम-काजी है उसका निर्विषय होना बड़ा कठिन है, पर अभ्याससे वह निर्विषय हो जायगा। इसका सुगम उपाय प्राणायाम है। गणितके उच्च प्रश्नोंको हल करनेसे भी मनकी चचलता घटती है। और हठ पूर्वक—जिधरको मन जाय उधरसे रोक कर—अन्यत्र जिधर उसकी रुचि न हो लगानेसे भी मन वशमे होता है। एकान्तवास, सेवा, व्रत, परोपकारकी आग्रह-पूर्वक चाहना और इनके सेवनसे मनमें पवित्रता आती है—और उसकी चचलता एक उपयुक्त मार्गमें व्यय होकर ऐसी बन जा सकती है कि वह फिर थोड़े परिश्रमसे ही निर्विषय हो सकता है।

इन्द्रियोंकी वासनाओंकी उपेक्षा करना, इनकी आवश्यकताओंको सक्षिप्त करना, इनके कार्योंका बल-पूर्वक नियन्त्रण करना, इनकी प्रवृत्तियोके विरोधमें सचेष्ट रहना इन सब उपायोंसे धीरे धीरे इन्द्रियाँ उदासीन या शान्त हो जाती हैं और मनको नही उकसाती। फिर जैसे कोई दुर्व्यसन-ग्रस्त योग्य धनिक युवकका चंडाल चौकड़ीसे छुड़ा कर सुधारा जाना सरल हो जाता है उसी प्रकार मनको उकसा कर और भी चंचल करनेवाली इन्द्रियोंके दमनसे वह कुछ शान्ति पाता है और शीघ्र वशमें आ जाता है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, इच्छा, द्वेष, छल, झूठ—ये सब मन और इन्द्रियोके षड्यन्त्र हैं, सरकारी खुफिया पुलिसकी तरह सदा इनकी ताकमे बैठे रहना चाहिये और समय पर तुरन्त जड़मूलसे इन्हें नष्ट कर देना चाहिये।

यह हरगिज मत समझो कि यह सब कोई कठिन या अलौकिक काम है। वास्तवमें यह क्लर्कीकी नौकरीसे अधिक कठिन और भयंकर नहीं है। प्रत्येक क्लर्कको अपनी मान-मर्यादा, क्रोध, इच्छा और समय सब अपने स्वामीको देना पड़ता है—स्वामीके अकारण क्रोध करने पर भी उसे कुछ कहनेका अधिकार नहीं है—वह निरपराध भी अपराध स्वीकार करता है—इससे अधिक मनका नियन्त्रण और क्या होगा। अन्तर इतना ही है कि यह नियन्त्रण कुछ पैसोंके लिये है और वह होना चाहिये आत्मबलके लिये।

अत्याचारमें एक भीषण सम्मोहिनी शक्ति है जो अपने विपक्षीको अपने ऊपर मोह लेती है या अपने ही समान कर लेती है। प्रायः ऐसा होकर सत्याग्रहका अमोघ अस्त्र मिथ्या हो जाता है। जिस प्रकार चिकित्सक रोगके विपरीत युद्ध करता है और रोग चाहे जितना बिखरा, भयकर या साघातिक हो चिकित्सक

विलक्षण शान्ति और नि क्षुब्धतासे, विना क्रोध किये, उसका प्रतिकार करता है ठीक उसी प्रकार सत्याग्रहका अस्त्र प्रहार करती बार प्रयोक्ताको परमहंस और निर्विलेप वन जाना चाहिये।

सत्याग्रहीमें सवसे प्रथम गुण होना चाहिये आत्म-विश्वास—अपने ऊपर भरोसा। जो व्यक्ति किसी कार्यका अच्छी तरह मनन और अभ्यास करता है उसे उस पर आत्म-विश्वास अवश्य उत्पन्न हो जाता है। इस लिये जिस अत्याचारके ऊपर सत्याग्रह महास्त्रका प्रयोग करो, उस पर अपने आत्म-विश्वासको उत्पन्न करो। सव लोग आप पर विश्वास करें ऐसी चेष्टा मत करो, नहीं तो सत्याग्रही ही नहीं हो सकोगे! व्रत करो, उपवास करो, इन्द्रियोंको दमन करनेका दृढ़ हठ करो। एक वार इन्द्रिय और मन उत्तेजित होंगे—तिल-मिलावेंगे—उस समयके निर्णयको मान मत दो और भी व्रत करो, एकान्तवास करो, मौनव्रत लो, मनन करो, जागरण करो और यह सव इतना करो कि प्रवृत्तियोंसे युद्ध करते करते वे पराजित हो जायँ। जैसे जागरण करनेमें इतनी सिद्धि करो कि सोनेकी स्पृहा ही नष्ट हो जाय उपवासमें इतना अभ्यास करो कि भोजनकी चाह ही न रह जाय। यह स्थिति कुछ देरमे प्राप्त होगी। इसके प्रथम इन्द्रियोंमे वड़ा विकराल क्षोभ उत्पन्न होगा—भूखके मारे सरसो फूल उठेगी, नींदके मारे मच्छर हाथी दीख पडेगा। यह सव प्रवृत्तिका युद्ध है, इसे विजय करो। अन्तमे भूख, प्यास, निद्रा आदि वशमें हो जावेंगी। इन्द्रियाँ निर्मल और निर्विकार हों, मन स्वच्छ और प्रसन्न हो, वुद्धि स्थिर और पारदर्शिनी हो और इन सवके ऊपर आत्मबलका एकाधिपत्य हो तव अत्याचार पर विचार करो—केवल अत्याचार पर विचार करो, अत्याचारीको मत देखो—अत्याचारीकी वात ही मत उठाओ। अत्याचार पर विचार करो, उसे संसार भरके न्याय पर तोलो, सार्वजनिक न्याय पर तोलो, अहिंसा धर्म पर परखो, परमार्थकी कसोटी पर कसो, समाजकी शान्ति-स्वातन्त्रता और अधिकार उसके हाथमें देनेकी कल्पना करके देखो—क्या परिणाम होगा, वैयक्तिक उत्तरदायित्व पर उसका प्रभुत्व करके देखो। इन सव परीक्षणोंके वाद यदि उसे अशान्ति करने वाला, आत्मवलका विरोधी, सामाजिक और वैयक्तिक उत्तरदायित्वमें विशृंखला और मानापमान करनेवाला देखो तो उसे अपने आत्म-विश्वाससे अत्याचार समझो और उस पर सत्याग्रह महास्त्रका प्रयोग कर दो।

ऊपर जो व्रत इत्यादि वताये गये हैं वे परमावश्यक हैं। विना उनके आत्म-[illegible] ससन्देह रहता है। ये सव कुछ कठिन और अनहोने नहीं हैं। पवित्र

दिनोंमे आत्माकी स्वच्छता तथा मन, बुद्धि और इन्द्रियोंकी पवित्रताके लिये लोग व्रत रखते ही हैं। बहुत लोग जन्मभर एक वार ही खाते हैं, बहुत लोगोंका व्यवसाय ही रात्रि-जागरण करनेका है और बहुतोंका कारबार ही ऐसा है कि जागरण करना पडता है। इस तरह उपर्युक्त नियम कुछ कठिन नहीं है—हठसे, क्रमसे और धैर्यसे उनका अभ्यास करना चाहिये। ये स्वयं यद्यपि साधारण नियम हैं, पर इनका फल बडा असाधारण—अलौकिक—और अमोघ है। तथा इसीसे निर्भ्रम आत्म-विश्वास प्राप्त होता है।

अपने आत्म-विश्वास द्वारा जब किसी कार्यको अत्याचार समझ लो तब धैर्यसे उस पर सत्याग्रहका प्रयोग करनेकी तैयारी करो। धैर्य, दृढता और शान्ति ये दूसरे दर्जेके गुण सत्याग्रही रथीमें होने चाहिये। फिर ब्रह्मा भी आवे तो उसे अपने आत्म-विश्वाससे नहीं टलना चाहिये। उसके कोई टुकड़े टुकडे़ कर डाले या समझावे या प्रलोभन दे तो भी उसे अपने आत्म-विश्वाससे नहीं टलना चाहिये। यहाँ धैर्य, दृढ़ता, एक-निष्ठता और शान्तिकी जरूरत पडती है। ये गुण न हुए तो लक्ष्य विचालित हो जायगा या नष्ट हो जायगा और ये गुण यदि निर्बल हुए तो सत्याग्रह महास्त्र उलटा उसीका सहार करेगा। जिसमे ये गुण न हो उसे सत्याग्रह महास्त्रका प्रयोग नही करना चाहिये।

ये गुण बहुत करके उपर्युक्त तपश्चरणसे ही प्राप्त हो जावेंगे क्योंकि इन्द्रियोंका क्षोभ और प्रवृतियोंकी उत्तेजना ही इनकी बाधक है। उपर्युक्त तपश्चरण उनका नाश करता है तथापि इन गुणोंको प्रौढ करनेके लिये उसे अपने ऊपर सत्याग्रह महास्त्रका प्रयोग करना चाहिये। प्रयोग करती वार अपनी या पराई रियायत नहीं करनी चाहिये। जिस इन्द्रियका जितना अत्याचार हो उस पर उतना ही प्रबल प्रयोग होना चाहिये। कुछ परवा नहीं कि ऐसा करनेसे शरीर नष्ट हो जाय। यह कभी न सोचना चाहिये कि शरीर नष्ट हो जायगा तो फिर सत्याग्रह कौन करेगा। आत्मा अमर है, विचार-शक्ति और इच्छाकी धारा अविश्रात वेगसे वायु-मण्डलमे विचरण करती है और शरीरके साथ न मरती, न निर्बल होती है वह सजीव रहती है—सतेज रहती है और पात्रमे अधिष्ठित हो जाती है। वह स्वय अपने लिये शरीरको निर्माण करती है जो उस नष्ट शरीरसे सहस्राधिक परिमाणमें उसमे ओतप्रोत रहता है।

महास्त्र प्रयोग करनेसे प्रथम पुरश्चरण करनेकी पद्धति है। यह केवल मन वचन कर्मको पवित्र और नि सशय करनेके लिये की जाती है। इसका अभिप्राय

यह होता है कि हमारे विरोधमे दुराग्रह या अत्याचारका लेश न रह जाय । सत्याग्रहके प्रयोगके प्रारंभमें व्रत रखना उचित है, ताकि इन्द्रियॉ निर्मल, निस्पृह और निरुद्वेग हो और उसी दशामे अस्त्र प्रयोग किया जाय। अस्त्रमे जितना बल देना हो उतना ही उसका पुरश्चरण करना चाहिये और अत्याचार जितना व्यापक हो उतना ही बल अस्त्रको देना चाहिये ।

जैसा कि पीछे कहा गया है कि सत्याग्रहास्त्रके प्रकार चार हैं, प्रयोग करती वार उनका ध्यान रखना आवश्यक है । यदि सत्याग्रह व्यक्तिगत-रूपसे प्रयोग करना है तो उसमें इतनी सावधानी रखनी चाहिये कि समाजको उसे दुराग्रह कहनेका अवसर न मिले और जनता यह भी समझ जाय कि यह अत्याचारके विरोधमे ही प्रयोग किया गया है । यह कार्य कठिन और नाजुक है, क्योंकि वैयक्तिक उत्तरदायित्व होने पर उसे स्वेच्छाचारिता प्रमाणित न करने देना कभी बड़ा कठिन हो जाता है ।

सामाजिक सत्याग्रह प्रयोगके दो स्वरूप हो सकते हैं। एक तो अपनी वैयक्तिक सत्तासे इस प्रकार प्रयोग करना कि उसका पद्धति-मूलक समाजके अधिकारों पर ठीक ठीक प्रभाव पडे, दूसरा समाजकी एकत्रित, किन्तु चुनी हुई संघसत्तासे ।

राष्ट्रीय सत्याग्रहका प्रयोग सर्वथा संघसत्ताहीसे होना चाहिये । क्योंकि राष्ट्रीय अत्याचारके विस्तारके अनुसार ही सत्याग्रहास्त्र प्रयोगका बल विस्तृत रखना होगा । धार्मिक सत्याग्रहका प्रयोग केवल वैयक्तिक सत्तासे ही होना अधिक निरापद है, क्योंकि धर्मान्धताके कारण संघ-प्रयोगसे दुराग्रहकी सम्भावना है ।

इस प्रकार वैयक्तिक सत्याग्रह और दूसरे ऐसे सत्याग्रह जो वैयक्तिक तो नहीं हैं, किन्तु वैयक्तिक सत्तासे प्रयोग किये गये है, इनमे इतना अन्तर रहेगा कि वैयक्तिक सत्याग्रहके प्रयोगका प्रभाव समाज, राष्ट्र या धर्म पर बलात् न पडेगा और दूसरोका पड़ेगा—भले ही वे वैयक्तिक सत्तासे ही क्यो न किये गये हों। वैयक्तिक सत्याग्रहके सिवा दूसरे सत्याग्रहोंमे जहॉ वैयक्तिक सत्तासे प्रयोग हो रहा है, दूसरे सत्याग्रही भी वैयक्तिक प्रयोग कर सकते है । उन्हें वैयक्तिक नियन्त्रणमें केवल इस लिये डाला गया है कि वे विचार-वैचित्र्य या अन्य कारणोंसे यदि उसे अत्याचार नहीं समझते तो स्वाधीन रहें । किन्तु राष्ट्रीय सत्याग्रहास्त्र संघसत्ताके विना चल ही नहीं सकता । ऐसा न होने पर जहॉ अत्याचार राष्ट्रका नाश करेगा वहाँ सत्याग्रह भी राष्ट्रका संहार करेगा । इसके सिवा यह भी होगा कि सत्याग्रहास्त्रमें ही अत्याचारकी आग लग जायगी ।

परमहसता या मानापमानमें पूर्ण वीतरागता और कष्ट सहिष्णुता,ये दो सत्याग्रहके वल है । ये जितने जवर्दस्त होगे सत्याग्रह उतना ही सवल होगा । यह सब उपर्युक्त अभ्यासोसे प्राप्त होते हैं ।

अत्याचारी अन्धा और अविचारी होता है । अत एव वह पर-पक्षको पीड़न करके उसका उपयोग करता है । सत्याग्रहीको उस पीड़नका उपकरण वन जाना चाहिये और उसे अपने उत्पीड़नके समस्त वेगको वहीं खर्च करने देना चाहिये । इसका फल यह होगा कि उत्पीड़नसे उसे थकावट होगी, अत्याचारसे ग्लानि होगी और वह स्वयं उसे हेय समझेगा । इस प्रकार सत्याग्रहास्त्र अत्याचारको नाश करेगा, पर अत्याचारीका वाल भी वॉका न होगा ।

शत्रुको विजय करनेकी यही उत्कृष्ट पद्धति है । जिस प्रकार रोगीको मार कर रोगको नष्ट करना प्रशंसाकी वात नहीं है उसी प्रकार शत्रुको मार कर शत्रुताका नाश करना भी प्रगसनीय नहीं है । जैसे चेचकके टीकेसे उसका समस्त वेग उसी एक व्रण पर जूझ कर निर्वीर्य हो जाता है, फिर कुछ विकार शरीरमें नहीं होता, ठीक इसी प्रकार सत्याग्रही अपने अमोघ अस्त्रके वलसे अत्याचारीके अनियन्त्रित अत्याचारको निय-न्त्रण करके अपने ऊपर प्रयोग होने देकर अत्याचारको निर्वीर्य कर देता है ।

यह तो स्पष्ट ही है कि अत्याचार पाप है और उसके परिणाममें कभी तृप्ति और शान्ति नहीं है । पर अत्याचार नष्ट न होनेका कारण यह है कि उसके विरोधमें भी अत्याचार होता रहता है और उससे उसकी प्रवृद्धि होती रहती है । जैसे नया नया ईंधन मिलनेसे आग जलती ही रहती है उसी तरह विरोधमें अत्याचार न होकर सत्याग्रह हो तो अत्याचारका अन्त होगा ही और उससे अत्या-चारीको विरक्ति हो जायगी ।

ऐसा कुछ नियम है कि ससार चाहे सवका सव स्वयं अत्याचारी हो, पर वह अत्याचारीका न साथ देता है और न उसकी प्रशंसा करता है । पर ऐसे लोगोंको भी कमसे कम प्रकाश-रूपमें पीड़ितों पर सहानुभूति और दया उत्पन्न हो जाती है । और वे उसका पक्ष लेकर उत्पीड़कको धिक्कारते हैं । इन सब कारणोंसे अत्याचारीको आत्मग्लानि और विरक्ति होती है । और इस प्रकार सत्याग्रहीकी विजय होता है ।

चाहे अत्याचारी कैसा ही सबल और अधिकार सम्पन्न हो और सत्याग्रही कैसा-ही दीन और विपन्न हो, पर प्रजा सत्याग्रहीका साथ देगी और उसे उसके साथ विपन्न होनेमें आनन्दका अनुभव होगा।

परायेके लिये कष्ट भोगनेमें प्राणीको जो आनन्द आता है वह अपने लिये सुख भोगनेमें भी नहीं आता। इस लिये सत्याग्रहीकी आत्मबलि दैदीप्यमान और उत्तेजक होती है और लोग उसकी प्रतिष्ठा करते हैं।

एक बात बहुत ही नाजुक और ध्यानमे रखने योग्य है। वह यह कि सत्याग्रहास्त्र-का प्रयोग यद्यपि अत्याचार पर ही होता है, किन्तु सब अत्याचारों पर नहीं हो सकता है। जैसे अन्य महास्त्रोमे यह एक नियम होता है कि अमुक प्रकारके शत्रु पर अमुक अवस्थामें वह प्रयोग नहीं हो सकते—अनियमसे प्रयोग करने पर वे मिथ्या हो जाते हैं।

जो अत्याचार प्रत्यक्ष अत्याचार हैं उन पर सत्याग्रहास्त्र प्राय: प्रयोग नहीं करना चाहिये। उनका प्रतिकार दूसरे प्रकारोंसे करना चाहिये। जैसे डाकू, लुटेरे, ठग आदिके अत्याचार होते हैं। इनके ऊपर सत्याग्रहका प्रयोग यथाशक्य न करना चाहिये। सत्याग्रहका प्रयोग उन अत्याचारों पर करना चाहिये जो वास्तवमें तो अत्याचार हैं, पर पद्धति-मूलक नियमोंके स्वरूपमें वे अपनी आत्मा और इच्छाके विपरीत स्वीकार करनेको दबाये जाते हैं? जिन्हें न्याय, धर्म, शान्ति और नैतिक शृंखलाके स्थापकके स्वरूपमें पेश किया जाता है, और उसके विपरीत कोई युक्ति या न्यायानुमोदित एतराज नहीं सुना जाता।

ऐसी दशामें सत्याग्रहास्त्र प्रयोग कर देना चाहिये—शान्त और निरुद्वेग चित्तसे दृढता-पूर्वक कह देना चाहिये कि यह अप्रकट छल-पूर्ण अत्याचार है, इसे मैं स्वीकार नहीं करूँगा। इसका दण्ड स्वीकार कर लूँगा।

यद्यपि अत्याचार न स्वीकार करनेका दण्ड भी अत्याचार है, पर वह छलमय अत्याचार नहीं है—प्रत्यक्ष अत्याचार है, अत एव उसे स्वीकार कर लेना चाहिये। उसके विरोधमे सत्याग्रह नहीं करना चाहिए—उसमें कोई उज्र या बाधा नहीं डालना चाहिये।

जिस तरह मशीनके दो दाँतेदार पहिये एक दूसरेकी रगड़से एक दूसरेके विपरीत पक्षमें चल कर मशीनकी गतिको अक्षय कर देते हैं उसी प्रकार सत्याग्रहास्त्रकी गति अत्याचारको अस्वीकार कर उसके दण्डको स्वीकार करनेसे अप्रतिहत

जातिसे, जारी रहेगी और अत्याचारको इस कौशलसे नष्ट करेगी कि अत्याचारीका बाल भी बाँका न होगा।

कभी कभी ऐसा होता है कि सत्याग्रहास्त्र अत्याचार पर न गिर कर अत्याचारी पर गिरता है, उसे नष्ट करता है। और कभी कभी अत्याचारके साथ अत्याचारी भी आप ही स्वयं नष्ट हो जाता है। यद्यपि यह सुन्दर बात नहीं है, पर कभी कभी ऐसा हो ही जाता है। ऐसी दुर्घटना बहुधा राष्ट्रीय सत्याग्रहके प्रयोगमे होती है, जब कि अत्याचारी दल अतिशय प्रवल होकर अपने ही एक अंशको अत्याचारीके स्वरूपमें नहीं, प्रत्युत अत्याचारके स्वरूपमें सत्याग्रहास्त्रके सन्मुख कर देते हैं। ऐसी घटनाएँ सत्याग्रह प्रयोगके उत्कृष्ट उदाहरण तो नहीं हैं, पर अवैध भी नहीं हैं।

सत्याग्रह प्रयोगकी यह मुख्य विधि है कि छल-पूर्ण अत्याचारको स्पष्ट अस्वीकार करना और उसके दण्डको बिना विरोध स्वीकार करना। दण्डमें भी जो प्रत्यक्ष अत्याचार हैं केवल उन्हें ही स्वीकार करना और जो छल-पूर्ण और अप्रत्यक्ष हैं उन पर सत्याग्रह प्रयोग किये जाना। अर्थात् उन्हे स्वीकार न कर उनका दण्ड सहन करना। इस प्रकार अत्याचारको वलात् प्रत्यक्ष और स्पष्ट अत्याचारीके स्वरूपमे संसारके सामने प्रकट कर देना और छलके समस्त आवरणोको छिन्न-भिन्न कर डालना। यह सत्याग्रह महास्त्रका विजय है।

दण्ड देनेके लिये जो अधिकारी-मण्डल हो उन्हे शत्रु न समझना, उनके कार्यमें विरोध न करना, प्रत्युत उनके कार्योंमें सहायता देना चाहिये। स्मर्ण रहे, दण्ड देनेके अधिकारी सत्याग्रहास्त्र प्रयोगके धनुष हैं। इनके साथ वन्धुवत् व्यवहार करना, पर उनसे सहानुभूति या रियायत कदापि न चाहना! ये धनुष जितने कठोर हों उतना ही अच्छा है।

हाँ उनका कोई काम छल पूर्ण या सन्दिग्ध हो या दिखावेका हो, या वे कुछ तुम्हारी रियायत करे, या सत्याग्रहास्त्रसे भय करें, या सहानुभूति रक्खें तो उन पर सत्याग्रहास्त्रका प्रयोग करना—उन्हे कर्तव्य च्युत न होने देना—उन्हे ढीले न होने देना, स्मर्ण रहे वे धनुष हैं—उन्हींके द्वारा सत्याग्रहास्त्रका प्रयोग होगा। वे जितने ढीले होगे उतना ही तुम्हारे अस्त्रका वेग भी निर्वल होगा।

जिन अत्याचारोंके विरुद्ध सत्याग्रह प्रयोग किया जायगा वे प्रत्यक्ष तो होंगे नहीं, या तो नियम कानूनकी शकलमे होगे, या वहुमान्य प्रथाकी शकलमें। और

इसी छल रूपके कारण वे सत्याग्रहास्त्रकी मारमें आ गये हैं और उनका विरोध पाप नहीं माना गया है। किन्तु किसी सत्याग्रहीके अनाड़ीपनसे सत्याग्रह प्रयोग करती वार कोई ऐसी चूक हो गई कि वह स्वय अत्याचारी साबित हुआ और वह ऐसी स्थितिमे आ गया कि न्यायसे भी वह दण्डनीय प्रमाणित हुआ तो वह सत्याग्रह प्रयोगका अधिकारी न रहा। इस लिये स्वयं सत्याग्रह युद्ध करती वार सत्याग्रहीको इस विषयमें सचेष्ट रहना चाहिये कि वह किसी न्यायका उल्लंघन न करे। अभिप्राय यह है कि अत्याचारके विरोधमे दण्ड भोगना तो उसके लिये वीरता है, परन्तु न्यायसे दण्ड भोगना घोर निन्दनीय है।

सहार इस अस्त्रका दूसरा रुख है। संहार कहते हैं निवारणको, अस्त्रको वापस बुलानेको। जितने महास्त्र होते हैं सब शत्रुका नाश कर वापस आ जाते हैं। सत्याग्रहास्त्रका संहार प्रयोगसे कहीं अधिक नाजुक और कठिन है। सत्याग्रहीको सर्वथा इस वातमे सचेष्ट रहना चाहिये कि कब संहारका समय आता है। क्योंकि कभी कभी कुछ ऐसे कारण हो जाते हैं कि अस्त्रको अपूर्ण ही सहार करना पड़ता है या कुछ समयके लिये स्थगित करना पड़ता है। और कभी-कभी प्राणान्त होने पर भी सहारका अवसर नहीं आता। जहाँ प्रयोग करती वार धैर्य, त्याग, अहिंसा और कर्मठताकी भारी आवश्यकता होती है वहाँ सहार करती वार इन गुणोके सिवाय विवेचना, दूरदर्शिता तात्विकता और गम्भीरताकी चरम सीमाकी अपेक्षा होती है। जब योद्धा देखे कि ऐसा पेंच आ गया है कि सत्याग्रही योद्धा-पर दुराग्रहका अभियोग चल सकता है या उसके साथी दुराग्रही हो गये है, या सत्याग्रह प्रयोग करते रहनेसे वे दुराग्रही हो जावेंगे तो बीचहीमें उसे महास्त्रका अपूर्ण संहार कर लेना चाहिये, फिर व्रत-उपवास द्वारा मनको शांत बना कर, सावधान होकर पुन प्रयोग करना चाहिये।

जब देखे कि दशा ऐसी है कि प्राणदानके बिना सत्याग्रहमें बल नहीं आता तो प्रधान महारथीको प्राणदान देना चाहिये। जहाँ साधारण युद्धोंमे साधारण योद्धाओंकी अपेक्षा सेनापति विशेष सुरक्षित रहते हैं वहाँ सत्याग्रह-सग्राममे इसके विपरीत होता है। सेनापतिके प्राण-सम्पुट पाकर सत्याग्रह भारी बलवान् हो जाता है।

चौथा अध्याय।

व्यक्तिगत सत्याग्रह।

१ भीष्म पितामह।

भीष्मका अर्थ है भयकर। पर भीष्मका स्वरूप भयंकर न था। वे अपने यौवन-कालमें बड़े सुन्दर, सभ्य और सहृदय युवक थे। एक वार काशिराजकी बड़ी कन्यासे उनका साक्षात् हो गया था। चार ऑखे होते ही दोनों दोनों पर मोहित हो गये थे। दोनोंने एक कच्चे डोरेके सहारे अपनी धुँधली आशाको बॉध रक्खा था। यद्यपि इस एक वारके साक्षात्के बाद फिर दोनों नहीं मिले थे, पर क्षण भरको भी एक दूसरेको नहीं भूले थे। भीष्मका पूर्व नाम देवव्रत था, जो उनके स्वरूपके समान ही सुन्दर था। जब देवव्रत वनमें—लताकुंजमे—एकान्त शैय्यामें—अपने भविष्य गृह-जीवनकी कल्पना-मूर्ति बनाया करते थे तव उनके होठ खुशीसे फूल उठते थे, ऑखोंकी नसें उभर आती थीं और कभी कभी तो उनकी कुन्द-कलीके समान धवल दन्तावली भी अपनी बहार दिखा जाती थी। उनके इस सुखका कारण यही था कि उन्हें अपने विवाहमें कोई विघ्न न दीखता था—कितनी वार तो वे स्वप्नमें भी विवाह कर चुके थे।

देवव्रत अपने इस मधुर कल्पना-कुञ्जमे मस्त हो रहे थे। उन्होने पिताजीसे अपने विवाहका यह शुभ प्रस्ताव कई वार कहना चाहा था। अबसे कुछ प्रथम उनके पिता शान्तनुने अपने बुढ़ापेका स्मरण कराके कितनी वार उनसे कहलाया था कि अपने अनुरूप कन्या चुन कर अनुमति हो तो तुम्हारा विवाह कर दें। कन्या तो बहुत प्रथम वाल-कालसे ही चुनी हुई थी। स्नेहकी जड हृदय-तल तक पहुँच चुकी थीं, पर भीष्म इस गोप्य बातको अव तक कह ही न सके थे। अव उन्होने सोचा था कि यदि पिता अबकी वार पूछेगे तो सब स्पष्ट कह देंगे। पर पिताने यह प्रसग नहीं उठाया। साथ ही देवव्रतने देखा पिता सुखी नहीं हैं—राजकाजमें उनका मन तनिक भी नहीं लगता है। वे न किसीसे मिलते हैं न बोलते हैं, और दिन पर दिन सूखते जा रहे हैं। मंत्री भी चिन्तित हैं। भीष्मने साहस करके एकाध

बार पितासे पूछा भी, पर उन्होंने कुछ उत्तर न दिया । पर अपने पिताकी कातर दृष्टि देख कर देवव्रतने समझा गंभीर मामला है । अन्तत: उसने मन्त्रीसे हठ-पूर्वक पूछा । मन्त्रीने तब कहा कि " तुम्हारे पिता एक धीवरकी कन्या पर मोहित है, पर धीवर इस बात पर तुला है कि वह इस प्रतिज्ञा पर विवाह करेगा कि उसीकी कन्यासे पैदा हुई सन्तान राज्यकी अधिकारी हो—गद्दी पर बैठे । परन्तु तुम जैसे सुयोग्य युवराजके रहते यह कैसे सम्भव है । इस पर भीष्मने कुछ न कहा । वह सीधा धीवरके घर गया और बोला—तुम्हारी शर्त मुझे स्वीकार है, मैंने राज्याधिकार छोड़ा, तुम्हारी कन्याका पुत्र ही राजा होगा । जाओ, महाराजको कन्या दो। धीवरने प्रथम तो प्रसन्नतासे देवव्रतकी बात मान ली, पर फिर सोच समझ कर उसने कहा कि आप तो कृपा कर राज्याधिकार छोड़ देंगे, किन्तु आपकी सन्तान यदि दावा करे तो क्या होगा? मैं चाहता हूँ कि आप आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करें। देवव्रतके हृदयमें सहसा एक वज्रके जैसा धक्का लगा । काशिराजकी अप्सराके जैसी कन्याका देव-रूप उसके हृदयसे निकल आँखोमें आया, फिर आँखोसे निकल सामने आया, फिर सारे विश्वमे रम गया । देवव्रत उस अतृप्तिमे बौराये चुपचाप खड़े रहे । उन्हें यों एकदम चुप साधे हुए देख कर धीवरने कहा—कदाचित् युवराजको यह प्रण कठिन प्रतीत होता है । यह सुनते ही देवव्रतकी मोह-निद्रा भग हुई, उन्होने तुरन्त सावधान होकर कहा—" हाँ मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा—आजसे संसारकी कन्याएँ मेरी बहनें और स्त्रियाँ माता हुई ।" इसके बाद ही उन्होने अपने हृदयके गम्भीर पर्देमें छिपी काशिराजकी कन्याकी मधुर मूर्ति निकाल कर फेंक दी—हृदयका सौन्दर्य उजाड़ कर डाला । उसी प्रतिज्ञाके कारण उसी दिनसे देवव्रतका नाम ' भीष्म ' पड़ा ।

शान्तनुका व्याह हो गया । बूढ़ेके उत्साहका इन्धन युवतीकी कामाग्निमे शीघ्र ही स्वाहा हो गया ! अब उनका कामका नशा उतरा । भीष्मका कष्ट देख कर शान्तनुकी छाती फटने लगी । उन्होंने सोचा जिसे जन्मते ही छोड़ माता चल बसी थी, जो आठ भाइयोंमें अकेला बचा था, जिसने माताका प्यार नहीं पाया, हाय! उसे अपनी बहूका प्यार भी नहीं मिला—मेरा देवव्रत स्त्रीके हृदयसे सर्वथा सूखा रहा—जन्मभर रहेगा । शान्तनुका यह दुःख पहलेके दुःखसे भारी था, वह कुढ़ने और झुरने लगा । उसने कहा—हे भगवन्, मैंने क्यों सुमति गँवाई? शान्तनु बहुत बूढ़े हो गये, पर धीवरकी कन्या—सत्यवती—को अक्षय यौवन प्राप्त था, वह वैसी ही सुन्दरी

जनी थी। शान्तनु उसे देख देख कर जलते थे। अन्तमें शान्तनुका अन्त समय आया। उन्होंने भीष्मसे व्याहके लिये बहुत जिद की, पर भीष्म तो भीष्म थे। उन्होंने पितासे इच्छा-मृत्युका वर पाया।

शान्तनु मर गये। दो अवोध वालक सत्यवतीसे उत्पन्न हुए थे। उनका हाथ शान्तनु भीष्मको सौंप गये थे। भीष्मने उनके व्याहका प्रवन्ध किया। काशिराजके तीन कन्याएँ थीं। उसने स्वयंवर रचा, पर हस्तिनापुरमें न्योता न भेजा। उसे भीष्मकी प्रतिज्ञाका वृत्तान्त ज्ञात था और धीवरीके पुत्रोंको कन्या देना वह चाहता न था। भीष्मने अपमानसे क्रोधित होकर कन्याओंको हरण करनेका इरादा किया। उसने धनुष-वाण उठाया और काशीकी ओर प्रस्थान किया। पर काशी ज्यों ज्यों निकट आती गई त्यों त्यों भीष्मका हृदय काँपता गया। उसे वहुत दिन पहलेकी वात स्मरण हो आई। ओह! वह कैसी मधुर स्मृति थी?

भीष्म काशी पहुँचे। फिर एक वार काशिराजकी कन्यासे उनका एकान्त साक्षात्कार हुआ। अपने हृदयके देवताको—जिसे वर्षोंसे हृदयमें विराजमान कर वह पूजती थी—देखते ही उसका मन ठिकाने न रहा। वह वहीं सिर पकड़ कर वैठ गई। भीष्म भी विचलित हो गये, पर वे भीष्म थे। उन्होंने शान्त और गम्भीर वाणीसे कहा—"अम्वा! तुम सुखी तो हो!" अम्वा भीष्मके चरणमें गिर कर फूट-फूट कर रो उठी। उसने कहा—स्वामी! तुम कहाँ थे—इस दुर्वल हृदयमें आग लगा कर कहाँ जा छिपे थे। मैं तो आज मरनेको थी; क्योंकि पिताने तुम्हे न वुलाया था—तुम्हारे विषयमे तरह तरहकी वातें उड़ रही हैं। वड़ी कृपा की नाथ। अभगिनीके भाग खुल गये। भीष्मकी आँखोंमें भी दो वूँद आँसू भर आये पर उन्होंने उन्हें टपकने न दिया, आँसू वहीं सूख गये। भीष्मने तव हृदयको कड़ा करके कहा—वहन अम्वा! इस प्रसंगको छोड़ो, भगवान् हमें सुमति दें। तुमसे यही कहने आया हूँ कि मुझे और मेरे ध्यानको त्याग दो—यह अन्तिम भेंट है।

अम्वाका कलेजा टूक टूक हो गया—उसकी टोट वँध गई। वह पगलीकी तरह भीष्मकी तरफ देख कर कहने लगी—"क्या कहा—क्या कहा?" भीष्मने अवरुद्ध कण्ठसे कहा—"हाँ अन्तिम भेंट, हमारी तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है।

अम्वाने हाहा खाते और हाथ मलते मलते कहा—"तो क्या जो मैं सुनती हूँ सच है?"।

भीष्मने कहा—" हाँ सच है, मैंने आजन्म ब्रह्मचर्य-व्रतकी भीष्म प्रतिज्ञा की है । " अम्वा इस चोटको न सह सकी। वह मूर्च्छित हो कर गिर पडी। घटना कुछ पहलेसे ही न बदली हुई होती तो दयालु देवव्रत क्या खडे खड़े इस तरह अपनी आराध्य मूर्तिका दुःख सहते—उसे धूलमें लौटते हुए देखते ! उनका हृदय खसकने लगा । वे तुरन्त वहाँसे चले आये । उसके बाद सुनते हैं कि अम्वाने घोर वनमे आजन्म भीष्मके लिए तपस्या की !

इसके बहुत दिन बाद, जब सत्यवतीके पुत्र—विना सन्तान मर गये—तब सत्यवतीने स्वयं भीष्मको व्याह करनेको कहा । पर भीष्म पर्वतके समान अटल रहे । फिर समय बीतने पर वे वृद्ध हुए । उनके पोतों-पडपोतोंका राज्य-काल आया । वे बुजुर्ग बने । व्याहका समय गया, पर उनके सत्याग्रहकी दूसरी परीक्षा हुई । कौरव-पाण्डवोमें वैमनस्य मचा । कौरव अत्याचार करने लगे । भीष्म किसी तरह उन्हें सुराह पर न ला सके । कृष्ण भी थक गये । अन्तमे महाभारतका प्रसिद्ध युद्ध प्रारम्भ हुआ और लोगोंने देखा कि पा[illegible]वोका पक्ष करनेवाले—पाण्डवोकी जय मनानेवाले—भीष्म कौरवोकी ओरसे पाण्डवोके विरुद्ध लड रहे हैं । इच्छा-मृत्यु होनेके कारण जब नहीं मरते तो अ[illegible]न मरनेकी विधि भी वता रहे हैं । क्या यह चमत्कारिक घटना नहीं है ? वात यह थी कि भीष्मको विश्वास था कि पाण्डव धर्म पर हैं और कौरव अत्याचारी हैं । पाण्डव अत्याचारका दण्ड दे रहे हैं । मैं सदा अत्याचारीके साथ रहा, उसका अन्न खाया पर दुःखकी वात है कि उसे सन्मार्ग पर न ला सका । तव मैं भी न्यायसे अ[illegible]चारी और दण्डनीय हूँ । अब यदि दण्डके समय मैं इनका साथ छोड़ कर दण्ड देनेवालों में मिल जाऊँ तो अति घृणित कार्य होगा । मुझे जब दण्ड देनेका अधिकार और वल था तव चुपचाप मैंने अत्याचार होने दिये । इन वातोको विचार कर भीष्मने महाभारतके महायुद्धमें प्राण विसर्जन किये । उस मृत्युमे दुःख, ग्लानि, भय या कष्ट कुछ न था—यह उनके उत्कृष्ट चमत्कारिक सत्याग्रहका परिणाम था ।

वही वाल ब्रह्मचारी भीष्म पितामह कहलाये । सन्तान न होने पर वे निपूते रहे, पर फिर भी जगतके पितामह कहलाये, यह सत्याग्रहकी शक्तिका परिणाम है ।

१ भगवान् पार्श्वनाथ ।

महात्मा ईसाके लगभग ८०० वर्ष पूर्वका वृत्तान्त है । पार्श्वनाथ बनारसके राजा अश्वसेनके महा प्रतापशाली पुत्र थे । इनकी माताका नाम वामादेवी था । अपने

समयके ये जैनधर्मके प्रवर्तक—तीर्थंकर—थे। ये बालपनसे ही विषयोंसे उदास रहते थे। इनकी सदा यही भावना रहती थी कि मेरे द्वारा ससारका कुछ भला हो। और इसी भावना-वश एक चक्रवर्ती सम्राट्के महामहिम राजकुमार होने पर भी इन्होंने ब्याह नहीं किया। एक बार पिताके द्वारा ब्याहका प्रश्न उठाने पर इन्होंने उत्तर दिया था कि—

यद्योजयति भोगाङ्गे जानन्नपि यो मन ।
अतः कूपनिपातोयं दीपहस्तस्य देहिन ॥

अर्थात् महाराज, जो भोगोंको दु खोंके कारण जान कर भी उनमे मनको लगाता है—उनसे परावृत्त नहीं होता—समझना चाहिए वह मनुष्य हाथमे दीपकके रहते हुए भी कुएँमें गिरता है। यही सब बातें पार्श्वप्रभुको विषय-भोगसे परावृत्त कर स्व-पर-कल्याणके लिए प्रेरित करती थीं। पार्श्वप्रभुकी परहित-साधनकी भावनाएँ दिन दिन इतनी बढ़ी कि अब उन्हें एक क्षण भी घरमें रहना बुरा जान पडने लगा। वे थोड़ी अवस्थामे ही योगी हो गये और पूर्ण आत्मबल लाभ करनेको नाना तरहके तप करने लगे।

एक कमठ नामका इनका पूर्व-जन्मका शत्रु था। उसकी शत्रुताका कारण यह था कि पहले जन्ममें कमठ और पार्श्वनाथ भाई-भाई थे। पार्श्वनाथका नाम तब मरुभूति था। कारण-वश एक बार मरुभूति कहीं बाहर गये हुए थे। इधर कमठ उनकी स्त्री वसुंधराको देख कर उस पर मोहित हो गया। और उसे छलसे अपने यहाँ बुला कर उसने उसका सतीत्व नष्ट कर दिया। यह बात जब तक्षशिलाके राजा अरविंदको ज्ञात हुई तब उन्होंने कमठको अपने देशसे निकाल दिया। कमठने समझा कि मुझे भाईने ही निकलवाया है। क्योंकि मरुभूति अरविंदके मत्री थे। बस, इसी दिनसे कमठके हृदयमें मरुभूतिके प्रति अत्यन्त द्वेष-भाव हो गया और वही सस्कार उसके अन्य-जन्ममें बना रहा, जिसके कारण उसने पार्श्वनाथको बडा कष्ट दिया।

एक दिन पार्श्वप्रभु योग-साधन कर रहे थे। इसी समय कमठ कहीं जा रहा था। जाते हुए उसने पार्श्वनाथको देखा। उन्हें देखते ही वह द्वेषसे जल उठा। उसकी आँखे क्रोधसे लाल हो उठीं। उनसे आगकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। फिर क्या था, लगा वह पार्श्वनाथको घोर कष्ट देने। उसने उन्हें सैकडों गालियाँ दीं, दुर्वचन कहे उन पर पत्थरोंकी वर्षा की, उनके चारों ओर आग लगा दी, जहरीले साँपोंको

पकड पकड़ कर उन पर छोड़ दिया, मूसलाधार पानीकी बरसा की। उसकी जितनी शक्तियाँ थीं उन्हें उसने लगा दिया, पर भगवानको अपने योगसे—सत्याग्रहसे—वह तनिक भी विचलित न कर सका। भगवान् मेरुकी भाँति अटल अचल बने रहे। अलौकिक शान्तिके साथ उन्होने सब कुछ सह लिया। ऐसे घोर शत्रु पर भी उन्होंने जरा भी क्रोध न किया। एक कविने योगियोंके इस कष्ट-सहनका बड़ा ही सुन्दर चित्र खींचा है—

> **निरपराध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिलि मारें,**
> **केई खेंच खंभसों बाँधत केई पावकमें परिजारें।**
> **तहाँ कोप नाहिं करें कदाचित् पूरव कर्म-विपाक विचारें,**
> **समरथ होय सहें वध-बंधन ते गुरु भव-भव शरण हमारे॥**

इन महान् कष्टोंके समय भगवान्ने जो आत्मबल प्रकट किया वही उनके कैवल्य-लाभका कारण हुआ। कैवल्य लाभ कर भगवान्ने संसारके अनन्त प्राणियोंको सत्य मार्ग पर लगाया—उन्हें दुखोंसे छुड़ाया। जहाँ जहाँ भगवान् विहार करते थे वहाँ वहाँ बड़ी बड़ी दूरसे लोग उनका पवित्र उपदेश सुननेके लिए आते और उनके महान् 'अहिंसा-धर्म' के झंडेके नीचे परम शान्ति लाभ करते।

३ भगवान् महावीर।

जैनधर्मके ये अन्तिम तीर्थंकर—धर्म-प्रवर्तक—थे। वर्तमान 'वीर-शासन' इन्हींके नाम पर प्रचलित है। भगवान् महावीरको हुए आज लगभग २४५० वर्ष हो गये। इनके समय भारतकी स्थिति बड़ी बुरी थी। वैदिकी हिंसाने पवित्र आर्यभूमि पर खूनकी नदियाँ बहा दी थीं। प्रति दिन हजारो मूक पशुओंका धर्मके नाम पर बलिदान होता था। जाति-भेद और नीच ऊँचके भेदभावने लोगोंके हृदय घृणासे भर दिये थे। धर्मकी ठेकेदारी उन दिनों एक खास जातिहीके हाथोमें थी। मनुष्य-जातिके एक विशिष्ट भागको अछूत कह कर उसने अपनेसे जुदा कर दिया था। वे कुत्तोंकी तरह अपने ही भाइयो द्वारा दुर्दुराये जाते थे। क्या सामाजिक और क्या धार्मिक दोनों प्रकारोके अत्याचारोंकी उन दिनों सीमा न थी। और यह सब होता था पवित्र धर्मके नाम पर! उस समय एक ऐसी महान् शक्तिके अवतीर्ण होनेकी अत्यन्त आवश्यकता थी जो इन सारी विषमताओंको जड़मूलसे उखाड़ कर फेंक दे! सारी मनुष्य-जातिके लिए समान-रूपसे धर्मका द्वार खोल दे और भाई-

भाईको गलेसे गले लगा कर राक्षसी छूआ-छूतके भावको नष्ट कर दे। वही हुआ। भगवान् महावीर धरा-धाम पर इसी महान् कार्यके लिए अवतीर्ण हुए। लोगोंके हृदयमें उन्होंने प्रेम-जल सींचना आरंभ किया। प्रेमके महामहिम सिद्धान्तको सामने रख कर इन धार्मिक और सामाजिक अत्याचारोका उन्होंने वडे जोरो पर विरोध किया। उनके इस विरोधमें द्वेषको तानिक भी जगह न थी। वह वड़ा शान्त और प्रेमकी नींव पर स्थित था। सत्यका उसमे इतना आग्रह था कि लोग जो कि धर्मके नाम पर मर-मिटनेको तैयार रहते थे, इनके विरोधसे पाप-पथका परित्याग कर इनके दिव्य, उज्ज्वल 'अहिंसा-धर्म' के झंडेके नीचे आ जाते थे। भगवान् महावीरने इस सत्याग्रहमें संसारके साथ जो अपूर्व विजय लाभ की—उसका परिणाम यह हुआ कि सारी ब्राह्मण जाति पर अहिंसा-धर्मकी अमिट छाप बैठ गई। और वह आज तक अपना बहुत कुछ प्रभाव बनाये हुए हैं। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भगवान् महावीरकी इस विजय पर इन शब्दोंमें लिखा है कि—

---

१ "अहिंसा परमो धर्म" इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण-धर्म पर चिरस्मरणीय छाप (मोहर) मारी है। यज्ञ-यागादिकोंमे पशुओंका वध होकर जो 'यज्ञार्थ पशु-हिंसा' आजकल नहीं होती है, जैनधर्मने यही एक वडी भारी छाप ब्राह्मण-धर्म पर मारी है। पूर्वकालमें यज्ञके लिये असख्य पशु-हिंसा होती थी। इसके प्रमाण मेघदूत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थोंसे मिलते हैं। रन्तिदेव नामक राजाने जो यज्ञ किया था उसमें इतना प्रचुर पशु-वध हुआ था कि नदीका जल खूनसे रक्त-वर्ण हो गया था। उसी समयसे उस नदीका नाम चर्मण्वती प्रसिद्ध है। पशु-वधसे स्वर्ग मिलता है, इस विषयमें उक्त कथा साक्षी है। परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण-धर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय (पुण्य) जैनधर्मके हिस्सेमें है।

ब्राह्मण-धर्ममें दूसरी त्रुटि यह थी कि चारो वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रोंको समान अधिकार प्राप्त नहीं था। यज्ञ-यागादि कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे, क्षत्रिय और वैश्योको यह अधिकार नहीं था, और शूद्र वेचारे तो ऐसे बहुत विषयोंमें अभागे थे। इस प्रकार मुक्ति प्राप्त करनेकी चारो वर्णोंमें एकसी छूटी नहीं थी। जैनधर्मने इस त्रुटिको भी पूर्ण किया है।

—लोकमान्य तिलक।

" महावीरने भारतमें ऐसा संदेश फैलाया कि धर्म केवल सामाजिक रूढ़ि नहीं, किंतु वास्तविक सत्य है। मोक्ष वाहिरी क्रियाकाडके पालनसे नहीं, किन्तु सत्यधर्मका आश्रय लेनेसे मिलता है। धर्ममें मनुष्य मनुष्यके प्रति कोई स्थायी भेद-भाव नहीं रह सकता। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीरकी इस शिक्षाने समाजके हृदयमें जड़ जमा कर बैठी हुई इस भेद-भावनाको बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया और सारे देशको अपने वश कर लिया। और अब इन क्षत्रिय उपदेशकके प्रभावने ब्राह्मणोंकी सत्ताको पूर्ण-रूपसे दवा दिया है। "

यह तो महावीर भगवानके सामाजिक सत्याग्रहका उत्कृष्ट उदाहरण है। अब उनके व्यक्तिगत सत्याग्रहकी एक खास घटनाका उल्लेख करते हैं। जैनधर्मके दिगम्बर सम्प्रदायके अनुसार वीर भगवान् आजन्म कौमारव्रती रहे। वे छोटी ही अवस्थामें योग धारण कर पृथ्वी परके सामाजिक और धार्मिक अत्याचारोंको नष्ट कर देनेके लिए देशमें सब ओर विहार करने लगे। लोगोंको प्रेम और शान्तिका उपदेश देकर सत्पथ पर लाने लगे। एक दिन भगवान् एक वनमें तपश्चर्या कर रहे थे। उनकी परम शान्तमुद्रा अलौकिक दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रही थी। नासादृष्टि लगाये प्रभु आत्माराधनमें लीन थे। इसी समय एक ग्वाला अपने बैलोंको चराता हुआ इधर आ निकला। वहाँ उसने महावीरको देखा। अपने बैलोंको वह वहीं महावीरके भरोसे छोड कर किसी कामके लिए घर चला गया। थोड़ी देर बाद जब वह वापस लौटा तो देखता क्या है कि वहाँ पर बैल नहीं है। वे चरते चरते कुछ दूर निकल गये थे और उसे दिखाई नहीं पड़ते थे। तब उसने महावीरसे पूछा कि

१–Mahavir proclaimed in India the message of salvation that religion is a reality and not a mere social convention that salvation comes from taking refuge in that true religion, and not from observing the external ceremonies of the community, that religion can not regard any barrier between man and man as an eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly overtopped the barriers of the race's abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kshatriya teachers completely suppressed the Brahmin power.

मेरे बैल कहाँ गये ? ध्यानी प्रभुने उसकी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। इससे उसे बड़ी निराशा हुई। इसके बाद वह खुद उन्हें ढूँढ़नेको चला। पर बैलोका उसे कुछ पता नहीं लगा। वह वापस महावीरके पास आया। देखा तो वहाँ बैल खड़े हुए हैं। यह देख उसने सोचा कि यह सब इसीकी साजिश है। यह बड़ा ढोंगी है। इसकी नीयत अच्छी नहीं है। बैलोंको चुरा ले जानेके लिए ही इसने उन्हें इधर उधर कर दिया था और मुझे चला गया देख कर बैलोंको वापस ले आया है। इतना उसका सोचना था कि लगा वह महावीरकी खबर लेने। उसने उन्हें हजारो गालियाँ दीं; उनकी निन्दा की, उन्हें धिक्कारा और बाद अपनी कुल्हाड़ी उठा मारने दौड़ा। इसी समय इन्द्रने आकर उसे रोका और समझाया--भाई, ये तो महा तपस्वी योगी हैं। इन्हें तेरे बैलोंकी क्या जरूरत है। ये तो खुद ही एक राजाके लड़के हैं और अपनी विशाल राज-सम्पदाको छोड़ कर ससारकी भलाईके लिए योगी हो गये हैं। ग्वाला इन्द्रके वचनोसे शान्त हो कर अपने घर चला गया। इसके बाद इन्द्रने प्रभुसे प्रार्थना की कि भगवन्,—

भविष्यति द्वादशाब्दान्युपसर्गपरम्परा ।
तां निषेधितुमिच्छामि भूत्वाहं पारिपार्श्वकः ॥

इसी तरह बारह वर्ष पर्यन्त एकके बाद एक घोर उपसर्ग आप पर होते रहेंगे। मैं आपका पारिपार्श्वक—शरीर-रक्षक—होकर उन्हें निवारण करना चाहता हूँ। इसके उत्तरमें भगवान्ने जो उत्तर दिया वह उनके आत्मबलकी दृढ़ताका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। और पराधीनताकी गुलामीमें फँसा हुआ आजका भारत आत्मामे संजीवनी शक्ति फूँकनेवाले उस महामत्रको हृदयंगम कर आचरणमें ले आवे तो उसे स्वाधीन होनेमें—स्वराज्य प्राप्त करनेमें—जरा भी देर न लगे। भगवान्ने बड़ी ओजस्वी भाषामें इन्द्रकी बातका उत्तर दिया कि—

नापेक्षां चक्रिरेऽर्हन्त परसाहायिकं क्वचित् ।
नैतद्भूत भवति वा भविष्यति जातुचित् ।
यदर्हन्तोऽन्यसाहाय्यादर्जयन्ति हि केवलम् ॥
केवलं केवलज्ञानं प्राप्नुवन्ति स्ववीर्यत ।
स्ववीर्येणैव गच्छन्ति जिनेन्द्राः परमं पदम् ॥

अर्थात् " अर्हन्त लोग कभी दूसरोंकी सहायताकी अपेक्षा नहीं करते। ऐसा न

हुआ, न है और न होगा जो अर्हन्त दूसरोंकी सहायतासे केवलज्ञान लाभ करें । वे केवल अपने आत्मबलसे केवलज्ञान लाभ करते हैं और आत्मबलसे ही परम-पदको प्राप्त होते हैं।" आत्मामें स्वाधीनताकी परम ज्योति प्रज्ज्वलित करनेवाला कैसा दिव्य मंत्र है ! स्वाधीनताकी हद हो गई !

इसके बाद भगवान्‌ने बारह वर्ष तक घोरसे घोर उपसर्गोंको परम धीरता, परम शान्तिके साथ सहा और जीव मात्रके लिए परम कल्याणकारी 'अहिंसा-धर्म' का प्रचार किया। और अपने महान् सत्याग्रहके बल पर संसारके एक बहुत बड़े भागको वे 'दयाधर्म' के झंडेके नीचे ले आये ।

४ भक्तराज प्रल्हाद ।

प्राचीन कालमे भारत-भूमि पर अनार्य दैत्योका तेजस्वी आर्योंके समान ही प्रताप था । इनसे सदा आर्य देवताओंका युद्ध और छेड़-छोड बनी रहती थी । इन्हीं दैत्योके वशमें हिरण्यकशिपु नामक एक उग्र दैत्य राजा हुआ जो बड़ा निठुर नास्तिक और अनार्य था । परन्तु जिस प्रकार कीचड़से कमल उत्पन्न होता है उसी प्रकार इस दुष्टका छोटा पुत्र प्रल्हाद परम आस्तिक, धैर्यवान् और बाल कालसे ही वीर सत्याग्रही हुआ । इस बालकके हृदयमें प्रकृतिके नैसर्गिक दृश्योंको देख कर स्वभावहीसे उनके बनानेवालेके प्रति आदर और कौतूहलके भाव उत्पन्न हो गये थे । एक बार नारदर्षिने अकस्मात् मिल कर उसे भगवान्‌का नाम और महिमा समझा दी । भावुक बालक उसी दिनसे भक्तिके रंगमें डूब गया । भगवान्‌का नाम लेना उस दैत्यपुरीमे अनहोनी बात थी छिपी न रही । अनाचारी पिताने पुत्रको बुला कर समझाया—धमकाया—फटकारा, पर सब व्यर्थ था । अन्तमे तलवारसे मारनेकी, आगमें जलानेकी, समुद्रमें डुबोनेकी, विष देनेकी अनेकों चेष्टाएँ की गई, पर कुछ फल न हुआ—व्रती बालक सत्य पर आग्रही रहा । उसकी शान्ति और धारणा विचलित न हुई । अन्तमे भगवान्‌ने पापिष्ठका नाश किया और भीति पर प्रीतिने विजय पाई । आसुरी बल पर सत्याग्रहका सम्मान ऊँचा हुआ । वही भक्तराज राजा हुआ—वही दैत्य आस्तिक हुआ । सत्यकी मर्यादा सजीवित रही ।

हजारों वर्षोंकी कथा है, पर भारतके बच्चे-बच्चेकी जिह्वा पर है । बालककी दृढताको आज तक बूढे बूढे आश्चर्यकी दृष्टिसे देखते हैं । तब भी देखा थी और अनन्त काल तक देखेंगे ।

५ सावित्री।

सावित्री राजा अश्वपतिकी पुत्री थी। बड़ी सुन्दरी और सुशीला शान्त कन्या थी। अपने पिताकी वह इकलौती पुत्री थी। बड़ी लाड़िली थी। एक बार महर्षि नारद उनके घर आये। राजाने सत्कार करके बैठाया और पुत्रीको बुला कर ऋषिके चरणोमें डाल दिया। ऋषिने कन्याको पुलकित होकर आशीर्वाद दिया। राजाने हाथ जोड़ कर पूछा—महाराज' कन्या तो पराया धन है, अभी तो यह हमारी आँखोंकी पुतली बन रही है, आगे न जाने कैसा वर मिले, कैसा सुख मिले। क्योंकि वर मिलने दुर्लभ हो रहे हैं। आप त्रिलोकीमें भ्रमण करते हो, कृपा कर इसके योग्य वर ढूँढ़ दीजिये।

ऋषिने विचार कर कहा—राजन्! इसके योग्य वर तो सत्यवान् है। वह सर्वगुण-सम्पन्न और सर्वथा उपयुक्त है, पर उसमे दो दोष हैं। वह राज-भ्रष्ट है, उसके पिताको शत्रुओंने पराजित और अन्धा करके निष्काशन दे दिया है और इसी कष्टसे उसकी माता भी अन्धी हो गई है। वे बेचारे वनमें अपने दुर्दिन क्षोभ और कष्टमें काट रहे हैं और वह वीर मन-वचन-कर्मसे उनकी सेवामे रत है। न उसे वासना है न कामना। दूसरा दोष इससे भी भारी है कि उस युवककी आयु एक वर्षहीकी शेष है।

राजाने उदास होकर कहा—तो महात्मन्! यह कैसे हो सकता है, कोई और वर बताइये। ऋषि तो चले गये, पर सावित्रीने दृढ़ कर लिया कि चाहे जो हो वह सत्यवान्‌को ही वरेगी। निदान जब राजा उसके लिये वर ढूंढनेके आयोजनमें लगे तो उसने धीरतासे स्पष्ट कह दिया कि पिताजी! ऋषिराज जो आज्ञा कर गये हैं उसमे व्यतिक्रम न होना चाहिए। सत्यवान् मेरा पति हो चुका, आप और आयोजन न कीजिये।

राजाने उसे बहुत समझाया, पर उसने कहा—नहीं, जो एक बार हो गया सो हो गया। आर्य-धर्ममे कन्याका वाग्दान एक ही बार होता है। इतना कह कर उसने सत्यवान्‌की खोजमे चलनेकी ठान ली और किसी विरोध—भय—को न मान कर वह अकेली अपने पतिकी तलाशमे चल दी।

अकेली बालिका—राजकुमारी—सत्यके हठ पर ससारमे कूद पडी। उसकी कठिनताका क्या ठिकाना था। तब न रेलें थीं, न पक्की सड़कें थीं और न

ऐसे नगर थे । उसे बड़े बड़े नदी-नाले, वन-पर्वत पार करने पड़े, हिंसक पशुओंके बीच रात काटनी पड़ी । अन्ततः वह अपने भविष्य-पतिकी कुटी पर आई और सासके चरणोंमें सिर नवा कर उसने कहा—माता ! मैं आपकी दासी पुत्र-वधू हूँ । अश्वपति राजाकी पुत्री हूँ और ऋषिराज नारदने मुझे यह सौभाग्य प्रदान किया है । वृद्धा, श्री-हीना वनवासिनी रानीको मुद्दतसे ऐसा सुख कर मधुर और प्रेम-पूर्ण वाक्य नहीं सुन पड़ा था । वह आँखोंसे लाचार थी । उसने बालिकाके मुख पर हाथ फेरा और कहा—ऐ मेरी जीवन-दात्री ! तुम देवी हो या मानवी ! मेरे प्राणोंको शीतल करने कहाँसे आई हो बेटी ! इतना कह और विह्वल होकर उसने उसे छातीसे लगा लिया और पुकारके स्वामीसे कहा—महाराज ! यह देखो तुम्हारे घरमे आज भाग्यलक्ष्मी आई है । वृद्ध राजा आनन्दसे गद् गद् हो गया । उसने कहा—बेटी ! अपना राज-सुख छोड़ कर इस दीन कंगालके दुःखमें भाग लेने क्यों आई हो । हम अन्धे मुँहताज तुम्हारी क्या सेवा करेंगे—कैसे तुम्हे सुख देंगे ?-तुम फूलोंकी छड़ी—यहाँ वनमें क्या शोभित होगी । सावित्रीने नम्रतासे कहा—पिताजी ! मैं आपकी दासी हूँ, आपको कोई कष्ट न दूँगी । इतनेहीमे सत्यवान् वनसे समिधा लेकर आया । उसने देखा कि कुटीमें उजियाला हो रहा है—एक अनिन्द्य सुन्दरी बाला संसार भरकी लज्जा, विनय समेटे वहाँ बैठी है । आहट पाकर माताने कहा—"सत्यवान् बेटा ! आ गया क्या ?" सावित्रीने आँख उठा कर देखा—वही कन्दर्पके समान सुन्दर युवक उसका पति है । उसने मन ही मन उन्हें—ऋषि नारदको—और संसारके स्वामी भगवान्‌को प्रणाम किया । सत्यवान् खड़ा होकर चुपचाप चकित दृष्टिसे उस अपरिचिता बालाकी ओर देखता रहा । फिर उसने पूछा—माता ! यह देवबाला कौन हैं, जिन्होने हमारी कुटीको आलोकित कर रक्खा है । वृद्धाने कहा—पुत्र ! यह गृहलक्ष्मी है—मेरी पुत्र-वधू है, राजा अश्वपतिकी पुत्री है और हम सबके स्वर्गको लेकर आई है । बेटा ! आज आनन्दका दिन है । वृद्ध महाराजने कहा—जाओ पुत्र ! सब ऋषियोंको निमन्त्रण दे आओ । आज ही रातको विवाह हो जाना चाहिए । सत्यवान् प्रेम, उत्कण्ठा, आश्चर्य और उद्वेगसे तनको, मनको न सँभाल सका—उसकी सुध-बुध खो गई !

विवाह हो गया और सावित्री मन-वचन-कर्मसे पति, सास-ससुरकी सेवा करने लगी । पतिने, सासने, श्वसुरने, कुटीने, कुटीके बाहरके वृक्षोंने, वृक्षोंकी आश्रित लताने—सबने नव-जीवन पाया—सब खिल उठे—शोभित हो उठे—दीप्त हो उठे ।

सावित्रीके मनमें एक काँटा था। वह एक एक करके एक दिनको याद करती थी, उस दिनकी उसे बड़ी कसक थी, उसी दिन तक उसका सौभाग्य था। पर उसने जिस आत्मवल और सत्याग्रहसे राज-सुख त्यागा—भयंकरताको वरा—उसी बल पर वह कहती—नहीं, मैं विधवा न होऊँगी। पतिभक्ता—पतिम्वरा—सुशीला कभी विधवा नहीं होती—मैं विधवा न होऊँगी।

अन्तमें वह दिन निकट आया। बालिकाका हृदय सन्दिग्ध हो उठा—बेचैनी बढ गई। वह भगवान्‌के नाम पर अपने आत्मवलको दृढ़ करने लगी। उसने तीन दिन प्रथमसे उपवास करना प्रारम्भ किया, सिरके बाल खोल दिये, हठात् जागरण किया और आत्मयोगमें मन लगाया। तीन दिनके कठिन व्रतने उसकी आत्मामे बल दिया। उसे एक हल्की-सी ज्योति हृदयमें दीख पड़ी—मानो वह आश्वासन दे रही थी, डरे मत, तेरा सौभाग्य अचल है।

वही दिन आया। सावत्री सूर्योदयसे पूर्व ही स्नान आदिसे निपट कर सज्ज हो गई। आज सत्याग्रहका महा मोर्चा था। सत्यवान् कुल्हाड़ी हाथमें ले वनको लकडी काँटने चला। सावत्रीने अनुनयसे कहा—स्वामी! आज इस दासीको भी अपने साथ वन ले चलो—बहुत दिनसे लालसा है—वन कैसा होता है सो देखनेकी बड़ी चाह है।

सत्यवान् उसकी सरलता और भोलेपन पर हँस पड़ा। उसके मधुर होठोमे स्वच्छ हँसी देख कर सावत्रीकी आँखोसे आँसू टपक पड़े। सत्यवान्‌ने घबरा कर कहा—ऐं! यह क्या! रोना क्यों? मै तो यह सोचता था कि वन क्या देखनेकी वस्तु है? वह बड़ा दुर्गम, कठिन और सुनसान है। कड़ी धूपमे तुम चल कैसे सकती हो? सावत्री एक-टक देखती रही। उसकी आँखोमे और भी दो बूँद आँसू टपक पड़े। सत्यवान्‌ने कहा—इतना क्यो? ऐसी ही इच्छा है तो चलो। सावत्री चुपचाप काछा कस कर सत्यवान्‌के पीछे पीछे होली। हृदयमें उसने बल सञ्चय किया, भगवान्‌का नाम लिया, सास-स्वसुरके चरण छुए और विश्वदेवसे सुहागका असीस माँगा। उसने देखा वन और वृक्ष सब सुहाग बर्षाने लगे है। बालिकाने मनमे दृढतासे कहा—ना! मैं विधवा नहीं होऊँगी।

दो पहर हो गया। सत्यवान् कौतुक करता जाता था और लकड़ी काट रहा था। उसने दो गट्ठर बना लिये। सावित्री उनके साथ हँस रही थी, पर मन उसका

चंचल हो रहा था। वह घडी-घडी आत्मबलको टटोल रही थी। सत्यवान्का उधर लक्ष्य न था—वह उससे ठठोली करता जाता था और लकडी काटता जाता था। सावत्रीने कहा—अब बस करो, बहुत बोझ हो गया है। सत्यवान्ने भी तुरंत कुल्हाडी फेंक दी और हँस कर कहा—ठीक है, मेरे सिरमे भी बडा दर्द है। सावत्रीके कलेजेमे धक्से हुआ, पर उसने अपने मनमे कहा—नहीं, मैं विधवा नहीं होऊँगी। फिर उसने सोचा, ऋषि-वाक्य झूठा भी नहीं हो सकता। वह जरा घबराई। फिर उसने सोचा, पर ऋषिने मुझे सौभाग्यका असीस भी तो दिया है—जो हो, मैं विधवा नहीं होऊँगी।

सत्यवान्का दर्द बढता गया। उसने व्याकुल होकर कहा—मैं जरा लेटूँगा। सावत्रीने धैर्यसे उसे अपनी गोदमे लेटा लिया। कठिन घड़ी आ पहुँची। परन्तु सावत्रीका तब पूर्ण आत्मबल संचय हो चुका था—उसमे अब तनिक भी निर्बलता न रह गई थी।

पुराणोंमें लिखा है सत्यवान्के प्राणोंका संहार करने स्वय यमराज आये। उनके दूतोंको सतीके आत्मबलका सामना करनेका साहस न हुआ। यमको देख कर सावत्री डरी नहीं। उसने उन्हें प्रणाम किया। यमने कहा—देवी! विधिकी विडम्बना अटल है। मैं तेरे आदरके लिये आया हूँ। और तेरे विनयसे प्रसन्न हूँ, पर सौभाग्यका वर नहीं दे सकता—सत्यवान्का प्राण मुझे दो—इसके सिवा और वर माँग ले। सावत्रीने कहा—महाराज! मेरे सास-ससुरको आँखे मिलें। यमने कहा—तथास्तु, ला सत्यवानका प्राण दे। सावत्रीने कहा—महाराज! आपने स्वामीके प्राण न माँगनेकी आज्ञा दी है, वह मुझे शिरोधार्य है, पर मैं स्वामीके प्राण दूँगी नहीं—आप बल-पूर्वक हरण करे। यमने कहा—बेटी! हठ मत कर। तेरे साहस और पति-प्रेम पर मैं प्रसन्न हूँ, तू सत्यवान्के प्राणोंको छोड कर और कुछ माँग ले। सावत्रीने कहा—मेरे श्वसुरके शत्रु क्षय हो और उन्हें गया राज्य मिले। यमने कहा—तथास्तु, ला सत्यवानके प्राण दे। सावत्रीने कहा—देव! पतिव्रता पतिके प्राणोंको कैसे यमको दे सकती है, बल-पूर्वक हरण करिये। यमने कहा—पतिव्रतासे बल-पूर्वक उसके पतिका प्राण लेनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, पर भाग्य-विपाक अटल है। तू उसमें विघ्न डाल कर अनाचार मत कर, ला प्राण दे। इसके बदले और चाहे जैसा वर माँग ले। सावत्रीने कहा—अच्छा यह वर दीजिये कि मेरे सौ

पुत्र हो । यमने कहा—" तथास्तु । " ला अब सत्यवान्के प्राण दे । सावित्रीने हँस कर कहा—देवाधिपते ! मेरी विजय हुई—आप चाहें तो स्वामीके प्राणोंको ले जाइये, पर पतिव्रता सावित्रीके सौ पुत्र उत्पन्न होनेमें समय लगेगा । यमराज अवाक् हो गये । उन्होंने कहा—मैं हारा, सत्यवान्को मैंने तुझे सौंपा, इसकी दीर्घायु हुई, तू निश्चय सौ पुत्रोंकी माता होगी ।

यह कथा सत्ययुगकी है । लाखों वर्ष वीत जाने पर भी आज तक वट-सावित्रीके दिन इस सत्याग्रही वालाकी पूजा सर्वत्र भारतमें जेष्ठ वदी अमावसको होती है ।

६ शाह सैयद सरमद ।

ये आलमगीर औरंगज़ेवके समयमें एक ईश्वर-वादी साधु थे । एक जौहरीके पुत्र अमीचन्द नामकसे इन्हें अप्रतिम प्रेम था । उसी आवेशमें वे उसे खुदा कहा करते थे । ये बहुधा नंगे रहते थे । उस जमानेमें जो दिल्लीका क़ाजी था उसका नाम था काजीक़वी । उसने औरंगजेवसे शिकायत की कि सरमद नामका एक शख्स तमाम शहरमें नंगा फिरता है, क़ल्मा नहीं पढ़ता है और अमीचन्दको खुदा कहता है । औरंगजेबने तुरन्त सिपाहियोंको भेज कर उसे गिरफ्तार कराया और अपने दरबारमें बुलाया । उनकी जो वातें हुई वह ' मुन्तखिवुल-नफाइस ' नामकी फारसी किताबमें इस तरह दर्ज है ।

औरंगजेव—खुदायत् कीस्त ऐ सरमद दरीं दहर (तेरा खुदा कौन है ऐ सरमद इस आलममें)।

सरमद—नमीं दानम् अमीचन्दस्त या ग़ैर (मै नहीं जानता कि अमीचन्दके सिवा कोई और है)।

औ०—सरमद ! जामा चिरा न मे पोशी (ऐ सरमद ! कपड़े क्यों नहीं पहनता)।

सरमद—आँकस कि तुरा-मुल्को जहाँ दानी दाद ।
मारा हमाँ अस्वावे परेशानी दाद ।
पोशाँ लिवास-हरकिरा-ऐवे दीद ।
वे ऐवाराँ लिवासे उरियानी दाद ।

(जिस शख्सने तुझे मुल्क और वादशाहत दी और मुझको तमाम सामान परेशानीके दिये उसी शख्सने उनको लिवास पहनाया जिनमें कि ऐव देखा और बे-ऐवोंको नंगेपनका लिवास दिया ।)

चचल हो रहा था । वह घडी - घडी आत्मवलको टटोल रही थी । सत्यवान्‌का उधर लक्ष्य न था—वह उससे ठठोली करता जाता था और लकड़ी काटता जाता था । सावत्रीने कहा—अव बस करो, वहुत वोझ हो गया है । सत्यवान्‌ने भी तुरंत कुल्हाडी फेक दी और हॅस कर कहा—ठीक है, मेरे सिरमे भी वडा दर्द है । सावत्रीके कलेजेमे धक्‌से हुआ, पर उसने अपने मनमे कहा—नहीं, मैं विधवा नहीं होऊॅगी। फिर उसने सोचा, ऋषि-वाक्य झूठा भी नहीं हो सकता। वह जरा घवराई। फिर उसने सोचा, पर ऋषिने मुझे सौभाग्यका असीस भी तो दिया है—जो हो, मैं विधवा नहीं होऊॅगी ।

सत्यवान्‌का दर्द वढता गया। उसने व्याकुल होकर कहा—मैं जरा लेटूॅगा। सावत्रीने धैर्यसे उसे अपनी गोदमे लेटा लिया । कठिन घड़ी आ पहुॅची । परन्तु सावत्रीका तव पूर्ण आत्मवल संचय हो चुका था—उसमे अव तनिक भी निर्वलता न रह गई थी ।

पुराणोंमें लिखा है सत्यवान्‌के प्राणोंका संहार करने स्वय यमराज आये । उनके दूतोंको सतीके आत्मवलका सामना करनेका साहस न हुआ । यमको देख कर सावत्री डरी नहीं। उसने उन्हे प्रणाम किया । यमने कहा—देवी ! विधिकी विडम्वना अटल है । मै तेरे आदरके लिये आया हूॅ । और तेरे विनयसे प्रसन्न हूॅ, पर सौभाग्यका वर नहीं दे सकता—सत्यवान्‌का प्राण मुझे दो—इसके सिवा और वर मॉग ले । सावत्रीने कहा—महाराज ! मेरे सास-ससुरको ऑखे मिलें । यमने कहा—तथास्तु, ला सत्यवानका प्राण दे । सावत्रीने कहा—महाराज ! आपने स्वामीके प्राण न मॉगनेकी आज्ञा दी है, वह मुझे शिरोधार्य है, पर मै स्वामीके प्राण दूॅगी नहीं—आप वल-पूर्वक हरण करें। यमने कहा—वेटी ! हठ मत कर । तेरे साहस और पति-प्रेम पर मैं प्रसन्न हूॅ, तू सत्यवान्‌के प्राणोंको छोड़ कर और कुछ मॉग ले । सावत्रीने कहा—मेरे श्वसुरके शत्रु क्षय हो और उन्हें गया राज्य मिले । यमने कहा—तथास्तु, ला सत्यवान्‌के प्राण दे । सावत्रीने कहा—देव ! पतिव्रता पतिके प्राणोंको कैसे यमको दे सकती है, वल-पूर्वक हरण करिये । यमने कहा—पतिव्रतासे वल-पूर्वक उसके पतिका प्राण लेनेकी मुझमें शक्ति नहीं है, पर भाग्य-विपाक अटल है। तू उसमें विघ्न टाल कर अनाचार मत कर, ला प्राण दे । इसके वदले और चाहे जैसा वर मांग ले। सावत्रीने कहा—अच्छा यह वर दीजिये कि मेरे मां

पुत्र हो। यमने कहा—"तथास्तु।" ला अब सत्यवान्‌के प्राण दे। सावत्रीने हँस कर कहा—देवाधिपते! मेरी विजय हुई—आप चाहें तो स्वामीके प्राणोंको ले जाइये, पर पतिव्रता सावित्रीके सौ पुत्र उत्पन्न होनेमें समय लगेगा। यमराज अवाक् हो गये। उन्होंने कहा—मैं हारा, सत्यवान्‌को मैंने तुझे सौंपा, इसकी दीर्घायु हुई, तू निश्चय सौ पुत्रोंकी माता होगी।

यह कथा सत्ययुगकी है। लाखों वर्ष बीत जाने पर भी आज तक वट-सावित्रीके दिन इस सत्याग्रही बालाकी पूजा सर्वत्र भारतमे जेष्ठ वदी अमावसको होती है।

६ शाह सैयद सरमद।

ये आलमगीर औरंगज़ेबके समयमें एक ईश्वर-वादी साधु थे। एक जौहरीके पुत्र अमीचन्द नामकरा इन्हें अप्रतिम प्रेम था। उसी आवेशमें वे उसे खुदा कहा करते थे। ये बहुधा नंगे रहते थे। उस ज़मानेमें जो दिल्लीका क़ाजी था उसका नाम था काजीक़वी। उसने औरंगजेबसे शिकायत की कि सरमद नामका एक शख्स तमाम शहरमें नंगा फिरता है, कल्मा नहीं पढ़ता है और अमीचन्दको खुदा कहता है। औरंगज़ेबने तुरन्त सिपाहियोंको भेज कर उसे गिरफ्तार कराया और अपने दरबारमे बुलाया। उनकी जो बातें हुई वह 'मुन्ताख़िबुल-नफाइस' नामकी फारसी किताबमे इस तरह दर्ज है।

औरंगज़ेब—खुदायत् कीस्त ऐ सरमद दरीं दहर (तेरा खुदा कौन है ऐ सरमद इस आलममें)।

सरमद—नमी दानम् अमीचन्दस्त या ग़ैर (मै नहीं जानता कि अमीचन्दके सिवा कोई और है)।

औ०—सरमद! जामा चिरा न मे पोशी (ऐ सरमद! कपड़े क्यों नही पहनता)।

सरमद—आँकस कि तुरा-मुल्को जहाँ दानी दाद।
मारा हमाँ अस्बाबे परेशानी दाद।
पौशाँ लिबास-हराकिरा-ऐबे दीद।
बे ऐबाराँ लिबासे उरियानी दाद।

(जिस शख्सने तुझे मुल्क और बादशाहत दी और मुझको तमाम सामान परेशानीके दिये उसी शख्सने उसको लिबास पहनाया जिसमे कि ऐब देखा और बे-ऐबोंको नंगेपनका लिबास दिया।)

बाद०—सरमद! क़ल्मा चिरा न मे ख़्वाँदी (सरमद! क़ल्मा क्यों नहीं पढ़ता)?

सरमद—चुगूनाँ ख़्वानम् के बरमन् क़वीस्त शैतॉ। (किस तरह पढ़ें, क्योंकि मेरा शैतान ज़बर्दस्त है।)

बादशाह इस बातचीतसे बहुत नाराज़ हुआ। उसने हुक्म दिया कि यदि यह अपने विश्वासको न बदले तो इसकी गर्दन काट ली जाय। तमाम दरबारियोंने समझाया कि वह इन तीनों बातोसे तोबा कर ले। लेकिन सरमदने साफ कह दिया कि मैं अपनेमें कोई ऐब या चोरी या कपट नहीं देखता कि तोबा करूँ। मेरा आत्म-विश्वास मेरे साथ है और वह पवित्र है—किसीके मार्गमें बाधा नहीं डालता—मैं तोबा नहीं करूगा।

उसके बाद जल्लादको बुलाया गया। उस ज़मानेमें जल्लाद सुर्ख़ पोशाकमे आया करते थे। सरमदने जब जल्लादको सुर्ख़ कपड़ोंमें आते देखा तो वह बहुत हँसा और मौजमें आकर उसने यह शेर पढ़ा कि—

बहर रंगे के ख़्वाही जामा मे पोश।
मन अज़ ज़ेबाए क़द्दत मे शनासम्॥

(जिस रंगके तेरा जी चाहे कपड़ पहन ले, मैं तो तेरे क़दकी ख़ूबसूरतीमे तुझे पहचानता हूँ।)

निदान जल्लादने बढ़कर एक हाथ मारा और उसकी गर्दनसे सिर अलग हो गया। गर्दन बजाय जमीन पर गिरनेके एक नेजा ऊँची हो गई और उस वक़्त भी एक शेर मुँहसे निकला—

सर जुदा कर्द अज़ तनम् शोख़े कि बामा यार बूद।
क़िस्सा कौताह गश्त वरना दर्द सर बिसियार बूद॥

(सर मेरा उस माशूक़ने जुदा किया जो मेरा बहुत दोस्त था। चलो क़िस्सा ख़तम हुआ, वरना बड़ी भारी सरदर्दी थी)।

मुसलमानी किताबोंमें आलिमोंने इस कामको अच्छी नजरसे नहीं देखा। मुसलमान अब तक सैयद सरमदके औलिया होनेके क़ायल हैं। उनका मज़ार दिल्लीमे पूर्वी दरवाजेकी तरफ जामे मस्जिदके सामने हरे भरे पीरके पास ही है। जहाँ आज तक हिन्दू-मुसलमान उनकी ज़ियारत करते है। किसी मुसलमान शायरने यह शेर भी लिखा है—

सर कटा है जबसे सरमदका।
तख्त-ताराज हो गया है हिन्दका।
—साहेब जादा, जमीरखाँ साहेब जावरा।

सामाजिक सत्याग्रह।

१ भगवान् रामचंद्र।

क्या हिन्दू और क्या अहिन्दू भगवान् रामका पुण्य-नाम ससारके स्त्री, बच्चे तक जानते हैं। आपका सत्याग्रह लोकोत्तर था—ससार प्रलय तक उसकी स्पर्द्धा करे तो भी उसे प्राप्त नहीं कर सकता। उसीके बलसे आप लोकोत्तर महा-पुरुष कहलाये और मर्य्यादा पुरुषोत्तमका अप्रतिम पद आपने प्राप्त किया।

आपको क्या नहीं प्राप्त था—आप चक्रवर्त्ती साम्राज्यके एकच्छत्र सम्राट् थे। आपने कामदेवका रूप पाया था, वीरतामे पृथ्वीभरमें उनकी जोड़का कोई न था। आपके भरत जैसे धर्मसिन्धु, लक्ष्मण जैसे महावीर और शत्रुघ्न जैसे रथी भाई थे। प्रलय तक सतीत्वका आदर्श रखनेवाली, रूप-गुण-शीलमें अप्रतिम सीतादेवी आपकी सौभाग्य-लक्ष्मी थीं। वशिष्ठ जैसे ब्रह्म-विजयी ज्ञानी गुरु थे। संसारके तत्कालीन ऐश्वर्यकी प्रदर्शिनी-स्वरूप अयोध्या उनकी राजधानी थी। उन्हें पिता, माता, भ्राता, सेवक, प्रजा—इन सबका दुर्लभ अखण्ड प्रेम प्राप्त था। ऐसा कोई न था जो रामके नाम पर प्राण न्यौच्छावर न करे—रामकी शुभ कामना न करे। ये सब दैवी गुण, अलौकिक ऐश्वर्य, अक्षय कीर्ति ससारमें कितने महा-पुरुषोंको मिलती है? पर इतना होने पर भी उस सत्याग्रही वीरने उन सबका आत्मबल पर बलिदान कर दिया था! वे बुढ़ापे तक जिये, पर अपने जीवनके एक क्षणमे भी सुखी न हुए और न किसी ऐश्वर्यको उन्होंने भोगा। उनके ऊपर कोई अत्याचारी व्यक्ति या समाज नहीं था—सब उन पर न्यौछावर होते थे। उनके हाथसे उनके सुख और ऐश्वर्यको किसीने बलात् नहीं छीना था। प्रत्युत सुखका लबालब कटोरा, घोर प्यासके समय, होठों तक लगाये ही पाये थे कि उसे सत्याग्रहके नाम पर न्यौछावर कर दिया, तिस पर भी किसीने उनके भौंहमें बल न देखा! हद है

आत्मबलकी । उनका यह त्याग, यह सत्य उनके स्वतन्त्र आत्मबल पर था। दो प्रकारके सत्याग्रही होते हैं। एक तो वे जो सत्याग्रहके लिये मरते हैं, दूसरे वे जो सत्याग्रहके लिये जीते हैं। मरनेसे जीना कठिन है। दुःख देख कर मर-मिटना आसान है, पर जीवित रह कर सब कुछ सहना बड़ा दुर्धर्ष है। भगवान् राम ऐसे ही अलौकिक सत्याग्रही थे।

उनके त्याग और सत्याग्रहमें सीताका त्याग बड़े महत्त्वका है। संसार यदि रामका अनुकरण करना चाहे तो सम्भव है कर सकता है और रामके बराबर हो सकता है, पर सीता-त्याग अलौकिक आत्मबलका नमूना है—उसका कोई अनुकरण कर ही नहीं सकता—संसारमें ऐसा आत्मबल है ही नहीं।

राम और सीताका परस्पर क्या व्यवहार था, यह समझनेसे इसका महत्त्व समझमे आ जायगा। भगवान् वाल्मीकि अपने सीधे और स्वाभाविक शब्दोंमें कहते हैं—

प्रकृत्यैव प्रिया सीता रामस्यासीन्महात्मनः।
प्रियभावः स तु तया स्वगुणैरेव वर्द्धितः।
हृदय त्वेव जानाति प्रीतियोगं परस्परम्॥

अर्थात्—देवी सीता स्वभावसे ही महात्मा रामको प्यारी थी। वही प्यारका भाव उन्होंने (सीताने) अपने गुणोंसे और भी बढा दिया था। अधिक क्या परस्परके प्रीति-योगको हृदय ही जानता है—यह कहने-सुननेका विषय नहीं है।

कैसा छोटा पर गम्भीर वर्णन है। सीताके हरे जाने पर रामकी विरह-वेदना कैसी करुण और दारुण थी और रामका लंका जाकर सीताका उद्धार करनेका प्रयत्न कैसा दुर्द्धर्ष था। इससे क्या यह सिद्ध नहीं होता कि राम सीताको सारे ब्रह्माण्डसे अधिक प्यार करते थे। यह नहीं समझना चाहिए कि यह विरह-वेदना कामुकोंके जैसी थी। १४ वर्ष वनवासके, स्त्री साथ रहने पर भी, वैसे एकान्तमें, उन्होंने कठिन ब्रह्मचर्य-व्रतसे काटे थे। क्या यह साधारण बात है। रामका जब पुनः अयोध्या-प्रवेश हुआ तभी सीताको गर्भ रहा। पर रामने उस अमूल्य रत्नको—जिसे कितने कष्टसे प्राप्त किया था—उसी नाजुक दशामें त्याग दिया। यह चोट रामके लिये असह्य थी, परन्तु उन्होंने अपने व्यक्तिगत सुखकी या प्यासकी परवा न की—उन्होंने सामाजिक उत्तरदायित्वके आधार पर, उसी उद्देश्यसे जिसे उन्होंने

आजन्म पालन किया था, सीताको—अपने हृदयको—उसकी वासनाओंकी मनस्तुष्टिको—जीवनके आसरेको—सबको त्याग दिया । आप क्या समझते होंगे कि सीता इस निरापराध अत्याचार पर भी क्या नाराज हुई । नहीं, वे अप्रतिम पतिभक्ता थीं। वे अपने पति रामको भी जानती थीं और मर्यादा-पुरुषोत्तम सत्याग्रही महा-पुरुष रामको भी जानती थीं । वनमें जाकर जब उन्हें एकाएक मालूम हुआ कि उन्हें त्यागा गया है तब उन्होने जो उद्गार कहे हैं वे भी सुनने योग्य हैं।—

कल्याणबुद्धेरथवा तवायं, न कामचारो मयि शङ्कनीयः ।
ममैव जन्मान्तरपातकानां, विपाकविस्फूर्जथुरप्रसह्यः ॥
उपस्थितां पूर्वमपास्य लक्ष्मीं, वनं मया सार्द्धमसि प्रपन्नः ।
तदास्पदं प्राप्य तयातिरोधात्, सोढाऽस्मि न त्वद्भवने वसन्ती ॥
निशाचरोपप्लुतभर्तृकाणां, तपस्विनीनां भवतः प्रसादात् ।
भूत्वा शरण्या शरणार्थमन्य, कथं प्रपत्स्ये त्वयि दीप्यमाने ॥
किं वा तवात्यन्तवियोगमोघे, कुर्यामुपेक्षां हतजीवितेस्मिन् ।
स्याद्रक्षणीय यदि मे न तेजस्त्वदीयमन्तर्गतमन्तराय ॥
साऽहं तप सूर्यनिविष्टदृष्टिरूर्ध्वं प्रसूतेश्चरितुं यतिष्ये ।
भूयो यथा मे जननान्तरेऽपि, त्वमेव भर्ता न च विप्रयोगः ॥

अर्थात्—शुभ बुद्धिवाले आप मुझ पर व्यभिचारकी शंका कभी नहीं कर सकते । मेरे ही पूर्व जन्मके पातकोंका यह असह्य फल उदय हुआ है । पहले वन-वासके समय, स्वयं उपस्थित हुई राजलक्ष्मीको छोड़ कर आप मेरे साथ वनको गये । वही राजलक्ष्मी आज आपको पाकर मेरा आपके पास रहना कैसे सह सकती है ? आपकी कृपासे मेरी शरणमें ऋषि-पत्नियाँ आती थीं, क्योंकि उनके पतियोंको राक्षस सताते थे । वही मैं आज आपके विद्यमान रहते दूसरोकी शरणमें कैसे जाऊँगी । अथवा आपके वियोगसे निष्फल इस जीवनको ही मैं क्यो न छोड़ दूँ । किन्तु बाधा यही है कि आपका गर्भ मेरी कोखमे है । मैं पुत्र होनेके उपरान्त सूर्यमें दृष्टि लगा कर तप करनेकी चेष्टा करूँगी, जिससे दूसरे जन्ममे आप ही मेरे पति हो और वियोग न हो (रघुवश १४ सर्ग) ।

कैसा करुण, उत्तेजक और पवित्र भाषण है ! यद्यपि उस समयमे बहु-विवाहकी कुरीति प्रचलित थी, पर सत्याग्रही भगवान्‌ने सीताको त्यागने

पर भी विवाह नहीं किया। दोनोंकी आत्मा दोनोंको प्यार करती रही। दोनों एक दूसरेको देख तो न सकते थे, पर एक दूसरेकी मंगल-कामना सदा करते थे। २० वर्ष बाद जब अश्वमेध यज्ञ करनेकी गुरु वशिष्ठने आज्ञा दी तो प्रश्न स्त्रीका उठा। गुरुने दूसरे विवाहकी आज्ञा की। तब रामने बाष्प-निरुद्ध कण्ठसे गुरुके चरण पकड़ कर कहा—स्वामी! और जो कहें सो करूँ, पर ये शब्द मत कहिये। अभी मैंने सत्याग्रहके नाम पर अपने प्यार पर, अत्याचार किया है, ईश्वर न करे कि मैं कभी सतीत्वकी अवतार सीता पर अत्याचार करूँ! कर्म-वृद्धे तपस्वीकी आँखोंमें आँसू भर आये। अन्तमें सोनेकी सीता बना कर यज्ञका अनुष्ठान हुआ।

आज लाखों वर्ष बीत गये, पर महा-पुरुष मर्यादा-पुरुषोत्तम राम आज भी जीवित हैं, पृथ्वीने उनकी जोड़का नहीं पैदा किया है।

२ महात्मा बुद्ध।

महात्मा बुद्ध अपने ढँगके अपूर्व सत्याग्रही हो गये हैं। कुछ कुछ ऐसे प्रमाण मिलने लगे हैं कि हजरत मसीह इन्हींकी शिक्षाके शिष्य थे। जो हो, किन्तु महात्मा बुद्ध एक अलौकिक सत्याग्रही थे।

वे एक राजाके पुत्र, गद्दीके उत्तराधिकारी, परम सुन्दरी साध्वी स्त्रीके पति और सर्व भोग-प्राप्त भाग्यवान् थे। आपने आत्मबलकी खोजमें धैर्य, शान्ति और अनुद्वेग चित्तसे सब कुछ त्याग दिया। आप आत्मबलकी खोजमें, तपस्वियों, मुनियो और विद्वानोंकी शरणमें गये। किसीने इन्हें धर्मशास्त्र पढनेको कहा, किसीने दर्शन-शास्त्र, पर इनकी रुचि पढनेमें नहीं थी। बहुत ढूँढने पर भी इन्हें विद्यामें, तर्कमें, विज्ञानमें शान्ति नहीं मिली—आत्मबल नहीं प्राप्त हुआ। ये उन ग्रन्थोंको तुच्छ और अश्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे। इन्हें मूर्ख और आलसी कह कर विद्यार्थियोंने धक्के मार कर निकाल दिया, गुरुओंने पढ़ाना अस्वीकार किया। अन्तमे वे एकान्तमें एक वृक्षके नीचे बैठ कर विचार करने लगे। धीरे धीरे इनकी मनन-शक्ति बढ़ी, आत्मबलका तत्त्व समझमे आ गया और आप शायद संसारमें आत्मबलके प्रथम योद्धा बने।

इनका समय वह था जब देशभर मांसाहारी जनोंसे भर रहा था, असंख्य जीव-जन्तु नित्य मनुष्य-रत्नोंके पेटके लिये तड़फ तड़फ कर जबर्दस्ती मारे जाते थे। इन्होंने दयार्द्र-चित्तसे उन मूक सुजनताका पक्ष लेकर उन हत्याओंका प्रधानतः विरोध

किया। अकेलेको सारे संसारसे युद्ध करना पड़ा। अन्तमें सत्याग्रहकी विजय हुई। भारतमें एक समय ऐसा आया था कि आधी पृथ्वी बुद्धके चरणोंमे गिर गई थी। आज भी पुरातत्त्वमें यदि कोई जीवित प्रमाण है तो भगवान् बुद्धके शिष्योंके कुछ कारनामे हैं।

धार्मिक सत्याग्रह।

१ महात्मा मसीह।

यह वह महा-पुरुष है जिसके चरणोमें आज आधी दुनिया है और बाकी आधी उसके शिष्योके चरणोंमें है। ये महा-पुरुष जिस समय जिस देशमें हुए उस समय उस देशमें कोई पढ़ना-लिखना भी न जानता था, बड़े विद्वत्ता-पूर्ण तात्त्विक लेखक तब तक नहीं हुए थे। अद्भुत अद्भुत आज जैसे वैज्ञानिक आविष्कारक तब नहीं थे। मसीहके पास न तलवार थी, न विद्या थी, किन्तु एक आत्मबल था। उसका उपदेश प्रेमका था। उसका कथन था कि एक परमेश्वर ही सर्वोपरि है। उस जमानेमें मूर्त्ति-पूजकोंका बड़ा प्रावल्य था। पर मसीहने शान्ति-पूर्वक प्रचार किया कि ये पत्थरकी प्रतिमाएँ कदापि ईश्वर नहीं हैं। राजा और प्रजाके विरुद्ध यह आवाज थी। हजारों वर्षके अन्ध विश्वासके विरुद्ध यह घोषणा थी। उत्तर-में मसीहको क्या क्या कष्ट न दिये गये—उन पर क्या पातक न लगाये गये, पर महात्मा मसीह शान्ति, धर्म और सत्यकी मूर्ति था। वह अपने आत्म-विश्वास पर अटल था। वह शत्रुओको क्षमा करता, उनकी कुशल माँगता—उनकी हित-कामना करता था। उस वीर सत्याग्रहीने अलौकिक स्थैर्यके साथ अत्याचारका मुकाबिला किया। उसने धीरज धर कर विना प्रतिकारके अत्याचार अपने ऊपर होने दिया कि जिससे अत्याचारी समझ लें कि वे अत्याचार कर रहे हैं। अन्तमें उसे सलीब पर लटका कर उसके हाथ-पावोंमें लोहेके कीले ठोक दिये गये और वह भगवान्से उन अत्याचारियोके लिये क्षमा माँगता हुआ—शान्ति-पूर्वक मृत्युको प्राप्त हुआ। उसके उपदेशका काल ढाई वर्ष था! इन्हीं ढाई वर्षकी कमाई देखिये कि मसीहके झंडेके नीचे आधी पृथ्वी है और बाकी आधी उसके चरणोंमे है। वह मसीहके

अलौकिक सत्याग्रहका फल था । मसीहके पीछे उसके शिष्योंने भी वह अपूर्व सत्याग्रह किया है कि धार्मिक अत्याचारको संसारसे समूल नष्ट कर दिया ।

२ पावल प्रेरित ।

मसीहके बाद ईसाई समाजका सर्व-प्रथम सत्याग्रही योद्धा पावल था । वह मूर्ति-पूजकोंमे उनके विश्वासके विपरीत मसीही धर्मका प्रचार करता था । उसने आश्चर्य-जनक सकष्ट सहा, पर सत्याग्रह न छोडा । पॉच वार यहूदियोंकी रीतिसे और तीन वार रोमियोंकी रीतिसे उसने कोड़े खाये । एक वार पत्थर-वाह किया गया और चार वार उसकी नाव मारी गई । एक रात-दिन वह समुद्रमे रहा और अन्तमें मसीही धर्म पर विश्वासके अपराध पर मारा गया ।

इस महा पुरुषने मसीही धर्मका प्रचार वडी निर्भीकता और अदम्य उत्साहसे किया और बड़े धैर्य और सहिष्णुतासे सब कष्टोंका सामना किया । उसने ऐशिया, यूनान, किलिप्पी, थिसलनी, विरिथ, इफिस और मिलीत नगरोमें प्रचार किया और वहुतसे शिष्य बनाये । अन्तमें जेरुसलममें फिर पकड़ा गया और दो वर्ष कैसरिया नगरमें कैदी रख कर रोमको भेजा गया ।

उन दिनों रोमनगर ससारके बढे चढे नगरोंमेंसे एक था । संसार भरके भाषा-भाषी व्यापारी रोमके बाजारोंमे चलते थे । मानो वह एक स्वयं छोटासा जगत था । यूरोप और उत्तरखण्ड अफ्रीका और पच्छिम खण्ड एशियाका सव उत्तम और सुन्दर प्रदेश उसके अधीन था । इस नगरका वडा भारी विस्तार था और यह सात पहाड़ो पर वसा हुआ था । उसमे ३० लाख आदमी रहते थे । एक हजार सातसौ अस्सी उसमें सरकारी इमारतें थीं, जिनमें नेरो राजाका राजमहल अप्रतिम था । देवताओके चारसौसे अधिक मन्दिर थे, जिनमें कपिटोल नामक यूपितर देवताका मन्दिर जो कपिटोली पहाड पर बना था, वडा विशाल था और उसके ऐश्वर्यकी वडी-प्रसिद्धि थी । उसकी लागत एक करोड रुपये कूते जाते थे । ऐसी ही यह महानगरी थी जहाँ प्रथम वार मसीही प्रचारकोंको सत्याग्रह प्रयोग करना पडा था ।

रोमका वादशाह नेरोकी निष्ठुरता प्रसिद्ध है । गद्दी पर वैठते ही उसने प्रथम अपने गुरु, रक्षकों, माता, स्त्री आदिका वध करवा डाला । फिर उसने गर्वमें चूर होकर यह निश्चय किया कि मैं समस्त रोमको प्रथम तो जला कर भस्म कर डालूँ,

फिर दुबारा इससे भी भडकीला शहर बसाऊँ और अपना नाम प्रसिद्ध करूँ। ऐसे दुष्टको अपने विचार काममे लाते क्या आगा-पीछा था ? उसने सारे नगरमें आग लगवा दी और सारा नगर धधक उठा। स्त्रियोंका क्रन्दन, बच्चोंकी चीत्कार और मनुष्योंकी आह पृथ्वीसे आकाश तक भर गई। इस प्रकार सात दिन तक यह अग्निकाण्ड होता रहा और नगरके पाँच भाग उजाड़ हो गये। तब वह कुकर्मी इस बातको देख कर डरा कि नगर-निवासी कुपित होकर मुझे कहीं दण्ड न दें और प्रजा विद्रोह न कर दे। यह सोच विचार कर उसने सब दोष ईसाइयों पर लगा दिया और सारा नगर क्रोधमें दाँत पीस कर उन निरपराधों पर टूट पड़ा। उन्होने बोरों पर चूना लगा कर उनमे ईसाइयोंको भरा, फिर चारो ओर सन भर भर कर बोरोके मुँह सीं दिये और उन्हें खम्भोंमें बाँध कर, पाँति पाँति खड़ा कर उनमें आग लगा दी। उस आगकी रोशनीमें रोमके लोग तरह तरहकी क्रीडा किया करते थे। किन्हीं किन्हींको उन्होने जंगली पशुओंकी खालोमें सींकर शिकारी कुत्तोके आगे फेंक दिया, जिन्होंने उन्हें टुकड़े टुकडे कर डाला। इसके सिवा हजारो ईसाई, बादशाहके महलमें क्रूस पर लटकाये गये। इसी धर्मयुद्धमें पावल धर्मीने भी प्राण दिये।

३ याकूब।

यह मसीहका भाई था और जेरूसलममें मसीही धर्मका प्रधान प्रचारक था। रोमके उपद्रवके समय ही उस पर भी कोप पड़ा। वह जब न्यायालयमे पेश किया गया तो उसने वीरता-पूर्वक कहा—"यीसू ख्रीष्ट परमेश्वरके दाहिने हाथ बैठा है और आकाशके मेघों पर चढ कर फिर आवेगा।" इस बात पर उसे पत्थरोंसे हलाल कर डालनेका दण्ड दिया गया। पत्थरोकी झड़ी जब उस पर पड़ने लगी तब उसने तनिक अवसर पाकर पुकार कर कहा—"हे पिता। इन्हें क्षमा कर, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या करते हैं!" तभी एक सोटेकी भारी चोट खाकर वह गिर गया।

४ शिमियोन।

यह जेरूसलमका धर्माध्यक्ष था। जब यह पकड़ा गया तब १२० बरसका बुड्ढा था। उसने कितने ही दिन तक कोड़े खाये, पर न वह मरा। अन्तमें नग्न होकर हत्यारोंने उसे क्रूस पर चढ़ा दिया।

५ इग्नाट्रिय ट्राजन ।

यह अन्तैखिया नगरका मण्डलाध्यक्ष था । शिमियोनके २ वर्ष बाद इसे ईसाई होनेके अपराधमें प्राणघात करनेको रोमनगरमें पहुँचाया । उसने रोमके अधिकारियोंको चिट्ठी लिख कर कहलाया—" सूरियासे रोम तक मैं जंगली पशुओंसे लड़ता चला आता हूँ । मैं दस तेंदुओंके अर्थात् योद्धाओंके साथ जंजीरसे कसा हुआ चलता हूँ । और मैं जैसी नित्य उनकी भलाई करता हूँ वैसा मेरे विरुद्ध उनका कोप बढ़ता है । वे चाहें तो मुझे सिंहोंके आगे फेंके, चाहे क्रूस पर चढ़ावें और चाहे मेरे अंगको काट डालें, यदि मैं प्रभु मसीहके नाम पर आनन्दित हूँ तो इन पीड़ाओंसे क्या होगा । "

रोममें पहुँचने पर वह लोगोंके सामने ही अजायब घरके जंगली पशुओंके सामने डाला गया । पर जब उसने सिंहोंको गर्जते हुए सुना तो कहा—" कि मैं मसीह प्रभुका फटका हुआ गेहूँ हूँ, जब तक जंगली पशुओंके दाँतसे न पीसा जाऊँ तब तक रोटी न बनूँगा । "

सिंहोंने झट-पट उसे फाड़ डाला । उसके बाद उसकी थोडीसी हड्डियाँ जो बच रहीं वे अन्तैखिया नगरमें गाड़ दी गईं ।

६ पूकार्प ।

यह स्मूर्ना नगरका सन् १६७ में मण्डलाध्यक्ष था और योहन प्रेरितका शिष्य था । इसे ईसाई होनेके अपराधमें जीते जलाये जानेकी आज्ञा हुई । तब इसकी उम्र ८० वर्षकी थी । लोगोंने दया करके उसे समझाया कि अपना विश्वास त्याग दो । तो उसने कहा कि " मैंने चार कौडी ६ वर्ष, प्रभु मसीहकी सेवा की है और उसने कभी मेरा अपराध नहीं किया तो जिसने मोल दे कर मुझे निस्तार दिया है मैं क्यों कर उसका विश्वासघाती बनूँ । " जब वह इन्धनके निकट खड़ा हो प्रार्थना कर चुका तब आग सुलगाई गई । बड़ी बड़ी लपटें उठीं । पर आश्चर्य था कि वह जला नहीं । पीछे वह तीरसे वेध कर मारा गया । और उसकी लोथ जल कर राख हो गई ।

७ ब्लाडीना

नामकी एक दासी बड़ी सुकुमार और दुर्बल थी । ईसाइयोंको भय था कि वह कष्ट पाकर अवश्य विचलित हो जायगी । पर जब उस पर प्रात कालसे लेकर सन्ध्या

तक मार पड़ी—यहाँ तक कि उसकी चमड़ीके धुर्रे उड़ गये, शरीर ऐंठ कर कमान हो गया और जगह जगहसे ऐसा क्षत-विक्षत हो गया था कि हत्यारोंको उसके जीते रहने पर आश्चर्य होता था । पर वह अन्तिम साँस तक कहती गई कि "मै ईसाई हूँ।" अन्तमें उसे हाथ फैला कर एक खम्बेसे बाँध दिया और पशु छोड़ दिये कि फाड़ डालें, पर पशु उसे सूँघ सूँघ कर चले गये—कदाचित् उन्हें दया आ गई हो । तब उसे अगले दिनके लिये रख छोडा । दूसरे दिन जब वह फिर मरनेके लिये बुलाई गई तो आनन्दसे कदम बढ़ा कर वध स्थान पर गई । आखिर एक जालमे लपेट कर उसे साँडके आगे डाला गया और इस तरह उसका अन्त हुआ ।

८ परपिटु ।

यह एक २२ वर्षकी विवाहिता स्त्री थी । उसकी गोदमे एक छोटा बच्चा था । जब उसे ईसाई होनेके अपराधमे वधकी आज्ञा दी तो प्रथम उसका बालक छीन कर बड़ी क्रूरतासे मार डाला गया । फिर उसे वध स्थल पर ले चले । उसने निर्भय हो कर मृत्युका सामना किया । उसका पिता मूर्ति-पूजक था और बहुत बूढा था । उसने घुटने टेक कर उससे विनय की कि बेटी ! मेरे बुढापेकी ओर देख कर दया करो—जो मुझे पिता समझती हो तो मुझ पर करुणा करो । इतना कह वह उसका हाथ चूम पाँवो पर गिर पडा और रोकर कहने लगा कि मैं अब तुम्हे बेटी नहीं, किन्तु अपने धर्मकी अधिकारिणी कहता हूँ ।

पर उसने वीरता-पूर्वक कहा—" पिता ! शान्त हो, यह धर्म-युद्ध क्या पीछे हटनेका समय है । आत्मामे बल आने दो—ईश्वरके लिये उसमें विघ्न मत करो ।" इतना कह कर वह वध स्थान पर आ खडी हुई और पशुओसे फाड़ डाली गई ।

९ लिकस्त ।

सन् २६० में रोमकी ईसाइयोंकी मंडलीका अध्यक्ष लिकस्त नामका मारा गया । जब नगरके अधिकारीने सुना कि मण्डलीके पास बडी भारी धन-सम्पत्ति है तो **लौरिन्तिय** नामक प्रधान सेवकको बुलवा कर उसने आज्ञा दी कि सब धन हाजिर करे । उसने कहा—सब धन-सम्पत्तिको सँभालने और उसका बीजक बनानेके लिये मुझे तीन दिनका अवकाश दीजिये ।

तीसरे दिन वह समस्त रोमके कगालोंको इकट्ठा कर प्रधानके महलमें आ हाजिर हुआ। और प्रधानसे उसने कहा कि हमारे प्रभुकी सम्पत्तिको सँभालियेगा—आपका सारा ऑगन सुनहरे पात्रोंसे भरा पड़ा है। प्रधानने वाहर आकर जव कगलोंका झुण्ड देखा तो आपेसे वाहर हो गया और उसने ज्वालामय नेत्रोंसे उसकी ओर देखा। लौरिन्तियने कहा—आप क्रोधित क्यो होते है, आप जिस सोनेको चाहते हैं वह धरतीकी एक साधारण धातु है, जो समस्त पापोमे मनुष्यको फँसाती है। वास्तविक ईश्वरका धन तो यही है। देखिये कितने मणि, रत्न, स्वर्ण-मुद्रा, जगमगा रहे हैं। ये कुमारिकाएँ और विधवाएँ बड़े बड़े रत्न हैं। प्रधानने डपट कर कहा—मुझसे ठट्ठा करता है, ठहर। तूने शायद मरने पर कमर कसली है, पर तू शायद नहीं जानता कि तुझे सरलतासे नहीं मारा जायगा। अच्छा कपडे उतार। निदान प्रधानने उसके कपड़े उतरवा कर और उसे लोहेकी बड़ी झझरी पर लिटा कर धीमी आग पर भूनना शुरू किया। वह धैर्य-पूर्वक एक कर्वटसे भुनता रहा तव उसने प्रधानसे पुकार कर कहा—"यह पंजर तो पक चुका अब दूसरी कर्वट कराइये। दूसरी कर्वट लेने पर जब उसका जीवन क्षीण हुआ तो उसने रोमके निवासियोके लिये सुख और आरोग्यका आशीर्वाद माँगा और सदाके लिए वह मृत्युकी गोदमे सो गया।

इसी वर्ष कैसरिया नगरमे कूरिल नामक एक छोटा-सा वालक रहता था। वह ईसाका नाम नित्य लेता। इसके लिये उसके साथी लड़कोंने उसे मारा, वापने घरसे निकाल दिया। अन्तमे वह रोमके न्यायाधीशके पास पहुँचाया गया। न्यायाधीशने उसे समझा कर कहा—" वच्चे, तू वड़ा सुकुमार है। तू यह कैसा पाप करता है कि मसीहका नाम लेता है? उसे छोड़ दे—मैं तुझे तेरे वापके पास भेज दूँगा आर समय पर तू उसकी अतुल सम्पत्तिका अधिकारी वनेगा।"

परन्तु वालकने तेज-पूर्ण स्वरमें कहा—" आपकी इस कृपाके लिये धन्यवाद। पर मैं परमेश्वरके नाम पर कष्ट भोगनेमें सुखी हूँ। प्रभु मसीहने भी कष्ट भोगे है। मुझे घरसे मोह नहीं है, क्योंकि मेरे प्रभुका घर इससे उत्तम है। और न मुझे मरनेका डर है, क्योंकि प्रभुका उपदेश है कि मृत्यु ही उत्तम जीवन देता है।"

न्यायाधीश उसके उत्तरसे दंग हो गया। उसने डरानेके लिये उसे वध-स्थल पर ले जानेकी आज्ञा दी। न्यायाधीशको आशा थी कि वालक भयंकर आगको देख कर डर

जायगा । पर जब वह लौट कर भी वैसा ही सतेज और निर्भीक बना रहा तो न्यायाधीश बड़े विचारमें पड़ा । वह दया-वश उसे मारना न चाहता था । उसने फिर उसे समझाया । बालकने कहा—" शीघ्र अपनी तलवारका काम खतम कीजिये, मैं प्रभुके पास जाऊँ । यह द्विविधाका जीवन मुझसे एक क्षण भी नहीं सहा जाता ।"

जो लोग आस-पास खड़े थे, रोने लगे । उसने सबसे उत्साह-पूर्ण वाक्योंमें कहा—" खेद है कि तुम नहीं जानते कि मैं कैसे सुन्दर नगरको जाता हूँ । इस बातको तुम जानते तो निश्चय आनन्द मनाते ।" इतना कह वह बड़े आनन्दसे वध-स्थलकी ओर गया ।

इस प्रकारके उदाहरणोंसे ईसाई धर्मका इतिहास भर रहा है । कौन इनको सुननेका साहस कर सकता है ? इन्हीं अत्याचारोंके विपरीत ऐसी उग्रतासे सत्याग्रह महास्त्रका प्रयोग करनेका यह फल हुआ कि आज आधी दुनिया ईसाई धर्मके चरणोंमें झुकी हुई है—और मसीहका झण्डा सूर्यके समान दीप्यमान हो रहा है । सत्याग्रहकी विजयका इससे अधिक और क्या ज्वलन्त प्रमाण होगा ।

सन् १६४१ ईस्वीमें आयलैंडमें जब ईसाई लोग पोपके धर्मको छोड़ कर प्रोटेस्टेन्ट होने लगे तब पोपने फतवा दे दिया था कि " तमाम आदमी जो प्रोटेस्टेन्ट हो गये है, मार डाले जावें । इस घोषणाके आधार पर लग भग दो लाख ईसाई बड़ी निर्दयतासे मार डाले गये थे । इस महा वधकी खबर सुन कर पोपने आयर्लेंडमे एक बड़ा भारी उत्सव किया था ।

ड्यूक आफ़ आल्वा (Duke of Alwa) जो कि उस समय नेदरलैंण्ड (Nethr lend) का गवर्नर था, उसने सहस्रों जल्लाद नौकर रख छोड़े थे जो प्रोटेस्टेन्टोंको कत्ल किया करते थे । दो वर्षके अन्दर उन्होंने ३६ हजार ईसाईयोंको मार डाला था । जो गाँवों और बस्तियोंमे बच रहे थे उन पर अतिरिक्त टैक्स लगा कर यह अत्याचारी चार करोड रुपया प्रति वर्ष वसूल किया करता था । इसका पोपके दरबारमे बड़ा आदर था ।

पोपोंने एक गुप्त समाज पहले पहल स्पेन देशमें बनाया, फिर इटालीमे और पीछे अन्य देशोंमें भी । इसका नाम इनक्विजिशन (Inquisition) अर्थात् कसनेका समाज था । इसमे अनेक प्रकारके भयानक शिकंजे मनुष्योंको कसने या उनके अंगोको काटनेके लिये रक्खे गये । कोई स्त्री, पुरुष व

बालक यदि इस अपराधमें पकड़ा गया कि वह पोपका विरोधी है—प्रोटेस्टेन्ट है—तो उसे उसमें कसते थे—कष्ट देकर सब भेद पूछते थे। इसके मैम्बर रातको लोगोंके घरमे घुस जाते और उन्हें सोते हुए उठा लाते तथा इसमें कस देते थे। इसके सिवा जो लोग इन शिकजोंमें दबनेसे कई दिन तक भी न मरते थे और न पोपके धर्मको स्वीकार करते थे उन्हें जीता जला दिया जाता था! एक टोलेडो (Toledo) नामका बिशप था जो प्रोटेस्टेन्ट हो गया था। उसने यह उपदेश दिया था कि पोपमें क्षमा करानेकी शक्ति नही है। तुम्हारे प्रभु मसीहका प्रायश्चित्त ही काफी है। इस अपराधमें उसे इस सभाने १८ वर्ष तक जेलमें रक्खा था। यह हत्यारी सभा सन् १४८१ से सन् १८०८ तक ३२७ वर्ष तक अखण्ड रूपसे चलती रही और इस बीचमें इसने ३ लाख ४१ हजार २१ (३४१०२१) प्राणियोंको वध किया! जिनमें ३२ हजारके लगभग जीते जलाये गये, २ लाख ९१ हजार ४५६ अर्थात् कुछ कम ३ लाख ऐसे महादुःख और कष्टमें डाले गये जो बयानसे बाहर है। १७॥ हजार ऐसे थे जो या तो कैदमे मरे या निकल भागे—उनके चित्र बना कर जला दिये गये कि लोग डरें।

आरविन साहब (Arvine) नामक एक विद्वान्ने हिसाब लगाया है कि—

१ पोप जूलियस (Julius) के राज्य-कालमें ७ वर्षके भीतर दो लाख क्रिस्तान मारे गये।

२ फ्रान्समें पोपोंने ३ मासमे १ लाख ईसाई मारे।

३ फिर उन्होने वालदेन्सी और आलबीगेन्सी (Waldenses and Albigenses) क्रिस्तानियों में १० लाख आदमी कतल किये।

४ ये सुवीत समाजियों (The Ieswits) के तीन वर्षके बीचमे नौ लाख ईसाई मारे।

५ ड्यूक आफ आलवाकी आज्ञासे ३६ हजार ईसाई मारे गये। इस प्रकार धार्मिक अत्याचारकी भेट निरपराध ५ करोड़ ईसाई स्त्री-बच्चे, बूढे-जवान मार डाले गये। इतने पर भी प्रोटेस्टेन्ट मर नहीं सका। वह उज्ज्वल हो गया और होगा—यह उनके अविचलित सत्याग्रहका फल था।

१० सिक्ख जाति।

यह इतिहास भी ईसाईयोंकी तरह मुसलमानी धर्मान्धतासे भरा हुआ है। गुरु गोविन्दसिंहके बच्चो और हकीकतराय जैसे ११ वर्षके बालकोंने

भी वीरतासे सिर कटाये पर सत्याग्रह न छोडा । पर उस परम पिताके परम अनुग्रहसे अब हिन्दू-मुसलमान परस्पर भाई भाईकी तरह मिलते हैं और पिछले वैमनस्यका प्रायश्चित्त करने लगे हैं। इस लिये मैं समस्त पाठकोंसे हाथ जोड कर यह विनती करता हूँ कि इन बुरे उदाहरणोको इस अवसर पर स्मरण करनेके लिये मुझे क्षमा करें ।

राष्ट्रीय सत्याग्रह ।

लाइकरगस ।

" आपके देशमें व्यभिचारियोंके लिये सरकारकी ओरसे क्या दण्ड नियत है ?" यह एक प्रश्न स्पार्टाके जीराडिससे बातचीत करते हुए उसके एक विदेशी मेहमानने पूछा ।

जीराडिसने जवाब दिया । मेरे मित्र ! हमारे देशमें व्यभिचार है ही नहीं । "

मेहमानने फिर पूछा—" फिर भी यदि कोई व्याभिचार कर बैठे तो उसको क्या सजा मिलती है ?

जीराडिसने जवाब दिया कि अगर कोई व्याभिचार कर बैठे तो उसका इतना लम्बा बैल जो कि टेरिटसकी चोटी पर खड़ा होकर यूजिटस नदीका जल पी सके, छीन लिया जाता है ।

विदेशीने आश्चर्यसे कहा—" भला कभी इतना लम्बा बैल भी दुनियामें हो सकता है ? "

जीराडिसने मुस्कुरा कर कहा—"यदि ऐसा लम्बा बैल मिलना असम्भव है तो स्पार्टामें व्यभिचारीका मिलना भी असम्भव है । "

• विदेशी इस उत्तरसे चुप हो गया, पर हर एकको यह कौतूहल हो सकता है कि आखिर स्पार्टामें ऐसे कौनसे कानून थे जिनके कारण स्पार्टाकी ऐसी अच्छी हालत थी । पर जब हम स्पर्टाके कानून बनानेवाले ऋषिकल्प लाइकरगसके जीवन और कानून पर दृष्टि डालते हैं तब हमारा कौतूहल बातकी बातमें निवृत्त हो जाता है । यहाँ पर हम संक्षेपमें हेनरी मार्लेकी 'लाइकरगस और इनसाईक्लो-पीडिया' के आधार पर उसका सत्याग्रह-पूर्ण अद्भुत जीवन लिखते हैं ।

लाइकरगस हरक्यूलीज़की छठी पीढ़ीमें गिना जाता है। उसका समय मसीहसे ८९८ पूर्व बताया जाता है । उसके पिताका नाम यूनोमस था। यूनोमसकी दो स्त्रियाँ थीं। पहलीसे एक लड़का पैदा हुआ जिसका नाम पोलिडिक्टस था। दूसरी स्त्रीके लड़केका नाम लाइकरगस था। पोलिडिक्टस लाइकरगससे उम्रमें बड़ा था। जब यूनोमस बादशाह कत्ल किया गया तो उसका बड़ा लड़का पोलिडिक्टस सर्व सन्मतिसे स्पार्टाका बादशाह बनाया गया।

पर थोड़े दिनोंमें ही वह मर गया। अब गद्दीका स्वामी सिवाय लाइकरगसके कोई नहीं था। कौन्सिलने एक स्वरसे लाइकरगसको ही बादशाह स्वीकार किया। किन्तु लाइकरगसको मालूम हुआ कि उसके भाईकी स्त्री गर्भवती है। यह जानते ही उसने सारे राज्यमें घोषणा करा दी कि गद्दीका वास्तविक स्वामी उत्पन्न होनेवाला है। यदि सन्तान लड़का हुआ तो मैं गद्दी उसे सौंप दूँगा—तब तक मैं प्रबन्धकके तौर पर काम करूँगा और जब तक लड़का वारिस न हो जाय मैं उसका सर-परस्त रहूँगा। निदान कौन्सिलने लाइकरगसको (Prodex) सर-परस्तका खिताब दिया। " किन्तु जब इसके भाईकी स्त्रीको इस बातका पता लगा तो उसने लाइकरगसके पास गुप्त सन्देश भेजा कि यदि स्पार्टाके बादशाह बन कर तुम मेरे साथ शादी करनेका वायदा कर लो तो बच्चेके पैदा होते ही मैं उसे मार डालूँगी या गर्भ ही पात कर दूँगी। लाइकरगसको उसकी दुष्टता पर बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ, पर उसने यह सोच कर कि यदि मैं सख्तीसे काम लूँगा तो संभव है कि वह गर्भको गिरा दे, इस लिये बच्चेके होने तक नर्मीसे ही काम लेना चाहिए। इस विचारसे उसने कहला दिया कि मैं तुम्हारी तजवीजके खिलाफ कुछ नहीं कहता, पर अभी तुम गर्भ गिरानेकी कोई चेष्टा नहीं करना। ऐसा करनेसे तुम्हारी अपनी जान खतरेमें पड़ जा सकती है या स्वास्थ्यको हानि हो। मैं ऐसा प्रबन्ध कर दूँगा कि पैदा होते ही बच्चेको नष्ट कर डाला जाय। इस बहानेसे लाइकरगसने इस स्त्रीको इस भयकर दुष्कर्मसे बचाये रक्खा।

इसके अनन्तर जब उसके दिन पूरे हो गये और लाइकरगसको पता लगा कि आज बच्चा पैदा होनेवाला है तब उसने अपने प्रधान प्रधान अधिकारी सौर-घरकी ओर इस लिए भेजे कि वह सावधानीसे रहें। और यदि लड़की उत्पन्न हो तो वह स्त्रियोंके सुपुर्द कर दी जाय और लड़का हो तो उसे तुरन्त मेरे पास ले आओ, चाहे मैं किसीभी दशामें बैठा होऊँ। दैवयोगसे लड़का ही हुआ और वह तुरन्त

उसके पास लाया गया । लाइकरगस उस समय कुछ मुसाहबोंके साथ खाना खा रहा था । उसने मुसाहबोंकी ओर लक्ष्य करके कहा—ऐ स्पार्टाके सज्जनो ! यह तुम्हारा बादशाह पैदा हो गया, यह कह कर उसने बच्चेको गद्दी पर लिटा दिया । लाइकरगसकी इस उदारतासे सब दंग रह गये और उस बच्चेका नाम ही उन्होने चारिल्स (यानी आनन्द-दाता) रख दिया । इस तरह लाइकरगसकी हुकूमतका आठ ही मासमें अन्त हो गया ।

यद्यपि लाइकरगस अब स्पार्टाका बादशाह नहीं था, किन्तु लोग उसके गुणोंके कारण उसका भारी सम्मान करते थे । और उसकी आज्ञाको बादशाहकी तरह ही पालन करते थे । इतना होने पर भी कुछ ऐसे लोग भी थे जो इससे ईर्ष्या रखते थे। ऐसे लोगोंमे उसकी भावजके सम्बन्धी मुख्य थे। एक बार मलकाके भाईने साफ ही कह दिया कि " लाइकरगस बच्चेको मार कर बादशाह बनना चाहता है, इसीसे उसने उसे मासे छीन लिया है । " यह बात इस लिये कहीं गई थी कि दैवयोगसे यदि बच्चेकी हानि हो तो वे अपनी बातको बल दे सकें । जब उसकी भाभीने खुल्लम-खुल्ला उसके विपरीत ऐसी बातें कहना शुरू कीं तब उसने दुखी होकर देश छोडनेका इरादा कर लिया । तब तक जब तक कि लड़का बालिग न हो जाय और उसके एक और लडका न हो जाय जो पक्के तौरसे राज्यका स्वामी प्रकट किया जाय । यह सोच कर वह सारे स्वदेशको चिर विदा कह कर जहाजमें रवाना हो गया ।

सबसे प्रथम वह क्रीटके टापूमें पहुँचा जो यूनानके दक्षिणमें है । वहाँकी गवर्नमेन्टके कानूनको उसने ध्यान-पूर्वक मनन किया, उसके बहुतसे नियम उसे इतने पसन्द आये कि उसने स्वदेशमे वापस लौट कर उन्हें प्रचलित करनेका इरादा कर लिया । यहाँ उसके बहुतसे मित्र भी थे । जिनमेंसे थेलिस उसका बड़ा प्रगाढ मित्र था । उससे लाइकरगसने कहा कि वह स्पार्टामे जाकर बसे । वह अपने भारी भरकमपनेके लिये बडा प्रसिद्ध था । इसके सिवा वह कविता भी करता था और उसकी कवितामें इतना प्रभाव था कि उसकी वजहसे वह जनताको अपने पक्षमे कर लेता और जिस कानूनको चाहता उसकी सम्मतिके बल पर पास कर लेता । इसी गुणके कारण लाइकरगसने उससे स्पार्टामें रहनेका अनुरोध किया था । क्रीटसे चल कर एशियाके दूसरे-देशोंमें होता हुआ वह भारतवर्षमें आया ।

यहाँ आकर प्रथम उसने यहाँके कानून देखे, फिर देशके तपस्वी-साधु और संन्यासियोका सादा जीवन और तपको देख कर वह दंग रह गया—उसका उस पर बड़ा प्रभाव पड़ा । यद्यपि आर्यावर्तका सौभाग्य-सूर्य उस समय अस्त हो चला था, पर फिर भी बड़े वर्तनकी खुर्चनकी तरह विदेशियोको तृप्त करनेको यहाँ बहुत कुछ बच रहा था । उसने गुरुकुल-पद्धतिकी शिक्षा जो उस समय टूटी-फूटी दशामें थी, देखी और उसकी उपयोगिताको हृदयंगम किया । यह समय बुद्धसे कुछ प्रथमका था । तब यहाँ स्वयंवर-विवाह जारी था । उसने इन नियमोंको बहुत पसन्द किया । क्रीट, स्पेन, मिश्र, लीबिया और भारतमे आकर जो जो अनुभव उसे प्राप्त हुए उन सबको मिला कर स्पार्टाके लिये एक माजूने मुरक्कब तैयार की ।

इस बीचमे इधर तो लाइकरगस यह देश-देशकी सैर और अनुभव प्राप्त कर रहा था, उधर उसके न होनेसे स्पार्टामें बड़ी अशान्ति फैल गई । बादशाह बालक और बे-समझ था । राज्यके प्रधानोंने लाइकरगसको ढूँढ़ लानेके लिये चारों ओर दूत भेजे । जब उन्हें लाइकरगसका पता लगा तब उन्होने प्रार्थना-पूर्वक बड़ी आधीनतासे कहा—देश नष्ट हो रहा है, आप कृपया पधार कर उसकी रक्षा करें ।

लाइकरगस स्वदेश लौटा और सीधा डलफी देवीके मन्दिरमे पहुँचा और देवीसे उसने प्रार्थना की कि मैं जो कानून देशकी उन्नतिके लिये प्रचलित करना चाहता हूँ आप असीस दें कि वे सफल हो ।

देवीने कहा—ऐ देवताओंके प्रिय देव लाइकरगस! एपोलोका आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, तुम देशमें कानून जारी करो । उनकी प्रतिष्ठा होगी और वे संसारमें विख्यात होगे ।

लाइकरगस आशीर्वाद लेकर नगरमें आया और दरबारके सभ्योसे सब बातें सुन कर उसने विचार किया कि थोड़ी अदल-बदल करनेसे देश न सुधरेगा—आवश्यकता जड़-मूलमें उलट-पलट करनेकी है कि सारे तख्तेको ही एकदम पलट दिया जावे । यह सोच कर उसने मित्रोंसे सलाह ली कि क्या करना चाहिए । मित्रोंने वचन दिया कि जो चाहे करें—हम आपके साथ सिर देनेको तैयार है । जब मित्रोंकी ओरसे उसकी दिल जमई हो गई तब उसने शहरके तीस प्रधान पुरुषोंको

हथियार-बन्द होकर आनेकी आज्ञा दी। जब वे आ गये तो उसने उन्हें (स्पेशल कास्टेबिल) बना कर कहा—तुम लोग मेरे साथ रहो और तुम्हारी तथा तुम्हारे परिवारकी जान मेरे पास गिरो रहे। मैं अपने कानून देशमे जारी किया चाहता हूँ। तुम मेरे साथ रह कर मुझे सहायता दो और जो कोई इसमे चूँ-चपड़ करे उसे गिरफ्तार करो। इस सशस्त्र दलको लेकर उसने नगरके प्रधानों, विद्वानों और मन्त्रियोके सामने अपने कानूनोंको पेश किया। बड़ी गड़-बड़ मच गई। बादशाह भी डर गया और किलेमे जा छिपा। इस सशस्त्र टोलीको देख कर उसने समझा कि यह सब मेरे गिरफ्तारीकी तैयारी है। पर जब उसे सब बातें स्पष्ट हुई तब वह खुशीसे लाइकरगसके साथ ही उसकी सहायतामें लग गया। यह पहली फतह थी जो लाइकरगसको प्राप्त हुई।

जब वह शहरके निवासियों पर अपना रुआब गॉठ चुका तो उसने धीरे धीरे अपने कानून जारी करना प्रारम्भ कर दिया। उसके कानून ये थे—

१—प्रजा और राजामे प्रेम और विश्वास बनाये रखने और उचित रीति पर न्याय किये जानेके लिये एक ऐसी कौन्सिलकी जरूरत है जिसके चुने हुए मेम्बर हो। जिनका मुख्य कर्तव्य—दूसरे कर्तव्योंके सिवा—यह भी हो कि वे न तो राजाको ही ऐसा स्वेच्छाचारी होने दें कि वह प्रजा पर मनमाना अत्याचार कर सके और न प्रजाको ऐसा उद्दण्ड बनने दें कि वह राजाको एकदम दबा ले, प्रत्युत दोनोके बीच साम्यताका औचित्य रहे।

इस मतलबके लिये उसने २८ सभ्य चुने—बादशाहको भी उनमे चुन लिया। इस पार्लिमेन्टको बना कर अब उसने दूसरी ओर देखा। उसने देखा देशमें दो प्रकारकी प्रजा है। एक वे लोग जो बड़ी बड़ी सम्पत्तिके स्वामी है और उनकी आय भी बे-तरह बढी हुई है। दूसरे ऐसे लोग हैं जो बिलकुल तंग, गरीब और दुखी हैं और जिन्हें भर पेट टुकड़ा भी मिलनेमें कठिनता होती है। लाइकरगसने इन दोनों भिन्नताओंमे समता उत्पन्न करनेको दूसरा कानून बनाया।

२—जितनी जमीन स्पार्टामें है वह बराबर बराबर उसके रहनेवालोको बाँट दी जाय।

यह बड़ा कठिन काम था। क्योंकि जिनके कब्जेमे भारी जमींदारियाँ थीं उनके बगावत करनेका भय था। पर लाइकरगसने अपना रुआब खासा गाँठ

लिया था, इस कारण तुरन्त कानून काममें लाया गया और जर्मीनके ३९ हजार हिस्से किये गये और उतने ही घरानोंमें वे बॉट दिये गये, किसीने चूँ तक न किया। इस तरह लाइकरगसने अमीरोंको ज्यादा अमीर और गरीबोंको दिन दिन ज्यादा गरीब होनेके वबालसे बचा कर समता स्थापन की । अब उसने और बढ़ा बढ़ी की—उसने चल सम्पत्ति (जायदाद मनकूला) पर भी यही कानून जारी कर दिया ।

यह काम और भी बेढब था, क्योंकि कोई मनुष्य अपने सग्रहीत द्रव्य और पदार्थोंको इस तरह बॉटनेको तैयार न था । देश भरमें शोर मचा, उत्पात हुए, पर लाइकरगसने अपनी बुद्धिसे इसकी एक अजीब युक्ति सोची जिससे यह काम बड़ी सरलतासे हो गया । वह यह कि उसने सोने-चॉदीके सिक्कोंकी जगह लोहेके सिक्के जारी कर दिये । ये सिक्के बड़े सस्ते थे । यहॉ तक कि दस मन सिक्कोकी कीमत मुश्किलसे कुछ रुपये होती थी । पर उसे घरमें रखनेको बड़ी जगहकी जरूरत थी । कोई कहाँ तक इस लोहेके ढेरको जमा करता । सोने-चॉदीके रुपये, अशर्फी तो बड़ी रकमके एक सदूकमें रक्खे जाते थे, पर इस भीमकाय खजानेके एक हजार रुपये रखनेको भी बड़े भारी खजाने दरकार थे । परिणाम यह हुआ कि जो लोग सोना-चॉदी छिपाये बैठे थे उनका सब सोना-चाँदी निकम्मा हो गया, क्योकि गवर्नमेन्ट सोना-चॉदीके सिक्केको कौड़ीके मोल भी नहीं लेती थी । फिर उसमे सुगन्ध तो थी ही नहीं । इस तरह अमीरोंका सिर जो अपने गरीब भाइयों पर घमण्डसे उठ रहा था, नीचा कर दिया गया । वे सब एक हालतमें आ गये । रुपयेके कारण जो छोटे बड़ेका पचड़ा था वह न रहा । इसके सिवा चोरी जड़से उठ गई, क्योंकि चोर बेचारा क्या चुरानेके लिये नकब लगाता ? दस बारह मन लोहा चुराने पर बेचारेको कुछ पैसे ही पल्ले पड़ते । फिर उन्हें वह कहॉ छिपाता—कहॉ ले जाता ? यह भी कठिन समस्या थी । तीसरे—रिश्वतका झगड़ा भी उठ गया । लोहेके सिक्कोको कौन किस तरह कितना रिश्वत लेता, क्योंकि वे तोड़ कर छोटे भी नहीं किये जा सकते थे । क्योकि उन्हे तपा कर सिर्केमे डुबो दिया जाता था जिससे उन पर आब आ जाती थी । चौथा लाभ यह हुआ कि देशमेसे फालतू रोजगार उड गये और जरूरी रोजगार ही रह गये, जिनके बिना काम चलता ही न था । और यह हुआ कि स्पार्टावाले जो अपने ऐशके लिये दूसरे देशोंसे करोड़ों रुपयेका माल खरीदते थे वह बन्द हो

गया। किसे पड़ी थी कि वे लोहेके निकम्मे बट्टे ले जो किसी भी देशमें किसी कामके नहीं थे। यूनानवाले ही स्पार्टाके उन बट्टोंकी हँसी उड़ाते थे। अभी कुछ दिन पहले जहाँ देश-देशके जहाज तरह तरहके मालोंसे भर कर स्पार्टाके बन्दरगाहो पर आते और स्पार्टाके पसीनोंकी कमाईको भर-भर कर ले जाते थे वहाँ बिलकुल सन्नाटा हो गया—बन्दरगाहों पर भूत लोटने लगे। इस तरह विदेशियोंका सम्बध स्पार्टासे छूट गया तब देशमें आवश्यक वस्तु बनानेके उद्योग-धन्धे बड़ी सरगर्मीसे चले और कुछ ही दिनोंमें शौकीन स्पार्टावासी मेहनती, सादे, मजबूत और मितव्ययी बन गये। और वे अब किसी भी वस्तुके लिये किसी देशके मुँहताज न रहे। अब उसने तीसरा कानून यह बनाया—

३—गवर्नमेन्टकी तरफ प्रत्येक शहरके टौनहालमें सह भोजनका प्रबन्ध किया गया और शहरके हर एक आदमीको—चाहे वह गरीब हो चाहे अमीर—भोजनके समय दोनों वक्त वहीं भोजन करना लाजिम था। भोजन सबको एक-सा मिलता था।

लाइकरगसने देखा कि लोग तरह तरहके खाने और मास खाकर हरामी बन रहे हैं और स्वादिष्ट माल चबा कर नर्म नर्म गद्दो पर सुखकी नींद सोते हैं, उन्हें परवा नहीं कि उनके पड़ोसीके बच्चे टुकड़े टुकड़ेको मुँहताज हैं और उनका देश निकम्मा और आलसी बन रहा है। सो उसने उपर्युक्त नियम जारी कर दिया। बड़े बड़े चटोरे रईसो और घमण्डी अफसरोंको लाइकरगसका यह कानून बोझ मालूम पड़ने लगा और वे तरह तरहकी नाक-भौं सिकोड़ने और अपनी हतक समझने लगे। पर उनका बस क्या था। लाइकरगस स्वयं मौजूद रहता और इस बात पर ध्यान रखता कि कौन पेट भर कर खाता है और कौन भूखा उठता है। ऐसे आदमियोंकी वह अच्छी तरह मजम्मत करता और उसी समय सब लोगोंका ध्यान उधर आकर्षित करके कहता—"देखिये, आपको अपने भाइयोंके साथ खाना नहीं भाता है, आप शायद रातको छिप कर मजेदार माल उड़ावेंगे। इससे सब लोग उसकी हँसी उड़ाते और वह बड़ा लज्जित होता।

भोजनके समय निर्दोष हास्य करनेकी आज्ञा लाइकरगसने दे रक्खी थी और जब तक भोजन होता तब तक बड़े मजेका हास्य चलता था। इस प्रकारसे शीघ्र ही चटोरी जबानोंमें लगाम लग गई और लोगोंको चटोर दासोंकी सेवासे छुट्टी

मिली । पर इससे कुछ लोग इतने बिगड़ गये थे कि वे लाइकरगसको मार डालनेकी चेष्टा करने लगे । एक दिन लोग उसे मारने दौडे । वह भाग कर एक मन्दिरमे घुस गया, पर वहाँ प्रथमहीसे एक दिलजला छिपा था । उसने उठा कर एक लाठी लाइकरगसके सरमे मारी और उसकी एक आँख फोड़ दी । इसका नाम अल्कन्डर था । लाइकरगसने उस पर कुछ क्रोध न किया और बाहर आकर भी उसने कहा—भाइयो, मैं आप लोगोंके इस व्यवहारसे असन्तुष्ट नहीं हुआ हूँ । शहरवाले जो उसके खूनके प्यासे हो रहे थे, शर्मके मारे चुप हो रहे और उन्होंने अल्कन्डरको पकड़ कर लाइकरगसके हवाले कर दिया । लाइकरगसने उसे प्रेमसे अपने घर रक्खा और उसके साथ ऐसी कृपाका व्यवहार किया कि उसने सरे बाजार सबके सामने लाइकरगससे क्षमा माँगी और अपने कामको पाप समझा और उसका वह पूर्ण भक्त बन गया ।

प्रीति-भोजनकी प्रथा सैकड़ों वर्ष तक बड़ी पुष्टि पर जारी रही, यहाँ तक कि जब स्पार्टाका एक बादशाह अगीस एथेन्सको फतह करके स्पार्टामें वापस आया और उसने प्रीति-भोजनके अमीनसे दर्खास्त की कि मैं फतहकी खुशीमें अपनी स्त्रीके साथ घर पर भोजन करना चाहता हूँ, कृपा कर मेरे हिस्सेका भोजन यहीं भेज दीजिये । इस पर अमीनने साफ इन्कार कर दिया और जवाब दिया कि ऐसा हर्गिज नहीं हो सकता । आपको टौनहालमे आकर भोजन करना चाहिए । बादशाह बहुत गुस्सेमें आया और उसने प्रीति-भोजनमें जानेसे इन्कार कर दिया । कौन्सिलने बादशाहके इस कामको घृणाकी दृष्टिसे देखा और उस पर जुर्माना कर दिया । यह भाव था जो लाइकरगसके बाद भी इतना सतेज बना हुआ था ।

भोजनके साथ ही लाइकरगसने लोगोंके रहन-सहन, घर-द्वार आदिको सादा बनाने पर जोर दिया । क्योंकि वह आराम-तलबीकी जिन्दगीको घृणा करता था और जानता था कि रेशमी गद्दों पर लेटनेवाले सहिष्णु नहीं हो सकते । तब उसने यह कानून बनाया—

४—कोई आदमी यदि अपने मकानको सजाना चाहे तो वह छतमें कुल्हाड़ियाँ लटका सकता है और दरवाजों पर दो आरोको महराबकी तरह लगा सकता है, इसके सिवा और किसी चीजसे जो अपने घरोंको सजावेगा वह कानूनन फिजूल खर्च समझा जायगा और उसे सजा होगी ।

यह कानून बडा कारगर हुआ । ऐयाशी एकदम उठ गई । कौन भलामानुस छतमे कुल्हाड़ी लटका कर कमखावका फर्श विछाता ? थोड़े ही दिनोंमें स्पार्टासे सजावट और नजाकत उठ गई । यहाँ तक कि जब स्पार्टाका एक आदमी कारन्थमें गया तो वह अपने मित्रके घरकी छतको सुडौल तख्तोंसे पटा देख कर हैरानीसे पूछने लगा कि "क्या आपके देशमे दरख्त ऐसे घडे घडाये मुरब्बा पैदा हुआ करते हैं ?" यहाँ तक उनकी सादगी थी, पर शरीर-बल और चरित्र-गठनमें वे निराले थे ।

युद्धके लिये उसने यह कानून बनाया था—

५—बार बार एक ही शत्रुसे युद्ध मत करो । ऐसा करनेसे वह हमारे रहस्योको जान जायगा और हमारे ही हथियारोसे हम पर विजय प्राप्त करेगा ।

स्पार्टावाले जब तक इस कानूनकी पाबंदी करते रहे बराबर विजयी हुए । पर जब बादशाह अजी साइलसने थीबावालोसे निरन्तर युद्ध किया और अन्तमें हारा तो एक फिलासफरने जो घायल बादशाहके सिरहाने खड़ा था, कहा—थीबा-वालोने आपको अच्छा इनाम दिया है । वे लड़ना तक नहीं जानते थे, पर आपने उन्हें सिपाही बना दिया । यह इसीकी सजा है जो आपको मिली है ।

इन कानूनोंके सिवा जो कानून उसने बच्चोके सम्बन्धमें बनाये वे बडे अद्भुत और प्रशंसाके योग्य थे । लाइकरगसका यह निश्चय था और ठीक था कि बच्चे मा-बापकी नहीं, बल्कि देशकी सम्पत्ति है । जो मा-बाप कमजोर बच्चे पैदा करते हैं वे अपने देशको नाश करनेकी तैयारी कर रहे हैं ।

६—गवर्नमेंट यह उचित समझती है कि वह ऐसे नियन्त्रण प्रचरित करे जिससे देशवासी स्वस्थ, कद्दावर और पुष्ट बच्चे पैदा करें ।

लाइकरगस दुखी होकर कहा करता था कि कैसा खेद है कि लोग कुत्ते और घोड़ोंकी नस्ल सुधारनेमें जी-जान लड़ा रहे हैं, पर मनुष्यकी नस्लकी चिन्ता नहीं करते और व्यभिचारमे डूबे रहते हैं ।

उसने अपने देशको इस रोगसे सुरक्षित रखनेके लिये ठीक उनकी जड पर कुल्हाडा मारा—उसके सोतेको ही बन्द किया । उसने सोचा—बच्चोंकी सँभाल जब तक उनके उत्पन्न होनेसे बहुत पहलेसे ही नहीं की जायगी तब तक देश कभी उच्च न होगा । बस उसने कानून बना दिया कि—

७—स्पार्टाके बच्चोंकी सँभाल माताके गर्भमें आनेसे प्रथमसे ही प्रारम्भ हो जानी चाहिए ।

लोग बड़े चकराये, पर लाइकरगसका खयाल वैज्ञानिक था । उसने उत्तम माता और उत्तम पिता बनानेके जो नियम बनाये वे भद्दे कहे जा सकते हैं, पर विचारनेसे वे बडे कीमती और कामके सिद्ध हुए। संसारमें कोई काम एतराजके लायक नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उसके गुणो पर ध्यान न रक्खे । उसने ये नियम बनाये ।

(क) कोई लड़का ३० वर्षकी उम्र तक व्याह नहीं करे और पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करे । इसके लिये सख्तसे सख्त पाबदी थी ।

(ख) कोई लडकी पर्देमें न रक्खी जाय । बल्कि उनके लिये दौड-धूप, कुश्ती, गोला फेंकने आदिकी कसरतें परमावश्यक हैं ।

लाइकरगसका खयाल था कि दुर्बल लड़कियाँ अच्छे बच्चे नहीं पैदा कर सकतीं । प्रकृतिने किसी भी प्राणीके लिये प्रसूति–पीडा नहीं बनाई। किसी भी प्राणीको प्रसूति– पीडा नहीं होती । जो स्त्रियाँ तरह तरहके आराम भोगतीं, परिश्रमसे भागतीं, पर्देमें छिपी रहती है उन्हें ही यह कष्ट होता है। लडकियोके लिये व्यायामके कानूनने इस दोषको बहुत दूर कर दिया। इसके सिवा लड़के और लड़कियोंके शरीरकी परीक्षा कौन्सिलके सामने होती थी। जो लड़की सुडौल, सुन्दर और स्वस्थ होती उसे कौन्सिलसे सम्मान-पत्र मिलता और जो दुबली-पतली होती उसे शर्मिन्दा करनेके लिये सबके सामने पेश किया जाता कि वह अपने शरीरको ठीक कर सके । इस परीक्षाके समय बड़ी भारी गम्भीरता और सभ्यताका खयाल रक्खा जाता था—किसी तरहकी असभ्यता कानूनन जुर्म समझा जाता था । लड़कोंके शरीरकी परीक्षा भी इसी तरह होती थी । विवाहके समय पर कौन्सिल समान गुण-कर्म-स्वभाववाले लडके और लडकियोंको व्याह दिया करते थे ।

जिस देशमें व्यभिचारकी प्यास ही इस तरह मार दी गई हो वहाँ व्यभिचार कहाँ होगा, यह प्रत्येक पुरुष समझ सकता है । और इसके बाद वह उपर्युक्त प्रश्नोत्तर पर अचरज भी न करेगा ।

पाँचवाँ अध्याय ।

देशकी परिस्थिति और सत्याग्रह ।

संसार परिवर्तनशील है और कभी किसी देशकी परिस्थिति एक-सी दशामे नहीं रहती । समय समय पर उसमें परिवर्तन होता है, विकार भी होता है, विशेषताऍ भी होती हैं । विकारोंका उन्मूलन तरह तरहसे किया जाता है और विशेषताऍ इतिहासमें उस देशके समाजके जीवनके नमूनोंकी तरह पेश की जाती हैं ।

भारतकी परिस्थिति बदलती रही है, उसमें विकार भी आये हैं और विशेषताऍ भी उत्पन्न हो गई हैं । विशेषताओंका समाजने उदारता और महत्तासे उपयोग किया है और विकारोंका प्रवल प्रतिकार किया है । इन प्रतिकारोमें सत्याग्रहकी प्रधानता प्राय रही है, और यहॉ तक कि जहॉ अत्याचारके विरुद्ध शरीर-वल भी प्रयोग किया गया है अर्थात् तलवार भी उठाई गई है वहाँ भी आत्मवल या सत्याग्रहका अपमान नहीं किया गया है । कदाचित् ही ऐसा उदाहरण संसारकी जातियोमें मिलेगा ।

परिस्थितिके अनुसार देशोंमे वैयक्तिक और धार्मिक सत्याग्रह समय समय पर प्रयोग हुए हैं । पर वर्तमान परिस्थिति वदल गई है । इन्हीं सत्याग्रहोके अमोघ प्रयोग-संहारके फलसे व्यक्तिगत और धार्मिक अत्याचार प्रायः संसारसे नष्ट ही हो गये हैं और रहे सहे ऐसे निर्वीर्य हैं कि अव उन पर सत्याग्रहास्त्रके प्रयोगकी आवस्यकता नहीं रह गई । पर आज दिन सामाजिक और राष्ट्रीय अत्याचारोका वडा भारी उपद्रव हैं । यह उपद्रव वडा भयंकर, वडा ही अनीति-मूलक, अनाचार-पूर्ण और घृणित तथा सर्व-नाशकारी है । सारे ससारका समाज इस अनाचारसे त्राहि त्राहि पुकार रहा है । परिस्थिति शीघ्रतासे भयंकर हो रही है । सवसे प्रथम सामाजिक अत्याचारको समाजने अनुभव किया, अमेरिकामें गुलामोंके लिये खून वहाये गये । यूरोपमे स्त्रियोंने पुरुषो पर खूनी हमले किये । मजूरोंने विप्लवका स्वरूप धारण किया । यहीं तक वात समाप्त नहीं हुई । रुआव और प्रतापके तेजमें छिपा हुआ राष्ट्रीय अत्याचार भी अव गुप्त नहीं रह सका—प्रकट हो पडा । उसका प्रारम्भिक स्वरूप ही वडा भीषण है—सारा संसार आज हाथमें नंगी तलवार लिये खडा है ।

समाजकी, कानूनकी, पद्धतिकी और नीतिकी परस्पर चोटें चल रही हैं—जनता समस्त उत्तरदायित्वको भूल कर लहू और लोहेकी धुनमे जूझ पडी है । दिन पर दिन मामला गहरा होता जा रहा है ।

यद्यपि समाजका अत्याचारके विपरीत यह विप्लव क्षमाके योग्य है, समाजने अपनी जान पर खेल कर यह विप्लव किया है । अपनी सुख-शान्ति, धन-जन और जीवन सबका वह होम कर रहा है । फिर भी यह मार्ग प्रशस्त नहीं है । यह सत्य है कि भारत भी सामाजिक और राष्ट्रीय घोर अत्याचारोंका शिकार है और वह उसे असह्य समझ कर उसके विरोधमें संसारका साथ देना चाहता है । ऐसी दशामें हम उसे रोक कर अत्याचारका पक्ष नहीं लेंगे । किंतु हम केवल यही सम्मति देंगे कि भारतको विप्लव और रक्त-पात छोड कर सामाजिक और राष्ट्रीय सत्याग्रहास्त्रका प्रयोग-संहार करना चाहिए । समाज पर हम इस प्रकार अत्याचारका दोषारोपण करते हैं ।

१—सम्पत्ति, अधिकार और जीवन-क्रममें भयानक असम वितरण है । एक तरफ देशमें भारी भारी धनी हैं, तिस पर भी दिन दिन उनका धन बढ़ रहा है—यहाँ तक कि वे नहीं समझते कि किस तरह उसे कार्यमें लावें । दूसरी ओर महा दरिद्र हैं, जिनका जीवन-निर्वाह भी कठिनतासे चल रहा है । और जो इसी कष्टके कारण आधी उम्रमें मर जाते हैं, तिस पर दिन पर दिन उनकी गरीबी बढ़ रही है । जहाँ व्यापारी या और मौज्जिजपेशा आदमी अनियमित या अत्यधिक कमा सकता है वहाँ ये गरीब बड़ी कठिनतासे कुछ आने कमा सकते हैं, उससे अधिक नहीं । पर खर्च करनेके समय उनके और बड़े बडे धनियोंके पैसेमें अन्तर नहीं रहता । अर्थात् कमाती बार जहाँ बडे आदमी हजार गुना बढ जाते हैं वहाँ खर्च करती बार बराबर रह जाते हैं । इससे जीवन अत्यन्त क्षीण, दुखी और निकम्मे हो रहे हैं । समाजने उन्हीं जबर्दस्त अत्याचारियोंको अधिकार दिये हैं जो अपने लाभके सौ उपाय निकाल लेते हैं, पर गरीबोंको बराबर पीस रहे हैं । यहाँ तक कि नियम बना कर पीस रहे हैं । अकाल, प्लेग, इन्फ्ल्युएँजा इसीके परिणाम हैं ।

२—अछूत, स्त्री, कन्या और सन्तान पर समाज मनमाना व्यक्तिगत अत्याचार करने देता है । पालतू कुत्तोंसे भी अछूत निकृष्ट समझे और दुर्दुराये जाते हैं, स्त्रियाँ पैरकी जूती समझी जाती हैं । पुरुष खुल्लमखुल्ला उनको दिखा

दिखा कर व्यभिचार करते हैं और निर्लज्ज होकर उन्हें सतीत्वका उपदेश देते हैं। समाजने पुरुषोंके व्यभिचारको जारी रखनेके लिये वेश्याएँ बाजारमें बैठा दी हैं—हालाँ कि पुरुषोंको बहुत ही अधिक सुभीतेसे दूसरी स्त्री प्राप्त हो सकती है। जब कि स्त्रीको बाल-विधवा होने पर भी कठिन ब्रह्मचर्य व्रतका उपदेश किया गया है, पुरुष अनेक व्याह करते हैं—स्त्रीके मरनेके दिन ही स्मशानमे व्याहकी चर्चा चल जाती है—६०,७० वर्षके बूढ़े भी कॉरी कन्याओंसे व्याह करते भय नहीं खाते। उधर एक एक कुलीन २०० व्याह करता है और कन्याको पतिका मुँह देखना भी नहीं नसीब होता। सन्तानोको लोग अपने कामके लायक मनमाने ढगसे पालते और शिक्षा देते हैं। कोढ़ी, मृगीके रोगी, आतशकके रोगी, कंगले, मंगते भी व्याह करते हैं और सतान पैदा करते हैं। उनकी अभिरुचिकी ओर न ध्यान देते हैं, न उनके विकास होने देनेकी पर्वाह करते हैं और बचपनमे व्याह कर सर्वनाश करते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि लाखों अछूत ईसाई हो रहे हैं और अपना कामधन्धा,मर्यादा, शील सब त्याग रहे हैं। स्त्रियाँ कुलटा, व्यभिचारिणी हो रही हैं, कलहनी बन रही हैं। भ्रूणहत्याओकी भरमार है। क्षय, कुष्ठ, प्रदर, हिस्टीरिया आदि भयंकर रोग जो चिन्ता, दु ख, अनैसर्गिक व्यभिचार आदिके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, बढ रहे हैं। स्त्रियोंमेंसे सन्तानकी उत्पादक शक्तियाँ नष्ट हो रही हैं। बच्चे कुरूप, दुर्बल, निकम्मे, अल्पायु हो रहे हैं—नस्ल नष्ट हो रही है। कमाने, जीने और सुख भोगनेकी शक्ति क्षय हो रही है। इसके सिवा लाखों बच्चे ऐसे हैं जो ६ मासकी अवस्थामें ही अपने मा-बापके पापसे कोढ़ी हो गये हैं, उँगलियाँ गल गई है। इन सब पर बात यह है कि २॥ करोड़ विधवा और ५६ लाख निकम्मे भिखारी समाजकी भयंकरताको बढ़ा रहे हैं।

३—आचारको लोग रीति-रस्मकी तरह मानते हैं और इसे वे अपने वर्तमान जीवनका कोई उपयोगी अंश नहीं मानते।

समाज या तो तुरन्त निम्न प्रकारके संशोधन करे, वरना उसके विपरीत सत्याग्रह महास्त्र प्रयोग कर देना चाहिए।

ऐसा प्रबन्ध हो कि अमीर अधिक अमीर होनेमे रुकें और गरीब अधिक गरीब होनेसे रुकें।

यह इस प्रकार हो सकता है।

(क) धर्म और ईमानकी कसम खाकर सूदखोरी एक दम उठा दी जाय। रुपयेका लेन-देन, गिरवी-गाँठा, कागज-तमस्सुक बिल्कुल उठा दिये जायँ, पंच, चौधरी, जाति आदिसे सूदखोरोंको सख्त सजा दी जाय—उनका सब सामाजिक व्यवहार बन्द कर दिया जाय।

(ख) विदेशी व्यापार, दलाली, सट्टा यह सब उठा दिये जायँ । नामको भी न रहें।

(ग) धनीलोग अपने रुपयोंसे किसानों, कारीगरों और विद्यार्थियोंको इस प्रकार सहायता दें कि सम्पत्ति-शास्त्रके अनुसार उन्हें उचित आर्थिक लाभ भी हो और उस लाभमें उपर्युक्त तीन प्रकारके व्यवसायी यथोचित रूपसे सम्मलित हो। यथा—

किसानोंको रुपया बिना सूदके दिया जाय और उनकी उपजको अपनी जमानत पर देशमें विनिमय किया जाय। जहाँ माल किसानके घरसे आया वहाँ उस समय उसका जो भाव हो, उससे अधिक जिस भाव माल अन्य प्रदेशमें बिके उस मुनाफेमे आधा किसान और आधा व्यापारी ले ले। बाकी असली दाम कुल किसानको मिले। ऐसे व्यापारी बहुत कम हो और धीरे धीरे ये व्यापारी और भी कम हो ताकि किसानोको स्वावलम्बन मिले।

यही व्यवहार कारीगरोंके साथ हो। कारीगरोके मालकी क्वालिटी (प्रकार) की गारंटी रहे—व्यापारी उस मालको देशान्तरित करें—वहीं पर कदापि न बेचे। वहीं पर ग्राहक लोग सीधे कारीगरसे खरीदे और कारीगर जिस भाव थोक माल व्यापारीको दे उसी भाव फुटकर ग्राहकको दे। अर्थात् व्यापारी देशान्तरित करनेकी मजूरी ले सकता है, तत्स्थानीय नहीं। कारीगरों और किसानोंको उत्तमसे उत्तम साधन उनके व्यवसायके उपयोगी अपनी सत्तासे संग्रह कर देने चाहिए, यदि वे लोग असमर्थ हो।

नगरके विद्यार्थियोके लिये उद्योग-धन्धो, चरित्र-गठन, शरीर-रक्षा आदिकी शिक्षाका प्रबध स्थानीय धनियों और विद्वानोके सिर रहे—वे ही उनके जिम्मेवार बनें। उनकी शिक्षा-दीक्षा और चरित्रमें कोई कसर न रहे। २० वर्षका होने पर कोई विद्यार्थी निकम्मा, रोगी, कमा न सकनेवाला, चरित्र-हीन, मूर्ख या दुर्बल हो तो उसका जवाब स्थानीय धनियों और विद्वानोंसे माँगा जाय। और उसके लिये उन्हें कठिन दण्ड दिया जाय।

धनिक लोग ऐसे उद्योग-धन्धे, कल-कारखाने खोले कि जिससे देशका कच्चा माल तुरन्त पक्की शकलमें आ जाय और उसमे देशके दरिद्र मजूरोंको पूरा लाभ

हो। वे निठल्ले, चोर, अल्पायु, झूठे या बेईमान दीखे तो देशके धनियोंको कठोर दण्ड दिया जाय। देशके उपयोगसे बचा तैयार माल विदेशोंमें भेजा जाय और नकद रुपया देशमें वापस लिया जाय।

देशमे ववाई, रोग फैले तो धनियोंको भागनेसे रोका जाय। उनसे बडी बड़ी रकमे लेकर रोगके नाश करनेके प्रबन्ध हों। कोई पुरुष धन या वलके जोरसे गरीवकी धरती न दवा बैठे। रहनेका मकान कोई मोल न बेचे। किराये पर चलानेके लिये कोई जायदाद न बनावे, न किराये पर कोई मकान दूकान किसीको दे, न ले। थियेटर, व्याख्यान-भवन और सार्वजनिक सराय, होटल आदि अनिवार्य होने पर किराये पर चले। उचित तो यह है कि ये स्थान भी मालिकोके हों। अर्थात् धनीलोग अनधिकार रूपसे जमीन घेर कर रहनेवालो पर मनमानी न करें। जमादारो, रसोइयो, चपरासियों, खिदमतगारों और ऐसे लोगोको जो सार्वजनिक कार्यमें निकटका सम्वन्ध रखते हैं, समाज अपने प्रवन्धसे रहनेका स्थान दे, खाद्यकी भी व्यवस्था करे—वे मनमाना न खा सकें—न रह सके। क्योकि उनके स्वास्थ्य, चरित्र और जीवनका जनतासे घनिष्ठ सम्वन्ध है—खास कर वच्चोसे।

इस प्रकारसे प्रथम दोषका निराकरण हो सकता है। अव दूसरे दोषका सशोधन हम इस प्रकार चाहते हैं।

(क) अछूतोंको अस्पर्श्य न समझा जाय। उन्हें मन्दिरों, धर्मालयों, स्कूलो और उत्सवोंमे समान भावसे शरीक होने दिया जाय। उन्हें स्वच्छ रहने, सभ्य वनने, कुरीतियोंसे वचने, चरित्र सुधारने और आचारकी सीमामें रहनेकी शिक्षा दी जाय और नियन्त्रण भी रहे।

(ख) स्त्रियोका पर्दा तोड़ दिया जाय। वाहर जाती वार प्रत्येक स्त्री पुरुष साथ रहें जिससे लम्पट पुरुषोंकी वेश्याओंके कोठे और परस्त्रीको झांकनेकी आदत छूट जाय। क्योकि प्रत्येक पुरुष अपनी स्त्रीका लिहाज करेगा, साथ ही यह भी समझेगा कि जैसे हम पर-स्त्री और वेश्याकी ओर देखते है उसी तरह कोई हमारी स्त्रीको भी देखेगा और हमारी स्त्री भी पर पुरुषको देखेगी।

(ग) वेश्याओंसे सव प्रकारका सम्वन्ध त्याग दिया जाय और उनके द्वार पर वालंटियर नियत किये जायें जो वहाँ जाने आनेवालोका नाम लिखे, जो अपरिचित हैं उनके फोटो ले लें और रोज प्रात काल नगरमें यह लिस्ट छपा कर चिपका दे।

देश-विदेशमें वही पोशाक, वही भोजन अखण्ड रूपसे चले । उसमें ऋतु या स्वास्थ्यके कारण ही कोई विकार आवे तो आवे ।

(ख) देश भरमें एक भाषाका प्रचार हो—यह भाषा ऐसी हो जो सरल हो, अधिक प्रचरित हो और प्रौढ़ भी हो ।

(ग) विवाह, गमी, उत्सव, त्यौहार आदिमेंसे वह विषय निकाल दिया जाय जिसकी उपयोगिता समझमे नहीं आती । उनके स्थान पर और सकारण रीतियाँ जारी की जायँ ।

(घ) मत-सम्बन्धी कट्टरता त्याग देनी चाहिए । सत्य बोलना, सबसे प्रेम रखना, सबको आत्मवत् समझना, दया, पवित्रता, इन्द्रियोंकी वश्यता आदि गुणोंको धर्मके स्वरूप जानने चाहिए, जो सबको मान्य हो । इनके सिवाय किसीके ऐसे विचार-स्वातन्त्र्य पर जो किसीके मार्गमे विघ्न नहीं उत्पन्न करते, कोई हस्ताक्षेप न किया जाय । वैध उपायोंसे वह अपनी सम्मतिमे मिलाया जाय, क्योंकि भिन्नता सर्वत्र बुरी वस्तु है ।

समाज इस सशोधनको स्वीकार न करे तो तुरन्त मोर्चा जमा कर सत्याग्रहका युद्ध प्रारम्भ कर देना चाहिए ।

पहला मोर्चा—

(क) जिस जिसने सूद पर रुपया लिया है वह एक दम देनेसे इन्कार कर दे । कुर्की, नीलाम हो तो होने दे ।

(ख) मजूर, नौकर, खिदमतगार, रसोइये, चपरासी और सब प्राइवेट नौकर काम छोड दें, स्थायी हरताल कर दें ।

(ग) किसान, कारीगर और बाबू लोग व्यापारियोंको कोई सहायता न दें, न उन्हें माल बेचे । यदि साहु या व्यापारीका पावना हो तो उसे अपना माल अन्यत्र (स्तैमाल करनेवालेको, व्यापारियोंको नहीं) बेच कर बिना सूद नकद रुपया दे—सूद माँगे तो न दे—अदालत डिग्री दे तो कुर्की होने दे । जेल जाय ।

(घ) कोई आदमी व्यापारीसे एक पैसेका माल भी न खरीदे, न बेचे ।

(ङ) जाति-बिरादरी, कमीन, पुरोहित उसमे सब सम्बन्ध त्याग दे ।

दूसरा मोर्चा—

(क) अछूत लोगोंको चाहिए कि जो उन्हें अछूत समझे—उनके हाथका न खायें पीवें—वे भी उन्हें अछूत समझे । उनके हाथका न खायँ, न पीवें, न अपने

पूजा उत्सव आदिमें उन्हें शरीक होने दें । उनका काम टहल आदि न करें, चमार जूते न बनावें और भंगी सफाई न करें। जहाँ तक हो उनके बिना अपना काम चलावें—उनसे सहाय न लें—कानून और गवर्नमेन्टने साम्राज्यमें जो स्वाधीनता उन्हें दे रक्खी है उससे यथोचित लाभ उठावें ।

(ख) व्यभिचारी पुरुषकी कुल सेवा उसकी स्त्री त्याग दे, पीहर चली जाय, उसके पास कदापि न रहे । विघ्न करे तो अदालतकी शरण ले अथवा जिद पर बनी रहे। बच्चोंको पुरुषके गले छोड़ जाय, चाहे वे कितने ही छोटे क्यों न हो और चाहे वे मर ही क्यों न जायँ ।

(ग) किसी रँडुएके व्याहमें नामको भी कोई स्त्री शरीक न हो। कन्या अदालतकी शरण ले और अपनी अनिच्छा प्रकट करे । जातिके पंच, चौधरी ऐसे आदमियोंका सब व्यवहार बन्द कर दें ।

(घ) बूढे व्याह करनेवाले, कन्या बेचनेवाले और बाल-विवाहवालोंकी खूब धुरपद झाडी जाय—उनके कार्टून गली गली चिपकाये जायँ, गुड्डा निकाला जाय, लड़की चुराली जाय और तुरन्त उत्तम वरसे उसका व्याह कर दिया जाय । चाहे जेल हो जाय, पर यह नियम नर्म न पडे ।

(ङ) ताकतकी दवा बेचेनवालो, गर्भपात करानेकी दवा बेचनेवालो वैद्य-डाक्टरोंका एक दम बायकाट कर दिया जाय। जो ऐसे नोटिस दें उनका सब कार-बार बन्द कर दिया जाय। उनका नुसखा प्रकट कर छाप दिया जाय—जाल तोड़ दिया जाय। अश्लीलताके मुकदमे चलाये जायँ और उनके झूठको सब तरह प्रकट किया जाय।

(च) एक स्त्री रहते जो दूसरा व्याह करना चाहे तो उसकी स्त्रीको भी दूसरे वरके ढूँढनेका अपने पूरे पतेवार नोटिस छपा देना चाहिए और उसकी सगाईके साथ उसकी सगाई, लगनके साथ लगन और व्याहके साथ व्याह होना चाहिए। युवक-मण्डल उसे पूर्ण सहायता दें । एक दो ऐसे उदाहरण होते ही मर्दोंकी अक्ल ठिकाने आ जायगी ।

तीसरा मोर्चा—

विवाह, गमी, उत्सवकी अनुचित और अनावश्यक बातो पर चाहे वे कितनी ही तुच्छ हो, कठिन सत्याग्रह करो । कल्पना करो यदि भोजनके समय

गाली गाई जावें तो सब बरात भोजन छोड कर उठ जाय और फिर उस घर भोजन ही न करे। हो सके तो इसी घटना पर बिना ब्याहे लौट आना चाहिए—एक ही घटना गॉव भरको सैकडों वर्षोंके लिये काफी होगी।

लड़के, बच्चे या परिवारके आदमी सब एक-से वस्त्र पहनें—एक-सा भोजन करें। यह नियुक्ति सत्याग्रह-सभा करे । उसके विपरीत पक्षको सर्वथा बहिष्कृत कर देना चाहिए।

विदेशसे लौटे हुए पुरुष भी अपना आचार-विचार जातीय न रक्खें तो यही व्यवहार उनके साथ करना चाहिए।

स्कूलोंसे बच्चोंको एकदम उठा लेना चाहिए । उन्हें फुटकर कारीगरो, विद्वानों और किसानोंका घर शिष्य बना देना चाहिए। और जैसे बने कोई नौकरी न करे—खास कर विलायती ढंगकी दूकान, दफ्तर या किसी व्यक्तिकी।

शहरोंको छोड कर देहातोमें सज्जन और समझदार लोग बस जायँ।

समाजकी कुरीति नष्ट होगी और आपकी विजय होगी। इस सत्याग्रहास्त्रमें समाजके यावतीय दोष भस्म हो जावेंगे।

राष्ट्रीय सत्याग्रहकी आवश्यकता सरकारी शासन-पद्धतिकी अनुदारतासे उत्पन्न हुई है।

हम सरकारी शासन-पद्धति पर निम्न-लिखित दोष आरोपण करते हैं।

१—इंग्लैंडमें शासनका यह क्रम है कि वहाँ राजसत्ता प्रजाके अधीन है और प्रजा राजाके अधीन है। कोई भी कानून या नियम या प्रणाली जिसे प्रजा अपने हितके लिये आवश्यक समझती है, बनाती है उसे महाराज स्वीकार मात्र कर लेते हैं। यदि किसी कारणसे वे उसे स्वीकार नहीं करते तो एक बार प्रजासे अनुरोध करते हैं कि वह पुन. उस प्रश्न पर विचार करे, यदि प्रजा फिर भी उसी निश्चय पर दृढ़ रहती है तो महाराज उसे स्वीकार करके प्रचलित कर देते हैं।

नैतिक उत्तरदायित्वमें व्यतिक्रम न होने पावे इस लिये प्रजाके दो विभाग किये गये हैं। एक प्रतिष्ठित पुरुष-समूह और एक सर्व-साधारण। स्पष्ट है कि दोनों पक्षोंके स्वार्थोंमे अन्तर होता ही है—सुहूलियतके लिये दोनों पक्षोको अपने अपने स्वार्थोंकी रक्षाकी एकान्तता स्थायी बनाये रखनेके लिये दोनों पक्षोकी राय भिन्न भिन्न ली जाती है। पर प्रतिष्ठित समूह भी सर्व साधारणकी अनुमति बिना किसी तरह

अपने स्वार्थोंका समर्थन नहीं कर सकते। इस तरह राजसत्ता—समाजके प्रधान व्यक्ति—और सर्व-साधारण एक दूसरेको बाधा न देते हुए अपने अपने स्वार्थोंको मजेमें पालन कर रहे हैं।

पर अँगरेजी साम्राज्यमे रह कर भी भारतवर्षमें इस नीतिका अनुसरण नहीं किया जा रहा है। यहाँ राजसत्ता प्रजाको अपने अधीन तो करना चाहती है, पर स्वयं प्रजाके अधीन नहीं हो सकती। वाइसराय सकौन्सिल सर्वथा शासनाधिकार रखते हैं। यद्यपि कौन्सिलमे प्रजाके मान्य नेता शरीक होते है, पर उन्हें सरकार प्रजाके वोटो पर नहीं चुनती—जैसा कि इंग्लैण्डमें है। अपनी स्वेच्छासे चुनती है। तिस पर भी कौन्सिलके शासनमें उनको राय देने मात्रका ही अधिकार है—विरोध पक्षमे उनकी अप्रतिम युक्तियाँ भी बिना यथेष्ट खण्डन किये अस्वीकार कर दी जाती हैं। और यदि प्रजा उसके पक्षमें होती है तो उसका भी ध्यान नही किया जाता। इस प्रकार आडम्बरके लिये कुछ स्वरूप प्रजाधिकारके लिये रख कर स्वेच्छाचारका शासन होता है।

हम इसे अन्याय और अत्याचार समझते हैं और इसके विरुद्ध सत्याग्रहास्त्र प्रयोग करनेकी आवश्यकता समझते हैं।

२--सरकारका प्रधान कर्तव्य धीरे धीरे प्रजाकी अन्त शक्तिको पुष्ट करना होना चाहिए और उसकी समस्त चेष्टा और प्रयत्न अन्त शक्तिके परिष्कृत करनेमें लगनी चाहिए जैसा कि समस्त सभ्य सरकारोका उदाहरण है और इग्लैण्डमें अँगरेज सरकार भी जैसा कर रही है। यह अन्त शक्ति तीन प्रधान विभागोंमें वढी हुई है। १ शिक्षा, २ व्यापार, ३ सामरिक वल।

शिक्षाके सम्बन्धमें हमें घोर असन्तोष है। हमारे वच्चोको शिक्षित होनेके जैसे चाहिए वैसे साधन नहीं उपस्थित किये गये है। और शिक्षाकी उन्नति उपहासास्पद धीमी गतिसे खसक रही है जो वडी भयंकर है। जव कि सारा ससार सरपट दौड़ रहा है तो हम इस रगडपट्टीमें विना कुचले न रहेंगे। शिक्षा हदसे ज्यादा महँगी है—हमसे वीस गुना अधिक धनी देशकी भी शिक्षा उतनी महँगी और दुष्प्राप्य नहीं है। इसके सिवा वह अनुपयोगी भी है। इस शिक्षाने हमारी नैतिक या कैसी भी स्थितिको कुछ भी सुधारा नहीं है। इस शिक्षाने हमारा निज चिन्ह भुला दिया है—हमारी जातीयतासे हमें दूर कर दिया है—हमारे

आत्म-गौरव पर हठात् पर्दा डाल दिया है। हम सिर्फ क्लर्क या वावू रह गये हैं—उद्योग-धन्धे सीखनेका कोई आयोजन नहीं है, चरित्र-सुधारका कोई प्रवन्ध नहीं है। चरित्र तो मानो शिक्षाके लिये कोई आवश्यक नहीं है। पढे लिखे लोग गरीव, दुखी, कमजोर, रोगी, अल्पायु और निकम्मे सावित हो रहे हैं।

इस ऊटपटॉग, हमारी प्रकृति और स्थितिके प्रतिकूल तथापि अत्यल्प और मँहगी शिक्षाके लिये सरकारकी हम शिकायत करते हैं और इसे अत्याचार समझते हैं।

व्यापार प्राय देशमें है ही नहीं। भारतका व्यापार दलाली मात्र रह गया है। भारतके व्यापारी दलाल हैं या सट्टेवाज हैं। किसी भी सभ्य देशमे व्यापारका यह घृणित स्वरूप न होगा। सरकारकी मुक्तद्वार वाणिज्य-नीति, कौन्सिल-बिल, होमचार्जे ये सब देशके व्यापारको चौपट कर रहे हैं। सरकार यह प्रसिद्ध कर रही है कि भारत कृषि-प्रधान देश है अर्थात् कच्चा माल तैयार कर करके वाहर कौडियोके मोल भेजना और वहाँसे वना बनाया अशर्फियोंके मोल लेना वस यही व्यापारका प्रधान अंग रह गया है।

अँगरेजी साम्राज्य बडा उन्नत और प्रशस्त है। इसे किस वातकी कमी थी? अँगरेजी राज्यमें वडे वडे कारीगर—मेशीन वनानेवाले—तरह तरहके आविष्कारक हैं। बड़े बडे कारखानें और फार्मे ऐसी जगह चल रहे हैं जहॉ कच्चे मालकी सदा मुँहताजी वनी रहती है। क्या सरकारका यह कर्तव्य नहीं था कि यहीं पर—जहॉ कच्चे मालकी वहुतायतसे उपज है—उनकी तैयारीके कारखाने खोले, जिससे मजूरोको रोटी मिले और देशका धन देशमें रहे। हमारे देशके निर्धन मजूर जव अपने वच्चोको भूखों छटपटाते नहीं देख सकते तो फिजी और जमैकामें जाकर अपनी इज्जत आवरूको पराये जूतोमें कुचलवाते हैं। सरकार इनकी रक्षा तो एक ओर रही, इनकी मुसीवतोका व्यापार कर रही है और देशके धनी कोई धन्धा न देख कर गरीवोसे मनमाना सूद ले, सुस्त पड़े, जम्हाई लेते हुए मरनेके दिन पूरे किया करते हैं। उधर जापान, अमेरिका, फ्रास और जर्मनीने धड़ल्लेके व्यापारिक डाके डाल कर देशको सत्यानाश कर डाला है और सरकार कानमें तेल डाले खड़ी है। क्या इसमें सरकारका कुछ कर्तव्य नहीं था?

निश्चय सरकारकी यह अकर्मण्यता या अत्याचार है। सामरिक वल जडमूलसे नष्ट हो गया। वर्वर जर्मनीके इस भीषण युद्धमे जव अँगरेज जातिको समरमें जूझना

पड़ा तो भारतके सामरिक बलका भण्डाफोड हो गया। तीस करोड भारतने जो सामरिक बल दिया वह लज्जाके योग्य था—नितान्त लज्जाके योग्य था। पर इसकी उत्तरदाता अवश्य सरकार है। अभी मुगलोंके राज्यकालका सामरिक बल लोगोंको भूला नहीं है। बादशाहकी आँधीके समान सेनाएँ—राजपूतानेकी एक एक रियासतों पर हर साल उमडती रही और इन रियासतोंने लाखोंकी तादादमे योद्धाओंकी छाती अड़ाई। हर बार बादशाही और विदेशी बलोंसे टकरा कर वह बल नष्ट हुआ, पर अगले वर्ष फिर उतना ही दीख पड़ा। जिस भारतकी वीरताके कारनामे गानेके योग्य कहे जाते है उस भारतका सामरिक बल कहाँ नष्ट हो गया? कहाँ पानीमे डूब मरा?

निश्चय सामरिक बलको अँगरेजी साम्राज्यमें आने पर फाँसी लगी है। हथियारोंके कानूनने लोगोंको हीजड़ा बना दिया। चोर, डाकू, लुटेरो तथा जंगली पशुओंसे रक्षा करनेको भी हथियार कोई नहीं रख सकता। नौजवान लोग बाबू बन कर स्वास्थ्य खो रहे हैं। कुछ अमीर होकर जनाने हो रहे हैं। बाकी हाय पेट! हाय पेट! कहते रोते फिर रहे हैं। आज यदि सरकार भारतके सामरिक बलकी परवाह करती—उसे उत्तेजना देती, फौजी कालेज खोले जाते, जहाज बनते, जल, थल और आकाशमें भारतके बच्चे अँगरेजोंके साथ फिरते तब तीस करोड़ वीरोंकी साठ करोड तलवार देख कर भी क्या जर्मनका मुँह खोलनेका साहस होता? पर दशा इसके विपरीत हुई—सरकारको इस विपत्तिमे जहाँ शत्रुके नाशके उपाय सोचनेकी परेशानी रही वहाँ भारतको शत्रुसे बचानेकी भी बडी फिक्र रही। मानो इतना लम्बा-चौडा, जवानोंसे भरा हुआ भारत सरकारका जनानखाना था! छि· भारतकी मर्दानगी छीनना क्या अत्याचार नहीं है?

३—यद्यपि समय समय पर ऐसे शाही ऐलान हुए हैं जो बडे उदार है और कुछ कानून भी ऐसे हैं जो सरकारकी शासन-पद्धतिको उत्कृष्ट तथा उदार सिद्ध कर रहे हैं, पर इनमें हम राजनैतिक छल देखते है, क्योंकि इनसे कभी काम नहीं लिया गया और तवारीखी दुनियामे दिखावेके लिये ही वे अछूते रक्खे गये है। सरकारके नौकर जो उसकी ओरसे देश पर शासन करते है सदा प्रजाको गैर और अविश्वासिनी तथा तुच्छ समझते रहे है और कभी उससे नहीं मिले। न्यायमे, पदमे और अधिकारमे भी गोरे-कालेका भेद देखा जा रहा है। बडे बडे पद कालोंको सिर्फ रंगकी

वजहसे नहीं मिलते। कालोंका वेतन उसी हैसियतके गोरे कर्मचारीकी वनिस्वत वहुत कम रक्खा जाता है। वेतनका वड़ा ही असन्तोष-जनक विषम वितरण है। यहॉके अफसरोंकी तनखाह विलायतके उसी दर्जेके अफसरोंसे चौगुनी है—हालॉ कि वे विलायतके छटियल अफसरोंसे भी चौथाई लियाकत रखते हैं। और यहॉके निम्न कर्मचारियोंका वेतन विलायतके कर्मचारियोंसे चौथाई है—हालॉ कि वे उनसे चौगुने लियाकत और काममें हैं। इनके सिवा उच्च पदकी योग्यता प्राप्त करनेमें कॉटे विछाये गये हैं—ऐसी तरकीव की गई है कि उच्च पद प्राप्त ही न होने पावे। फिर चरित्रकी शिक्षा नहीं दी जाती—उलटे आत्म-विश्वासका विरोध किया जाता है। फलत जो देशी सरकारी कर्मचारी हैं उनमें अधिकाश वेईमान, रिश्वती और हरामी हैं। यहॉ तक कि प्रजाको सरकारी न्याय पर तो यह विश्वास हो गया है कि वहॉ सत्यकी जय नहीं होती। यह वात वहुत ही काविले एतराज है और यह प्रजा पर नैतिक अत्याचार है।

ये आक्षेप हैं जो हम सरकारकी शासन-पद्धति पर लगाते हैं और सरकार इनका निराकारण तो एक ओर रहा इस त्रुटिकी आलोचना करनेवालोका वलसे विरोध करनेकी धमकी देती है।

ऐसी दशामे हम इस शर्त पर सन्धि कर सकते हैं।

१–कानून वनाती वार हमारे और सरकारके स्वार्थोंमें व्यक्तिगत भेद न रहे।

२–कानूनका पालन करती वार राजनैतिक छल प्रयोग न हो।

३–कानूनका प्रभाव सर्वथा समान भावसे प्रजाकी तरह ही सरकारकी स्वेच्छा-चारिताको नियन्त्रण करे।

न्यायके नाम पर हम यह अधिकार मॉगते हैं और आत्म-गौरवके नाम पर यह घोषणा करते हैं कि यदि सरकार इसे स्वीकार न करे तो हम उसकी पद्धतिके विरुद्ध सर्व-नाश तक युद्ध करेंगे।

उचित तो यह है कि ज्यों ज्यों प्रजामे शिक्षा, योग्यता, वल और धनकी वृद्धि हो त्यों त्यों उससे साम्राज्यकी पुष्टि होनी चाहिए। प्रजाकी योग्यताके साथ ही संगठन, शान्ति और वैभवकी वृद्धि होनी चाहिए, किन्तु खेद है कि भारतमें ज्यों ज्यों शिक्षाकी वृद्धि होती है त्यों त्यों सरकार और उसके वीचका वैमनस्य वढ़ रहा है और अशान्ति वढ रही है। या तो यह उसकी शिक्षाका दुरुपयोग है या सर-

कारी पद्धतिकी निकृष्टता है। जिसे वह ज्यों ज्यों जानती जाती है असन्तुष्ट होती जाती है।

यह सत्य है कि हमें सरकारके लिये युद्ध करना जितना सोहता है उतना सरकारसे युद्ध करना नहीं सोहता। पर अपने अधिकारोंकी प्राप्ति और आत्म-गौरवकी रक्षाके लिये सरकारसे युद्ध करनेका समय आ गया है—क्योंकि अब और कोई उपाय नहीं रह गया है।

गत युद्धके परिणामकी ओर हम टकटकी लगा कर देख रहे थे। हमसे जो बना अपनी योग्यताका प्रमाण दिया। वह यद्यपि तुच्छ और हमारे लिये लज्जास्पद था, पर सन्तोष इतना ही है कि उसका उत्तरदायित्व हम पर नहीं है। अब जब गोरे संसारने न्याय, अधिकार और आत्म-शासनका बँटवारा किया तो हमें फटकार कर कहा गया है चुपचाप दूर खडे रहो, कान मत खाओ—हमें बहुत कुछ मिलेगा, उसकी चूर-चारसे ही तुम्हारा पेट भर जायगा। गोया हम अँगरेज जातिके मोल खरीदे गुलाम थे?

हम अपनी इस परिस्थितिको सन्तोषसे नहीं देख सकते—इस अपमानको नहीं सह सकते। या तो ब्रिटिश साम्राज्यमे हमे बराबरीका आसन मिलना चाहिए, वरना युद्ध करके उसे जबर्दस्ती हम प्राप्त करेंगे।

हमारा यह युद्ध रक्त-पातका न होगा, इस युद्धमे हम खूनको नहीं जीतेंगे, इस युद्धमें हम सत्याग्रहास्त्रका प्रयोग करेंगे, वह हमें निश्चय विजय देगा। राजसत्ता पर प्रजा यदि रक्त-पात करे तो उसे धिक्कार है और जो राजा प्रजा पर अत्याचारसे रक्त-पात करे उस पर धिक्कार है। हमारा नाम सदासे सत्य बल पर नामी रहा है—आध्यात्मिक जगत्मे हम सदासे गुरु रहे हैं—धर्म सदासे हमारा जीवन रहा है, इस लिये हमें इस गुरुतर अवसर पर भी अपनी वह अलौकिकता संसारको दिखा देनी चाहिए। सारा संसार हमारा, सरकारके साथ युद्ध देखे जिसमे हिंसा नहीं है, प्रतिहिंसा नहीं है, रक्त-पात नहीं है, क्रोध नहीं है, छल नहीं है, अशान्ति नहीं है और हत्या नहीं है। किन्तु अखण्ड विजय अवश्य है। यह अलौकिक, अप्रतिम और निराला दृश्य हमें संसारके सामने रखना है—समस्त भारतवासी सावधान हो कर कटिबद्ध हो जायें और कठिन सत्याग्रहास्त्रको हाथमे ले, उसके व्रती होकर उन्हें इस प्रकारसे युद्ध प्रारम्भ कर देना चाहिए।

पहला मोर्चा—स्वदेशी-व्रत ग्रहण—देशके बच्चे, बूढ़े, स्त्री छोटे, बड़े सबको स्वदेशी-व्रत ग्रहण करना चाहिए। माता वसुन्धरा जो उसके लिये सब जगह लिये खड़ी है, उसका अपमान न करना चाहिए । सब प्रकारके विदेशी पदार्थ जला डालने चाहिए। तकलीफ भुगतनी चाहिए, पर विदेशी वस्तु न ग्रहण करनी चाहिए। इसके लिये सब तरहकी तकलीफ, हानि उठा लेनी चाहिए। वस्तु कितनी ही कीमती, प्रिय और दुष्प्राप्य हो घरके बाहर ला कर नष्ट कर देनी चाहिए। और भीष्म शपथ खाकर प्रतिज्ञा करनी चाहिए ।

खास बात—स्वदेशी शब्दको यथाशक्य सकुचित करना चाहिए। यह जितना सकुचित होगा उतना उसका प्रभाव प्रबल और शीघ्र होगा। जैसे कि अजमेरके निवासियोंको स्वदेशी-व्रतके लिये अजमेरकी ही वस्तु प्रयोग करनी चाहिए। जो वस्तु अजमेरमें न मिले उनका अभ्यास छोड देना चाहिए। कल्पना करो कि मैंने अजमेरमें रह कर विलायती जूता पहनना छोड़ कर दिल्लीका पहना तो उसका कुछ अच्छा परिणाम न होगा । हॉ अगर अजमेरका पहनूॅ तो उसी दिन उसका प्रभाव होगा । केवल अजमेरके जूतेकी प्रतिज्ञावाले ५० पुरुष भी उत्पन्न हो जायॅ तो उसी समय अजमेरके चमारोकी दशा बदल जाय, लेकिन भारत भरमेंसे कहींके जूते पहनेंगे यह भावना रहे तो व्यर्थ है।

अभिप्राय यह है कि स्वदेशी-व्रतसे कारीगरीको सहायता तथा उत्तेजना मिलनी चाहिए, व्यापारको नहीं। स्वदेशीका हम जितना व्यापक अर्थ करेंगे देश भरकी वस्तुका उतना ही यातायात बढ़ेगा, इससे कारीगरोंकी अपेक्षा व्यापारको प्रश्रय मिलेगा। एक तो व्यापार दलाली है, उसे प्रश्रय नहीं देना चाहिए। दूसरे रेल, तार, डाक, टेक्स, चुंगी आदि कारणोंसे वह बहुत कुछ सरकारके अधीन है, अत एव उसमे हमें सरकारकी रियायत देखनी पडेगी—मुॅहताज बनना पड़ेगा और कष्ट होगा । या हम सरकारसे युद्धमे दब जावेंगे ।

यह मत समझो कि फिर वस्तुकी विशेषताऍ नष्ट हो जायॅगी, जैसे—किसी किसी खास खास स्थानोंकी खास खास वस्तु प्रसिद्ध है—मुरादाबादके बर्तन, ढाकेकी मलमल इत्यादि। इनका व्यापार नष्ट हो जायगा। मै यह नियम उसी समयके लिये बनाता हूॅ जब तक कि सत्याग्रह-युद्ध हो रहा हो, यह मार्शल ला है—फौजी कानून है। शान्तिके समय देश भरका यथेच्छ व्यापार चले। पर फौजी कानून तो कठोर होते ही हैं और वह प्रजाको सहने चाहिए ।

दूसरा मोर्चा— व्यापारकी हड़ताल कर देनी चाहिए। बड़े बड़े फर्म, पुतलीघर, कोठी, आढत और थोक कारबार—चाहे वे परदेशीय हो चाहे एतद्देशीय—सब एकदम बन्द कर देने चाहिए।

केवल आवश्यक वस्तु बनानेवाले बेचें और इस्तेमाल करनेवाले खरीदें। सग्रह करनेवाले या देशान्तरित करनेवाले या मुनाफा कमानेवाले न खरीदें। अभिप्राय यह है कि सचय न हो—काम चले और फुटकर धन्धे साधारण-रूपसे काम दें।

इसका प्रभाव सरकार पर विशेष होगा, उसकी वाणिज्य-नीति पर धक्का लगेगा—उसके टेक्स आदिकी आय कम होगी और हमारा आवश्यकीय जीवन सर्वथा स्वाधीन हो जायगा।

तीसरा मोर्चा—सार्वजनिक सरकारी सहायता अस्वीकार— रेल, तार, नलका पानी, बिजलीकी रोशनी, ट्राम, डाक और म्युनिसिपैलटीकी सहायता मत माँगो, मत स्वीकार करो। इनको क्षति पहुँचाने या इनके कार्यक्रममें विघ्न डालनेकी आवश्यकता नहीं है। ऐसा प्रवन्ध करना चाहिए कि ये निठल्ले फिरते रहें और हमारा काम इनके विना चल जाय।

प्रथमके दो मोर्चे यदि ठीक ठीक फतह कर लिये जायँ तो तीसरे मोर्चेको फतह करना कोई मुश्किल नहीं रह जाता। खास कर नलका पानी, रोशनी, ट्राम और म्युनिसिपैलटीके अभावको तो हम थोड़े ही परिश्रम और कष्टसे पूर्ण कर सकते हैं। रही रेल, तार और डाक। सो उनका महत्त्व प्रथमके दोनों मोर्चे कम कर देंगे। इसके सिवा प्रवासियोंको अपनी अपनी जन्मभूमिमें आकर इस युद्धके अन्त तक रहना चाहिए—परदेशमें कोई भाई न रहे।

स्मरण रहे मनुष्य अभ्यासका अहदी है। लोगोंकी समझमें ही नहीं आता कि रेल, तार, डाक आदिके विना किस तरह गुजर होता होगा। पर निश्चय जानिये संसारने करोडों वर्ष इनके विना गुजारे हैं और वे वर्ष अवसे कहीं शान्ति और सुखके थे। अवसे दस वर्ष आगे जब हवाई जहाज घन्टेमे २५० मीलकी यात्रा करेंगे और बेतारकी तारबर्की सर्व-साधारणको प्राप्त होगी तव लोगोंकी समझमें यह आवेहीगा नहीं कि लोग बिना हवाई जहाजके पैसेन्जर गाड़ीमें सुस्तीमे कैसे सफर करते थे। आज दिन भी ऐसे पुरुष देशमे हैं जिन्होंने जन्म-कर्ममें कभी रेल, तार, डाक, नल और विजलीमे काम नही लिया है और उनका सब काम मजेमें चल

रहा है। फिर हम तो सत्याग्रह-युद्धकालके लिये ही सिर्फ मार्शल-ला जारी करते हैं।

चौथा मोर्चा—इस प्रकारके कानून अस्वीकार करने चाहिए।

१—जो लीडरो, अखवारों, प्रेसो, पुस्तको और सर्व-साधारणके वैध आन्दोलनोंको तथा स्वातन्त्र्यको वलात्—विना कारण बताये ही—रोकें, उसका कारण न बतावें या उन्हें अपने दोषकी सफाईका अवसर न दे।

२—जो ऐसे गोलमोल हो जिनसे सरकारी अधिकारी-गण अपने राजनैतिक छलकी आवश्यकता पड़ने पर यथेच्छ लाभ उठा सकें अर्थात् जिनका अर्थ ऐसा अस्पष्ट हो जिसमे खींचतान हो सकती है।

३—जो सर्व-साधारणकी सम्मतिके विपरीत जवर्दस्ती जारी किये गये हैं।

४—जिनसे न्याय और शासन अभियुक्तके विपरीत एक दूसरेकी सहायता करें और जिनसे पुलिसका आधिपत्य न्यायालयमे वढ़ जाय।

५—जिनके कारण सन्देहका लाभ अभियुक्तको न मिल कर मुद्दईको मिले और जहाँ जजकी अयोग्यता—भूल—वेईमानी या अत्याचारके विपरीत अभियुक्तको कुछ करनेका अवसर न मिले। अर्थात् जिस मुकदमेकी निगरानी—नजरसानी—अपील करने या मुकदमा दूसरी कोर्टमें उठा लेनेका कानूनी अधिकार अभियुक्तसे छीन लिया जाय।

६—इसके सिवा और भी ऐसे कानून जो सरकारी अधिकारियोको स्वेच्छाचार करनेका अवसर दें और प्रजाकी नैतिक तथा सामाजिक स्थिति पर वुरा प्रभाव डालें—अस्वीकार कर देने चाहिए।

इनके अस्वीकार करनेमें क्रोध या जोश न प्रकट करना चाहिए। इनका दण्ड शान्ति और विना विरोध स्वीकार कर सह लेना चाहिए। पुलिस या मजिस्ट्रेट या जेलके कर्मचारियोंकी आज्ञा उल्लघन नहीं करना चाहिए जब तक कि वे इसी प्रकारके कानूनोके आधार पर न हो।

किसी भी सत्याग्रहीके पकड़े जाने पर कोई सभा या जुलूस न जुटाना, हडताल नहीं करना, वरन उसका सरगर्मीसे अनुसरण करना—उसे जेलमे अकेला नहीं रहने देना—जेल ही घर वन जाना चाहिए। इससे सरकारका जो उद्देश्य जेलके दण्डसे है वह विफल हो जायगा। जेलमें भी सत्याग्रह जारी रक्खो।

स्मरण रहे किसी भी ऐसे अपराधके दण्डमे जुर्माना नहीं देना। उसके वदले चाहे कुर्की हो, चाहे जेल, इसमे विरोध नहीं करना।

पॉचवॉ मोर्चा--सरकारी कानूनकी सहायता मत लो—फौजदारी और दीवानी हर तरहकी अदालतोंका बहिष्कार कर दो। पंचायत वनाओ, उसमें अपने विश्वासी लीडरोंको चुनों, उन्हींसे सब फैसले कराओ। वकील लोग कानूनी सहायता उन्हें दें। उनके फैसलो पर विश्वास करो और शान्तिसे पालन करो।

अदालतके टिकट, स्टाम्प विकने वन्द हो जायॅ—जज लोग अकेले कुर्सी पर वैठे औंघा करें—चिडिया भी अदालतमें न जाय ऐसा प्रवन्ध कर दो।

इसे अन्तिम मोर्चा समझना चाहिए। यह फतह हुआ कि आपकी विजय हो गई। यूरोपका अर्थवाद आपके आत्मवलके आगे नाक रगड़ेगा और सरकारको आपकी ही शर्तों पर सन्धि करनी पडेगी।

इसके सिवा जैसी स्थिति हो और सत्याग्रही सेनापति जो आज्ञा दे उसे विना कारण पूछे मानना और वर्तावमें लाना चाहिए। परमपिताकी परम दयासे हमें गॉधी सत्याग्रह-महारथी प्राप्त हो गये हैं—जिनके विपयमे हम यह गर्व कर सकते हैं कि सारे संसार भरमें हमें ही इस युगमें सत्याग्रही योद्धा ईश्वरने दिया है जिसकी कि अव हमें जरुरत थी। हमें उचित है कि हम उस योद्धासे पूर्ण लाभ उठावें, क्योकि सदा ससारमे कोई नहीं रहता—खास कर गाँधी जैसी महान् आत्माको संसारमें रहनेकी फुर्सत कम होती है। हमें यह शोभा देता है कि हम दिखा दें कि सारा ससार जहॉ लोहू और लोहेके वलसे स्वाधिकार प्राप्त कर रहा है वहॉं हमारा महान् भारत आत्मवलके द्वारा योगकी परम सिद्धि प्राप्त कर रहा है।

तथास्तु कहो!!! ओम्—शम्।



असहयोग।

पहला अध्याय।

अतीत।

तपोधन महर्षि सनत्कुमार तपोवनके अपने आश्रममे बैठे थे। प्रख्यात देवर्षि नारदने समित्पाणि (शिष्यकी तरह) आकर प्रणाम किया। महर्षिने पूछा—"वत्स! तुम कौन हो?" नारदने कहा—"मैं नारद हूँ।" महर्षि बोले—"क्या चाहते हो?" उत्तरमे नारदने कहा—"पढ़ना चाहता हूँ।" महर्षिने फिर पूछा—अब तक क्या पढे हो?"

नारद कहते हैं—

"ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, वेदोंका वेद (व्याकरण), पित्र्य (पारलौकिक रहस्य), रासि (गणित-शास्त्र), दैव (शुभ लक्षणोंका शास्त्र), निधि (समयका शास्त्र), वाकोवाक्य (तर्क-शास्त्र), एकायन (नीति-विद्या), देवविद्या (शब्दोंकी उत्पत्तिकी विद्या), ब्रह्म-विद्या (ईश्वर-ज्ञान), भूत-विद्या (प्राणि-शास्त्र), क्षत्र-विद्या (शस्त्र चलाना), नक्षत्र-विद्या (ज्योतिष शास्त्र), सर्प-देवजन-विद्या (अदृष्ट होने और आकाश-गमनकी विद्या) यह सब मैं जानता हूँ।

इस घटनाका उल्लेख छान्दोग्य उपनिषद्के सप्तम पाठकमे है। जिस कालकी यह चमत्कारिक घटना है हमारे हिसाबसे तो उसे बहुत ही समय हुआ; परन्तु युरोपियन विद्वानोके मतसे भी यह अबसे कोई साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्वकी घटना है। इस घटनासे यह प्रमाणित होता है कि अबसे ३—४ हजार वर्ष पूर्व भारतकी शिक्षाकी दशा कैसी थी। गुरु लोगोंकी विद्याकी तौल करनेकी तो कोई तराज़ू है ही नहीं—केवल शिष्यकी योग्यताका यह अपूर्व उदाहरण है, जिसे संसार चकित दृष्टिसे और हम गर्वकी दृष्टिसे प्रलय तक देखते रहेंगे।

अब लगभग उसी कालकी शासन-व्यवस्था और समाज-संगठनका एक उदाहरण सुनिये जो निस्सन्देह अपूर्व है।

केकय देशके राजा अश्वपतिने एक यज्ञ किया था। उसमे ऋषि शाल, मत्ययज्ञ, इन्द्रद्युम्न, जनकुण्डिल आदि ऋषि ऋत्विग् बनाये गये थे। उद्दालक, आरुणी उस कालमें उसके राज्यमें हो कर गुजरे। राजाने यह समाचार सुना तो वह दौड कर ऋषिके पास गया और बोला—

भगवन्! मेरे राज्यमें न चोर है, न कायर है और न शराबी है। न कोई ऐसा है जो नित्य अग्निहोत्र न करता हो। न कोई मूर्ख है, न व्यभिचारी, न व्यभिचारिणी है। फिर आप क्यों नहीं मेरे राज्यमे वास करते हैं? इस यज्ञमे आप भी ऋत्विक् बनिये और मैं जितना अन्य ऋषियोंका पूजा-सत्कार करूँगा उतना आपका भी करूँगा। कृपा कर मेरे नगरमे वसिये।"

यह कथा शतपथ ब्राह्मण (१०।६।१।१) में लिखी है और छान्दोग्य उपनिषद्में (५।२) भी है।

यह भारतके उस कालकी सुशासन व्यवस्थाका उदाहरण है जिसका आज तक इतिहास ही नहीं बना है और जिस कालकी कल्पना उन विदेशी विद्वानोंसे नहीं हो सकती जो अबसे २००० वर्ष पूर्व जंगली पशुके समान थे। वे इस कालको अबसे ४००० वर्ष पुराना बताते हैं, पर वास्तवमें यह भारतका बहुत पुराना अतीत है। हमारे हिसावसे इस कालको लाखो वर्ष बीत गये हैं। पर आज क्या कोई राजा ऐसे शब्द कह सकता है? राज्याभिषेकके समय पुरोहित जिन शब्दोसे राजाको उपदेश देते थे जरा उनकी गम्भीरता सुनिये—

" वह ईश्वर जो जगत्का राज्य करता है, तुम्हें अपनी प्रजाका राज्य करनेकी शक्ति दे। वह अग्नि जो गृहस्थोसे पूजी जाती है, तुम्हें गृहस्थो पर प्रभुत्व दे। वृक्षोंका स्वामी सोम तुम्हे वनों पर प्रभुत्व दे। वाणीका देवता बृहस्पति तुम्हें बोलनेमे प्रभुत्व दे। देवताओंमे श्रेष्ठ इन्द्र तुम्हें सब प्रभुत्व दे। जीवोंका पालक रुद्र तुम्हें जीवो पर प्रभुत्व दे। मित्र जो कि सत्यका देवता है, तुम्हें सत्यतामें अति श्रेष्ठ बनावे। वरुण जो पुण्यकार्योंका रक्षक है, तुम्हें पुण्यके कार्योंमें अति श्रेष्ठ बनावे।"

इसके आगे चल कर लिखा है—" यदि तुम शासक हुआ चाहते हो तो आजसे समर्थों और असमर्थों पर बराबर न्याय करो। प्रजा पर निरन्तर हित करनेका दृढ विचार रक्खो और सब आपत्तियोंसे देशकी रक्षा करो।"

ये शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्रोंके अर्थ हैं जिसके कालका कोई प्रामाणिक माप नहीं है और जिससे बढ कर आजकी नवीन सभ्यतामें राजाके लिये उपदेश हो ही नहीं सकता । इसी शुक्ल यजुर्वेदके एक मन्त्रमे कुछ व्यवसाइयोंकी सूची है, उसमे—

" नाचनेवाले, वक्ता, सभासद, रथ बनानेवाले, बढई, कुम्हार, जौहरी, किसान, तीर बनानेवाले, धनुष बनानेवाले, बौने, कुबड़े, अन्धे और बहरोंके खास वैद्य, ज्योतिषी, हाथी-घोड़े और पशु पालनेवाले, नौकर, द्वारपाल, रसोइये, लकड़हारे, चित्रकार, नाम खोदनेवाले, धोबी, रँगरेज, नाई, अनेक स्वभावके मनुष्यो और स्त्रियोंके नाम, चमार, मछुए, व्याध, सुनार, व्यापारी, कई तरहके रोगी, नकली बाल बनानेवाले, कवि, गवैये—आदि आये हैं । "

जिस कालमें और जिस समाजमें इतने प्रकारके व्यवसाई बसते हैं वह राजनैतिक और सभ्यताकी दृष्टिसे कभी हीन और असभ्य नहीं कहा जा सकता । वरन् इस सूचीके आधार पर यदि हम उस कालके समाजको उन्नत कहें तो क्या झूठ होगा ?

अब समाजकी सुखी अवस्थाका एक उदाहरण लीजिए । एक अश्वमेधमें पुरोहित कहता है—" हमारे राज्यमें ब्राह्मण धर्मसे रहें । हमारे योद्धा शस्त्रोंके ज्ञाता और बलवान् हो । हमारी गौएँ दुधार हों । हमारे बैल बोझा ढोवें । हमारे घोडे तेज हो । हमारी स्त्रियाँ अपने अपने घरोंकी रक्षा करें । हमारे योद्धा युद्धमें विजयी हो । हमारे युवा रहन-सहनमे सभ्य हो । बादल प्रत्येक देशमें वृष्टि करें । हमारे अन्नके खेत हरे-भरे रहें । हमारे मनोरथ सिद्ध हो और हम सुखसे रहें ।

(शुक्ल यजुर्वेद २२।२२)

ऐतरेय ब्राह्मण (८।२२) में लिखा है कि " अत्रिके पुत्रने १० हजार हाथी और १० हजार दासियोंको दान किया था जो गलेमे आभूषणोंसे अच्छी तरह सज्जित थीं और सब दिशाओसे लाई गई थीं ।

उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थोंके देखनेसे हमे इतनी बातोंका पता लगा है—

सामाजिक और व्यक्तिगत सूक्ष्म नियम बन गये थे । राजाओंकी सभा विद्याका केन्द्र थी । उसमे सब जाति और देशके विद्वान् बुलाये जाते थे । और उनका आदर-सम्मान होता था । विद्वान् अधिकारी लोग न्याय करते थे । और जीवनके सब काम नियमके अनुसार किये जाते थे । नगर मजबूत शहरपनाहो और घर मजबूत दीवारोंसे घिरे रहते थे । और प्रत्येकने न्यायाधीश, नगर-रक्षक

और दण्ड देनेवाले रहते थे। खेतीकी उन्नति की जाती थी और राज्याधिकारी लोगोंका काम कर उगाहने और किसानोंके हितकी ओर देखनेका था।

विदेहो, काशियों और कुरु-पॉचालोंकी, सभ्य और विद्वान् राजाओंकी सभाएँ उस समयमें विद्याकी मुख्य केन्द्र थीं। ऐसी सभाओमें यज्ञ करने और विद्याकी उन्नति करनेके लिये विद्वान् लोग रक्खे जाते थे। खास खास अवसरों पर दूर दूरके विद्वान् एकत्र होकर शास्त्रार्थ करते थे। ये शास्त्रार्थ व्यर्थ वकवाद न होते थे, वरन् गूढ़ विषयोंके निर्णयार्थ होते थे,—जैसे मनुष्यका मन, मरनेके पीछे आत्माका उद्देश्य स्थान, आनेवाली दुनिया, देवता, पितृ और भिन्न भिन्न जीवोंके विषयमें। और उस सर्वव्यापी ईश्वरके विषयमे जो अव वस्तुओंमें है।

यही सभाएँ केवल विद्याका केन्द्र न थीं। विद्याध्ययनके लिये 'परिषद्' होते थे जिन्हें हम विद्यालय कह सकते हैं। जिनमें ब्रह्मचारी वालपनसे पूर्ण यौवन काल तक विद्या सीखते थे। वृहदारण्यक उपनिषद् (६।२) में इसी प्रकारसे लिखा है कि स्वकेतु विद्या सीखनेके लिये पॉचालोकी परिषद्में गया था। प्रोफेसर मैक्स-मूलरने अपने संस्कृत साहित्यके इतिहासमे ऐसे वाक्य उद्धृत किये हैं जिससे जान पडता है परिपद्मे २१ ब्राह्मण होने चाहिए जो दर्शन, वेदान्त और वेदोंके पूर्ण ज्ञाता हों। पाराशरका वचन है कि किसी गॉवके चार या तीन योग्य वेदज्ञ विद्वान् जो होमाग्नि रखते हो, परिषद् वना सकते हैं।

इन परिषदोके सिवा अकेले एक एक शिक्षक भी अपनी अपनी पाठशाला वना लेते थे। जहॉ भिन्न भिन्न भागोके ब्रह्मचारी इकट्ठे हो जाते थे जो उपनयन करा कर स्नातक होने तक गुरु-सेवामे रहते और पीछे गुरुको समुचित गुरु दक्षिणा देकर स्नातक होकर अपने घर जाते थे।

स्नातक होकर जव ये ब्रह्मचारी गृहस्थ वनते थे तव गृहस्थीके धर्म पालनको इन्हें मजवूर होना पडता था। विवाहके वाद ही ये धर्म आरम्भ होते थे। गृहस्थ-धर्म इस प्रकारके थे—

"सत्य वोलो। अपना कर्तव्य करो। वेदोंका पढना मत भूलो। हितकारी वातोंकी उपेक्षा मत करो। पढ़ाईमें आलस्य मत करो। वेदके पढने-पढानेमें आलस्य मत करो। देवता और पितरोंके कामोंको मत भूलो। अपने माता-पिता

और गुरुको देव-तुल्य जानो और मानो । निष्कलंक काम करो । पूर्वजोंके उत्तम ही कामोंका अनुकरण करो, निकृष्टोंका नहीं ।"

(तैत्तिरीय उपनिषद् १-२)

ये उदाहरण इतिहाससे अगम्य अत्यन्त प्राचीन कालके सामाजिक, राजनैतिक और शिक्षा-सम्बन्धी दशाओं पर प्रकाश डालनेको यथेष्ट हैं । इन्हें देख कर कोई समझदार इस काल और जातिको अत्यन्त उन्नत माननेसे इन्कार नहीं कर सकता ।

अयोध्या, मिथला, काम्पिल्य, हस्तिनापुर जो प्राचीन प्रख्यात राजधानियाँ थीं, पाश्चात्य विद्वान् जिन्हें अबसे ३००० वर्ष पूर्व बताते हैं उन नगरों और नागरिकोंके जीवनका चमत्कारिक वर्णन सुनिये ।

" बडे बडे नगर चारों ओरसे परिखाओंसे वेष्टित होते थे । उनके बीचों बीचमें राज-प्रासाद और नागरिकोंके गगनभेदी वास-भवन थे । कलशोंसे इन भवनोंकी शोभा और भी बढ़ी हुई थी । सडके साफ और चौड़ी थीं । पुष्प-वाटिकाएँ और उपवन उपकण्ठोंको सुशोभित करते थे । राज-दर्बार सामन्तो और विद्वानोंसे भरा रहता था । वहाँ कोलाहल-युक्त सर्दार, असभ्य सिपाही, पवित्र ऋषि और पुरोहित आते जाते दृष्टि पडते थे । सोना, चाँदी, जवाहरात, गाडी, घोड़ा, खच्चर, दास और अन्न यही उस समयके नागरिकोंकी सम्पत्ति थी । वे सब यज्ञ करते थे । अतिथियोंके सत्कारके लिये प्रख्यात थे । देशका कानून उनको मान्य था । बाजारोंमे व्यवसाई और कारीगर भरे रहते थे । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके बालक छोटी आयुसे ही गुरु-भवनमें भेज दिये जाते थे। वहाँ वे एक साथ एक ही पाठ पढते, एक ही तरह रहते और एक ही धर्मकी शिक्षा पाते थे । फिर युवा हो कर घर आते और विवाह कर गृहस्थोकी नाईं रहते थे । पुरोहित और योद्धा लोग भी सर्व-साधारणके एक अग थे । सर्व-साधारणके साथ ही वे विवाह और खान-पानको बे-रोक सम्बन्ध करते थे । कारीगर आदि लोग पीढी दर-पीढी अपने व्यवसायमें लगे रहते थे । कृषक अपने पशु और खेतीकी सामग्री लिये गावोमें रहते थे । और अनेक झगडोंका निपटारा गाँवकी पंचायत द्वारा होता था ।"

स्त्रियां पर्दा नहीं करती थी, समाजमें वे बड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखी जाती थीं, योद्धा लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे । वे पैत्रिक सम्पत्तिकी मालिक हो सकती

थीं, यज्ञ और धर्मकार्य उनके विना सम्पादन नहीं हो सकते थे। वड़े वड़े अवसरों पर वे वड़ी वड़ी सभाओंमें जाती थीं। वहुतसी उस समयके शास्त्र और विद्यामें योग्य थीं। राजनीति और शासनमे उनका उचित अधिकार था।

क्या यह सभ्यता और समाज-सगठन हमारे लिये गौरवके योग्य नहीं है? अव भी क्या हम अपने अतीतको तुच्छ कह कर पुकार सकते हैं। अव उस कालकी राजनैतिक योग्यताका हाल सुनिये। बृहदारण्यक १।४।१५ में '**कानून**' की जो व्याख्या की गई है वह इस प्रकार है—

"—कानून क्षत्रका क्षत्र (वल) है। इस लिये कानूनसे वढ़कर कोई चीज नहीं है। तदुपरान्त राजाकी सहायताकी तरह कानूनकी सहायतासे दुर्वल मनुष्य भी प्रवल मनुष्य पर शासन कर सकता है। इस प्रकारसे कानून वही वात है जिसे कि सत्य कहते हैं। जव कोई मनुष्य सत्य वात कहता है तो लोग कहते हैं कि वह कानून कहता है। और यदि वह कानून कहता है तो लोग कहते हैं वह वही कहता है जो कि सत्य है। इस प्रकार सत्य और कानून दोनों एक हैं।"

मैं समझता हूँ कि ससार भरके कानून जाननेवाले कानूनकी इससे वढ कर व्याख्या नहीं कर सकते।

उपर्युक्त सव उदाहरण हमने उन विषयोंके दिये हैं जिनके विषयमे आज दिन पाश्चात्य सभ्यता घमण्डसे यह कहती है कि हमसे प्रथम ऐसा कोई न था और हम ही पृथ्वीको सभ्यता और सामाजिकता सिखानेवाले हैं। अभी अतीत भारतकी एक ऐसी योग्यताका वर्णन रह गया है जिसकी स्पर्धा करने योग्य आज दिन तक पाश्चात्य सभ्यता नहीं हो सकी है और वह है—"अध्यात्मवाद।"

यह वह विषय है जो प्रत्यक्षसे परे है। इन्द्रियोंसे अग्राह्य है—विचार कल्पनासे दूर है और अनुभवसे अगोचर है। इसमे ईश्वर, जीव, प्रकृति, उनके विकार, सृष्टिकी उत्पत्ति, 'पुनर्जन्म,' और 'मुक्तिके' विषय हैं। इन विषयोंमें पूर्वमें तो कोई भारतसे प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य था ही नहीं। आज भी नहीं है। ये गूढ़ तत्त्व उपनिषद् और दर्शन-शास्त्रोंमे वड़े विस्तार और योग्यतासे वर्णन किये हैं। यहाँ मनोरंजनके लिये बृहदारण्यक उपनिषद्के एक अध्यायके एक अशको जो कि पवित्रता और कल्पनाकी सुन्दर रचना है, उद्धृत करते हैं—

नचिकेतस्‌के पिताने उसे मृत्युको सौंप दिया। और उसने यम वैवस्वत्‌के निवासमें जाकर ३ वर माँगे। उनमे अन्तिम यह था।

" जब मनुष्य मर जाता है तो यह शंका रहती है, कोई कहता है—'वह है' कोई कहता है—' वह नहीं है।' यह मैं तेरे ही मुखसे जानना चाहता हूँ। यही मेरा तीसरा वर है। "

परन्तु मृत्यु अपना भेद नहीं प्रकट करना चाहता था। इस लिये उसने नचिकेतस्‌से दूसरे २ वर माँगनेके लिये कहा—" ऐसे पुत्रों और पौत्रोंको माँग जिनकी आयु सौ सौ वर्षकी हो। गाय, हाथी, घोड़े और सोना माँग, पृथ्वी पर बहुत काल तक निवास माँग और जितने वर्ष तक तेरी इच्छा हो जीवित रह। "

" यदि तू इसके समान और वरको सोच सकता हो तो धनी और दीर्घजीवी होनेका वर माँग। हे नचिकेतस्! सारी प्रथ्वीका राजा होना माँग। मैं तेरी सब इच्छाओको पूरी कर सकता हूँ। "

" मृत्युलोकमे जिन जिन कामनाओका पूरा होना कठिन है उनमेंसे जो तेरी इच्छा हो माँग। ये सुन्दर कुमारियाँ जो कि अपने रथ और वाद्य लिये सुसज्जिता हैं, निस्सन्देह मनुष्योंको प्राप्त नहीं होतीं। मैं इनको तुझे देता हूँ। इनकी सेवाका सुख माँग। परन्तु मुझसे मरनेके विषयका भेद मत पूछ। "

नचिकेतस्‌ने इन अलभ्य लालचोंको तृणवत् समझ कर कहा—

" हे मृत्यु! ये सब वस्तुएँ केवल कल तक टिकेंगी, क्योंकि ये सब इन्द्रियोंके बलको नाश कर देती हैं। समस्त जीवन भी थोडा है। तू अपनी ये सब सम्पदा अपने पास रख और मुझे वही भेद बता। " दृढव्रती धर्मात्मा जिज्ञासुके इतना आग्रह करने पर मृत्युने अन्तको अपना बडा भेद प्रकट कर दिया। यह वही भेद है जो कि उपनिषदोंका सिद्धान्त है और हिन्दू-जातिका अलौकिक रत्न है।

" वह बुद्धिमान् जो अपनी आत्माका ध्यान करके उस आदि ब्रह्मको जान लेता है जिसका दर्शन कठिन है, जिसने अन्धकारमें प्रवेश किया है जो गुफामें छिपा है, जो गम्भीर गर्तमे रहता है, वह निस्सन्देह दुःख और सुखको बहुत दूर छोड देता है। "

" एक नाशवान् जीव जिसने यह सुना और माना है, जिसने उसमे सब गुणोंको पृथक् कर दिया है और जो इस प्रकार उस सूक्ष्म आत्मा तक पहुँचा है,

प्रसन्न होता है कि उसने उसे पा लिया, जो आनन्दका कारण है। हे नचिकेतस्, मे विश्वास करता हूँ ब्रह्मका स्थान खुला है। "

ऐसा कौन है जो आजकल भी पुरातन कालके इन शुद्ध प्रश्नों और पवित्र विचारोंको पढ कर अपने हृदयमें नये भावोंका उदय न अनुभव करता हो, अपनी ऑखोंके सामने नया प्रकाश न पाता हो। अज्ञात भविष्यका रहस्य मनुष्यकी बुद्धि या विद्यासे कभी प्रकट न होगा। किन्तु प्रत्येक देशहितैपी हिन्दू और विचारवान् पुरुषके लिये इस रहस्यको जाननेके लिये जो प्रारम्भमें पवित्र उत्सुक और शुद्ध दार्शनिक भाव उद्यत किये गये थे उनमें सदा अनुराग वर्तमान रहेगा।

प्रसिद्ध जर्मनी-लेखक और दार्शनिक शोपनहारने ठीक लिखा है—

"प्रत्येक पदसे गहरे, नवीन और उच्च विचार उत्पन्न होते हैं। और सवमें उत्कृष्ट पवित्र और सच्चे भाव वर्तमान हैं। भारतीय वायु-मण्डल हमें घेरे हुए है। और अनरूप आत्माओंके नवीन विचार भी हमारे चारों ओर हैं। समस्त ससारमे मूल पदार्थोंको छोड कर किसी अन्य विद्याका अध्ययन ऐसा लाभकारी और हृदयको उच्च वनानेवाला नहीं है जैसा कि उपनिषदोंका। इसने मेरे जीवनको शान्ति दी है। और यह मृत्युके समय भी मुझे शान्ति देगा।"

मध्यकाल।

मैं मध्यकाल उसे कहता हूँ जिसका प्रामाणिक इतिहास-सूत्र वहुत कुछ प्राप्त हो सका है। यह काल लगभग अवसे २॥ हजार वर्प पूर्वसे शुरू होता है। इतिहासमे इसे वुद्धकाल कह कर परिचय दिया है।

सन् ३१७ ईस्वीके लगभग यूनानके राजा सिल्यूकसका राजदूत मेगस्थनीज भारतमें आया था और वहुत दिन तक सम्राट् चन्द्रगुप्तके दर्वारमें रहा। उसने उस कालके वैभवका वहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है। वह कहता है—

"सारा उत्तर भारत चन्द्रगुप्तके साम्राज्यमें है। उसकी राजधानी पाटलीपुत्र है जो एक भरा-पुरा नगर है और जो नौ मील लम्बा और दो मील चौडा है। यह नगर काठकी भीमकाय दीवारोंसे घिरा है जिसमे तीर चलानेको छेद वने हुए हैं। उसके वाहर चारों ओर खाई है।"

"यहाँके लोग भारत भरमें वल और यशमे प्रवल हैं। सम्राट्की स्थायी सेनामें ६ लाख पैदल, ३० हजार सवार और ९ हजार हाथी हैं।"

इनके युद्धका वर्णन एरियन इस भाँति देता है।—

"पैदल सिपाही अपनी ऊँचाईके बराबर धनुष धारण करते हैं। इसको वे भूमि पर टेक कर और उसे अपने बायें पैरसे दबा कर, कमानकी डोरीको पीछेकी ओर खींच कर तीर छोडते हैं। उनकी तीरकी लम्बाई लगभग ३ गजके होती है। ढाल, कवच या उससे भी बढ़कर कोई ऐसी रक्षाकी वस्तु नहीं है जो इन तीरन्दाजोके निशानेसे बच सके। वे अपने बाये हाथमें बैलके चमड़ेकी ढाल लिये रहते हैं जो धारण करनेवाले मनुष्यके बराबर लम्बी होती है। कोई सिपाही धनुषके बदले एक भाला लिये रहते है और एक तलवार भी लिये रहते हैं, जिसकी धार चौडी होती है। वह प्राय ३ हाथ लम्बी होती है। युद्धके समय वे अपनी रक्षाके लिये दोनों हाथसे तलवार चलाते है । घुड़सवारोंके पास दो भाले रहते हैं और उनकी ढाल कुछ छोटी होती है। वे लोग घोडों पर जीन नहीं कसते और न यूनानियोंकी भाँति लगाम लगाते हैं। वे घोडेके मुहके चारो ओर बैलके चमडेको बाँध देते हैं जिसके नीचे एक नोकीला लोहे या पीतलका काँटा लगा होता है। धनी लोग हाथीदाँतका काँटा लगाते हैं।

वे खेती और किसानीको पवित्र और अभग जानते हैं। वे न तो अपने शत्रुकी भूमिमें आग लगाते हैं, न भूमिको उजाडते हैं। जो शस्त्र रख देते हैं या कल खोल कर या हाथ जोड कर दया चाहते है, उन्हें वे अभय देते हैं। वे भयभीत, नगेमे भागते हुए, पागल, स्त्री, बच्चे, बूढे और ब्राह्मणोंको नहीं मारते। मृत सिपाहियोंकी स्त्रियोंका निर्वाह करते हैं।" अब सर्व-साधारणका जीवन सुनिये।—

मेगस्थनीज कहता है—

"वे बड़े सुखसे रहते हैं। सीधे-साधे, मितव्ययी है। उनका मुख्य आहार चावल है। वे यज्ञ करते हैं कभी शराब नहीं पीते। न्यायालयमें बहुत ही कम उनका काम पडता है। गिरवी रखने या अमानतके विषयमे उनका कभी कोई दावा नहीं होता न उनको मुहर और गवाहोंकी आवश्यकता होती है। वे विश्वास पर ही अमानत रख देते हैं। वे अपने घर और सम्पत्तिको अरक्षित ही छोड कर कहीं चले जाते हैं। वे सत्यता और धर्मका आदर करते है।"

आगे वह खेतीका वर्णन करता है—' बहुतसे बडे बड़े सुन्दर और उपजाऊ मैदान है। जिनमें बहुतसी नदियाँ बहती है । भूमिका अधिक भाग सुप्रबन्धसे सींचा जाता है, इस कारण वर्षमें दो फसल होती है । उसमें सब भाँतिके पशु—

चौपाये, भिन्न भिन्न प्रकारकी चिडियॉ—वहुतायतसे हैं । इसके सिवा बडे बड़े हाथी भी वहुत हैं । वाजरा, गेहूँ, कई तरहकी दाल और जानवरोंके खानेकी वहुतसी चीजे उगती हैं जिनका ब्यौरा लिखना कठिन है । यहॉ कभी अकाल नहीं हुआ, न मँहगी आई है । इसका कारण यह है कि वर्षमे दो वार वृष्टि होती है । एक वार जाडोंमें गेहूँ बोनेके समय जैसा अन्य देशोंमें होता है । और दूसरे गर्मीमें जब कि चावल, बाजरा और तिल बोनेका समय है । वे सदा ही फसल काटते है । और एक फसल यदि खराव भी हो जाय तो उन्हें सदा यह निश्चय रहता है कि दूसरी अच्छी होगी । इसके सिवा स्वयं उत्पन्न होनेवाले वृक्षोंके फल और खाने योग्य कन्द जो कि सब जगहोंमें वडे स्वादिष्ट होते है, वहुतायतसे हैं । ”

आज किसी हिन्दुस्तानीके लिये यह असम्भव है कि वह अवसे २॥ हजार वर्ष पहलेकी अपने देशकी इस भाग्यवती दशाका वृत्तान्त जो इस विदेशीने पक्षपातसे रहित हो कर लिखा है, विना घमण्डके पढे । यह विचारना असम्भव है कि ये सव फल राज्यकी सावधानी और सुप्रवन्धके विना ही जान और मालकी उत्तम रक्षाके विना और उचित और उत्तम कानूनकी सहायताके विना हो गये हो ।

ईसासे वहुत प्रथमसे ही भारतकी कारीगरीकी वस्तुओंसे पश्चिमी ऐशिया और इजिप्टके वाजार भरे रहते थे । और फिनिशियाके व्यापारी भारतके वाजारमें रुपये उडेलते फिरते थे । मेगस्थनीज कहता है—

“ ये लोग शिल्पमें वड़े चतुर है जैसी कि स्वच्छ वायुमें रहनेवाले और वहुत ही उत्तम जल पीनेवाले लोगोंसे आशा की जा सकती है । भूमिमे सोना, चॉदी, ताम्वा, लोहा—टीन—तथा अन्य धातुओंकी खाने है, जिनसे वहुतसी कामकी चीजें, गहने, हथियार और तरह तरहके औजार वनते हैं ।

स्त्रियोंकी पोशाककी वावत मेगस्थनीज लिखता है —“ उनकी सीधी-सादी चाल पर ध्यान देते हुए उनको आभूषण और गहने वहुत प्रिय हैं । उनके कपड़ोंमें सुनहला काम होता है । उनमे रत्न जडे रहते हैं । वे उत्कृष्ट मलमलके फूलदार कामके भी कपडे पहनती है । उनके पीछे नौकर लोग छाता लगा कर चलते है । क्योंकि सुन्दरता पर उनका वहुत ध्यान रहता है और अपनी सुन्दरता वढानेके लिये वे सव प्रकारके उपाय करती हैं ।” अव व्यवहार, उत्सवकी धूमधामका हाल सुनिये—

“ त्योहारोंमे जो उनके यात्रा-प्रसंग निकलते हैं उनमे सोने और चॉदीके आभूषणोंसे सज्जित वहुतसे हाथियोंकी कतार होती है । वहुतसी गाड़ियॉ होती है ।

उनमे चार चार घोड़े वा कई जोडी बैल जुते रहते हैं । उसके उपरान्त पूरी पोशाक-में बहुतसे नौकर चाकर निकलते हैं जिनके हाथमें सोनेके वड़े वड़े वर्तन, कटोरे, चौकी, तामजाम, ताम्वेके पीनेके प्याले और ऐसे वर्तन जिनमेंसे बहुतोंमे पन्ने, फीरोजे, लाल इत्यादि रत्न जडे रहते हैं । सुनहर कामदार वस्त्र, जंगली जानवर—यथा भैंसे, चीते और पालतू शेर—और अनेक प्रकारके परवाले और मधुर गीत गानेवाले पक्षी रहते हैं।"

अव एक धनी व्यापारीका हाल सुनिये जो कि मसीहकी लगभग चौथी शताब्दिमें था और जिसका जिक्र जैनग्रन्थोमे पाया गया है। इस सेठका नाम आनन्द था। यह जैन था। पर यति नहीं था, केवल जैन उपासक था। अत एव महाव्रती न हो कर केवल उसने पाँच अणुव्रतोको स्वीकार किया था।

उसने सव प्राणियोसे कुव्यवहार, असत्य भाषण और चोरीका मन-वचन कर्मसे त्याग किया था, उसकी स्त्रीका नाम शिवनन्दा था और वह महा एकपत्नी-व्रती था। उसने अपने धनमे ४ करोड स्वर्ण-मुद्राको सुरक्षित रख छोडा था, ४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राको व्याज पर लगाया था। ४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राकी उसने भू-सम्पत्ति खरीद की थी और ४ करोड़ स्वर्ण-मुद्राको व्यापारमें चालू लगाया था। इसी प्रकार उसने पशुओंके चार झुण्ड जिसमे प्रत्येक झुण्डमे १० हजार पशु थे, वनाये थे। उसके ५०० हल थे और प्रत्येक हलके लिये ५०० निवर्तन (?) भूमि थी। विदेशी व्यापारके लिये ५०० छकडे और अपने देशके व्यापारक लिये ५००छकड़े नियत थे। इनके सिवा—अपने देश और विदेशके लिये—४ चार जहाज पृथक् तैयार रहते थे।

उसने अपने स्नानके लिये एक लाल रगका अँगोछा, एक वहु मूल्य हरी रगकी दतौन, एक प्रकारका फल, आमलेका दूधके समान गूदा, लगानेके लिये दो प्रकारका तेल, एक प्रकारका सुगान्धित उवटन, आठ घडा जल, रूईका एक जोटा कपड़ा (धोती), मुसव्वर,केसर-चन्दन और मिश्रित सुगन्धित धूप, सफेद कमलका फूल, कानके आभूषण (कुण्डल) और अपने नामकी खुदी अँगूठी—ये सामान रक्खे थे।

भोजनमें वह चावल-दालके रसेदार पदार्थ, घीमें भुने हुए और चीनी मिलाये हुए खजले खाता था। इसके सिवा अनेक जातके चावल, मूँग, उर्दकी दाल, शरद् ऋतुमें गायके दूध और घीसे वनी अनेक मिठाइयाँ चटनियाँ आदि और पीनेको वर्षाका जल और अन्तमे ५ पानका वीडा वह खाता था।

चौथी शताब्दीके इस सेठके वैभव, सम्पत्ति, व्यापार और भोग-विलास, पवित्र जीवनका यह वर्णन किस भारतीयके हृदयमें आत्मवोध नहीं उत्पन्न करेगा ?

सारे देशमे बड़ी बड़ी सड़कें बनवाई गई थीं। दूरस्थित प्रदेशोंको साम्राज्यकी राजधानी पाटलीपुत्रसे मिला दिया गया था। पाटलीपुत्रसे निकल कर एक बहुत प्रशस्त राजमार्ग सिन्धूनद तक चला गया था। सड़कें कई प्रकारकी होती थीं। जिनसे जैसा काम लिया जाता था उनकी वैसी ही प्रतिष्ठा थी। जो सड़कें दक्षिणको गई थीं उनका विशेष आदर था। क्योंकि दक्षिणमें ही सुवर्ण, रौप्य तथा हीरेकी खानें थीं। वैसी भी सड़कें थीं जिनका उपयोग देश रक्षाके कामोंमें होता था। सड़कोंका नामकरण दो प्रकारसे हुआ करता था—(१) जो सड़के जहाँ जाकर खतम होती थीं, उसी स्थानके अनुसार नाम पड़ता था, जैसे स्मशान-पथ। (२) जिस सड़क पर जैसे पुरुष वा जैसे पशु (भार-वाहक) चलते थे उसका वैसा ही नाम पड़ता था, जैसे राजमार्ग, खरोष्ट्र-पथ इत्यादि।

राजमार्ग चार दण्ड (३२ फि०) चौडा होता था। जब राजा उस परसे निकलते थे तो दोनों किनारे पल्टनकी कतार लगी होती थी। जिस सडक परसे रथ निकलता था उसका नाम रथ्या था। वह चार दण्ड चौड़ी होती थी। छोटी छोटी गाड़ियोंके लिये रथ-पथ था जो प्रायः दस फिट (५ अरतनी) चौड़ा होता था। उसी प्रकार पशु-पथ, महा पशु-पथ, शूद्र पशु-पथ भी होता था जो चार अरतनी चौड़ा होता था। ऊँट और गधोके लिये खरोष्ट्र-पथ था। बैलगाड़ियाँ जहाँसे चलती थीं उसका नाम चक्र-पथ था। उसी प्रकार पैदल मनुष्योंके लिये पाद-पथ भी था। शहरोको जानेवाला पथ राष्ट्र-पथ (३२ फिट) कहलाता था। उसी तरह मैदानमें खतम होनेवाली सडकका नाम विवीत-पथ, किलोंको जानेवाली सड़क द्रोणमुख कहलाती थी। उसी प्रकार सयोयोनीय (खेतोंमे जानेवाली), स्मशान-पथ, व्यूह-पथ, हस्तिक्षेत्र-पथ, वन-पथ भी होते थे। किलोंके अन्दर सचर्य्या-संचार प्रतोली तथा देव-पथ होता था।

राजाकी आज्ञा थी कि सड़कों पर मुसाफिरों वा गाडियोंकी रोक-टोक न होने पावे। यदि कोई जान-बूझ कर सड़क बन्द कर रक्खे या सड़कों पर गढ़े खोदे वा अन्य किसी प्रकारसे मुसाफिरोंको असुविधा पहुँचावे तो उसको सजा होती थी। चाणक्यने विवीत पथका हिंसावाले प्रकरणमें वर्णन किया है। वैसे अपराधियोंको बारह पणसे लेकर हजार पण तकका दण्ड होता था। सड़-

कोंकी मरम्मत करनेवाले कुलियोको सरकारी टेक्स नहीं देना पड़ता था। दस दस स्टेडिया (*Stadia*) पर दूरी सूचक चिन्ह गड़े होते थे। सड़कों पर छाया, कूप, अतिथिशाला (सराय) का भी प्रवन्ध था।

राजा-प्रजा, अमीर-गरीबके काम आनेवाली बहुत प्रकारकी गाड़ियाँ वनती थीं। सरकारी रथ, रथाध्यक्ष नामक अफसरकी निरीक्षणतामें वनते थे। रथ बहुत प्रकारके होते थे। जैसे—देवरथ, पुष्परथ, साग्रामिक, (लड़ाईके लिये), पारियात्रिक (आने जानेके लिये), पर-पुराभिवायिक (दुश्मनोंके शहरों पर चढाई करनेके लिये)। वैल, घोडे, ऊँटसे चलनेवाली छोटी छोटी गाड़ियाँ भी होती थीं, जो गोलिंगम, शकट इत्यादिके नामसे पुकारी जाती थीं। इनके अतिरिक्त शिविका (पालकी), पीठिकाका भी प्रचार था। राजा जिस रथ तथा जिस घोडे पर सवार होता था उस पर विशेष ध्यान दिया जाता था। राजाके रथका चक्रधर (हाँकनेवाला) तथा उसके घोडोंका सईस विश्वास-पात्र तथा वंश-परम्परागत भृत्य होता था।

थल-पथकी तरह जल-पथका भी उपयोग किया जाता था, परन्तु कौटिल्य थल-पथको ही विशेषता देते थे, क्योंकि थल-पथमें जोखिम कम थी। वडी छोटी नावो तथा जल-पथका प्रवन्ध एक पृथक् विभाग द्वारा हुआ करता था। नदियोंके अतिरिक्त नहरें भी थीं जिन्हें कुल्या कहते थे। समुद्र तथा महासमुद्रमे जानेवाली नावे भी वनती थीं। व्योपारी उन नावो पर चढ चढ़ देश-विदेश जा भारतका व्यापार वढाते थे। कूल-पथ (समुद्रके किनारे किनारे) तथा संयान-पथ (महासमुद्रके रास्ते) दोनोंसे काम लिया जाता था। नाव वहुत प्रकारकी होती थी जैसे —

(१) सयात्व्य—जो महासमुद्रमें चलती थी।

(२) प्रवहण—जो समुद्रमें चलती थी।

(३) शख-मुक्ता-ग्राहिण—इनका काम समुद्रसे मूंगा, मोती, शख इत्यादि वस्तुओंको ऊपर करना था। यह कार्य राजाके अफसरोंके अधीन था—सर्वसाधारणका इस व्यापारमें कोई अधिकार नहीं था।

(४) महानाव—जो महानदियोंमें चलती थी।

(५) शाही वजड़ा—जिस पर राजा सवार होकर निकलता था।

(६) स्वतरणावि अर्थात् सरकारी तथा गैर-सरकारी घट्ही नाव—जिससे घाटे पर खेवा (तार-देय) लेकर मुसाफिर पार उतारे जाते थे।

(७) हिंस्रिका नाव—समुद्री डकैतीकी नावे। चाणक्यने लिखा है कि जहाँ पावो वहीं इनका नाश करो। नावों पर एक शासक (कप्तान), एक नियामक (पतवारवाला), हँसुआ-रस्सी रखनेवाला (दात्र-रश्मि-ग्राहका) तथा पानी उलीचनेवाले (उत्सेचका) नाविक भी होते थे।

नावाध्यक्ष (अँडमिरलके अधीन), खन्यध्यक्ष (समुद्रकी खानोंके अध्यक्ष) तथा पत्तनाध्यक्ष (बन्दरगाहोंके अध्यक्ष) भी रहते थे।

नहरो अथवा जलाशयो द्वारा खेतोंको पटानेकी प्रथा भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे चली आती है। चन्द्रगुप्तके समयमें नहरो वा जलाशयोंका जल बाँटनेके लिये एक पृथक् विभाग था। दूर दूरके प्रदेशोमें भी सिंचाईका अच्छा प्रबन्ध किया जाता था। जिसका प्रमाण गिरनार पर्वत परका लेख है। वहाँ खेतोंको पटानेके लिये ही बहुत व्ययसे सुदर्शन नामक जलाशय बनवाया गया था।

मौर्योंकी सेना बहुत बड़ी थी। महाभारतके समय उभय पक्षमें जितनी सेना जुटी थी उतनी सेना तो सब दिन मौर्योंके यहाँ साम्राज्यकी रक्षाको तत्पर रहती थी। इसका प्रबन्ध भी चन्द्रगुप्तने बडी उत्तमतासे किया था। तीस सरदारोका एक युद्ध-परिषत् (War office) था जो छः दलोंमें विभक्त था। चार विभागोके हाथ तो क्रमश पैदल, घुडसवार, हाथी और रथका प्रबन्ध था। पाँचवाँ लड़ाकू नाव तथा जल-सेनाका इन्तजाम करता था और छठा सेनाके खान-पान, रसद, गोला-बारुद, अस्त्र-शस्त्र, घोडे-गधे-खच्चर, नौकर-चाकर, सईस इत्यादि कम्सर्यटसे सम्बन्ध रखनेवाली बातोका प्रबन्ध करता था। अब तक हिन्दू राजा सेनाको चार दलोहीमें बाँटते थे। जलसेना तथा लड़ाकू नावकी ओर ध्यान नहीं देते थे और न लड़ाईकी सामग्रियोके लिये एक पृथक् विभाग ही रखते थे। इन अभावोको चन्द्रगुप्तने दूर किया। इसी उत्तम प्रबन्धके कारण चन्द्रगुप्तकी विजयिनी सेनाके सन्मुख समस्त उत्तर भारतको हार माननी पड़ी थी—यहाँ तक कि भुवन-विजयी सिकन्दरकी सेनाको भी सेल्यूकसके अधीन चन्द्रगुप्तके सन्मुख नीचा देखना पडा था।

मौर्य सम्राट्की प्यारी राजधानी पाटलीपुत्रके धन-वैभवका ठिकाना न था। रोम साम्राज्यमे रोमनगरकी जो प्रतिष्ठा थी वही प्रतिष्ठा मौर्योंकी राजधानीको प्राप्त थी। रोमकी नाँई पाटलीपुत्र भी समस्त सभ्य भारतका नगर बन रहा था। यहाँ देश-विदेशसे धनी व्यापारी आ बसते थे। इस विशाल नगरका प्रबन्ध तीस नागरिकोंके

एक मडलको दिया गया था। यह मंडल छ हल्कोमें विभक्त था जिनका कार्य पृथक् पृथक् था। शिल्प और शिल्पियोकी देख-रेख एक दलके अधीन थी। यही मजदूरीकी दर भी ठीक करता था। दूसरा दल विदेशी लोगोंकी खबर रखता था। इस विभागके अधीन बहुतसे गुप्त दूत थे। चाणक्यने लिखा है कि इन नागरिकोंको उचित है कि विश्वस्त भृत्यो द्वारा विदेशियोंके आचरण पर दृष्टि रक्खे। परदेशी जब एक जगहसे दूसरी जगह जाया चाहता था तब उसकी रक्षाके लिये रक्षकोका प्रबन्ध कर दिया जाता था। विदेशियोंके रहनेका स्थान तथा अन्य प्रकारके सुभीतोंका इन्तजाम होता था। किसी परदेशीके मर जाने पर उसकी सम्पत्ति उसके उत्तराधिकारियोको पहुँचा दी जाती थी। जन्म-मरणकी रिपोर्ट लिखनेके लिये एक पृथक् दल था। इससे कर बैठाने तथा शासन-कार्यमे सुगमता होती थी। चाणक्यने लिखा है कि नागरिकका धर्म है कि नगरमे आने तथा वहाँसे चले जानेवालोंकी सूची रक्खे और अधिवासियोंके नाम, धाम, व्यवसाय, आय, व्यय, धन, सम्पत्तिका पूरा विवरण लिखा करे।

एक और दूसरा दल बाजारकी खरीद-बिक्री पर ध्यान रखता था। उस दलकी यह आज्ञा थी कि व्यवहार राज द्वारा निश्चित दरसे, बे-खटकेसे हुआ करे। उद्योग-धन्धोंके निरीक्षण करनेको नागरिकोंका एक पृथक् दल था। माल बिकने पर राजाका जो शुल्क होता था वह एक छठे दल द्वारा वसूल किया जाता था। जो व्यक्ति राजाका शुल्क पचा जानेका यत्न करता था उसको बड़ी सजा होती थी।

यह तो हुई पाटलीपुत्रकी बात। सम्भव है कि उज्जैन, तक्षशिला, वैशाली इत्यादि बडे बड़े नगरोंमें भी यही प्रथा प्रचलित हो।

दूरस्थित प्रदेशोंका शासन राज-पुरुषों द्वारा होता था। इन पर दृष्टि रखनेको प्रतिवेदक (अखबार-नवीस) नियुक्त होते थे।

समाजकी साधारण अवस्था अच्छी थी। अमीर हाथी-घोड़े रखते थे और साधारण व्यक्ति बैलोंसे अपना काम निकालते थे।

अदालत—

न्यायालय दो प्रकारके थे—'धर्मस्थीय' तथा 'कण्टक-शोधन'। इन दोनोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके मुकदमे लिये जाते थे। धर्मस्थीय विचारालयोंमे तीन शास्त्रज्ञ (धर्मस्था) विचारक या तीन आमात्य बैठते थे। कटक-शोधन नामक विचारालयोमे भी तीन आमात्य वा 'प्रदेष्टार' बैठते थे—

आजकल जिस प्रकार " पबलिक-लॉ " और " प्राइवेट-लॉ " का प्रभेद माना जाता है मालूम होता है कि कुछ वैसा ही भेद उस समय भी था। यह उपर्युक्त दोनो विचारालयोकी व्यक्ति (Garisdiction)से स्पष्ट होता है। धर्मस्थीय श्रेणीके विचारालयोमे सर्व-साधारण प्रजाकी फर्याद सुनी जाती थी। इन अदालतोंको जुर्माना करनेका अधिकार था। परतु कण्टक-शोधन श्रेणीके न्यायालयोंमें शासक और शासितसे सम्बन्ध रखनेवाले मुकदमे होते थे। यहॉसे प्राणदण्ड तककी सजा मिल सकती थी। धर्मस्थीय श्रेणीके विचारालयोंमें निम्न लिखित विषय उपस्थित हो सकते थे —व्यवहार स्थापना (इकरार-नामा), पट्टासे सम्बन्ध रखनेवाला ऋणदान (कर्ज वसूल करना), वाक्य पारुष्यम् (मानहानि), सीमा, विवाद, वस्तु-विक्रय, विवाह, धर्म, दायविभाग और दायक्रम। उसी प्रकार कटंक-शोधन श्रेणीकी अदालतोमें निम्न लिखित विषय उपस्थित हो सकते थे —कारुक-रक्षणम् (कारीगरोंकी रक्षा), गूढाजीविना रक्षा (वदमाशोंको फतह करना), साधु वेषधारी भेदियों द्वारा अपराधियोंका पता लगाना, डकैतोंको पकडना, सरकारी महकमोके अफसरोको वशमे रखना (सर्वाधिकरण-रक्षणम्)—इत्यादि। इन विचारोके अतिरिक्त गावोंमें मण्डल (ग्रामिक) तथा वडे-वूढे (ग्राम-वृद्धाः) भी विचारकका काम किया करते थे। गॉवोंके छोटे मोटे मुकदमोका फैसला वही हो जाया करता था। सवसे वडी अदालतमें राजा, उसके मन्त्री और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण पंडित वैठते थे।

सग्रहण, द्रोणमुख, स्थानीय, तथा जनपद-सन्धियोंमें अदालते वैठा करती थीं।

कानून —व्यवहार, शास्त्राचार इन उपकरणोसे वना था, यथा—(१) धर्मशास्त्रके वचन, (२) व्यवहार (इकरार-नामासे सम्बन्ध रखनेवाला), (३) रस्म-रिवाज, (४) राज-शासन। मुकदमा दायर करते समय कई वातों पर ध्यान दिया जाता था। उनमेंसे ये विशेष उल्लेख योग्य हे —घटनाका समय तथा स्थान, वादी-प्रतिवादीका नाम-धाम, गोत्र तथा दोनों दलोंका वक्तव्य इत्यादि। वयानमे फर्क पडने वा उसमे पीछे पडने पर सजा होती थी। भेदियों द्वारा सत्यासत्यका पता लगाया जाता था। विचारक वहुत समझ वूझ कर इन भेदियोंकी वातों पर विश्वास करते थे। क्योंकि न्याय न होने पर विचारकोंको भी सजा दी जा सकती थी।

एकसे अधिक साक्षियोंकी आवश्यकता होती थी। साले, सहायक महाजन, वन्दी, ऋणी, वैरी, दागी जिन्हें सजा मिल चुकी है, ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियोंका

साक्ष्य स्वीकार नहीं किया जाता था। गवाही देनेके समय साक्षियोको कसम खानी पड़ती थी।

अब हम महात्मा गौतम बुद्धके कुछ उपदेशोंका उद्धरण देंगे । जो इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि उस कालमे हिन्दू-समाजकी अवस्था यथा हिन्दू सामाजिक जीवनके आदर्शका कितना ऊँचा होनेका प्रमाण मिलता है । ये उपदेश प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ 'सिगालो-वाद सुत्त' में लिखे हैं और गर्वित यूरोपकी भाषाओमें वारं-बार इनका अनुवाद हुआ है।

१ माता-पिता और पुत्र।

माता-पिताको चाहिए कि—

(१) लड़कोंको पापसे बचावें।
(२) पुण्य करनेकी शिक्षा दें।
(३) उन्हें शिल्प और शास्त्रोंमें शिक्षा दिलावें।
(४) उनके लिये योग्य पति वा पत्नी दें।
(५) उन्हें पैत्रिक अधिकार दें।

लड़कोंको चाहिए कि—

(५) जिन्होंने मेरा पालन किया है उनका मै पालन करूँगा।
(२) मैं ग्रहस्थीके उन धर्मोंको करूँगा जो मेरे लिये आवश्यक है।
(३) मैं उनकी सम्पत्तिकी रक्षा करूँगा।
(४) मै अपनेको उनके वारिस होनेके योग्य बनाऊँगा।
(५) उनकी मृत्युके उपरान्त मैं सत्कारसे उनका ध्यान करूँगा।

२ गुरु और शिष्य।

शिष्यको अपने गुरुओंका सत्कार करना चाहिए—

१—उनके सामने उठ कर।
२—उनकी सेवा करके।
३—उनकी आज्ञाओंका पालन करके।
४—उन्हे आवश्यक वस्तुएँ देकर।
५—उनकी शिक्षा पर ध्यान देकर।

गुरुको अपने शिष्यो पर इस प्रकार स्नेह दिखाना चाहिए—

१—सब अच्छी बातोंकी उन्हें शिक्षा देकर।

२—उन्हें विद्याको ग्रहण करनेकी शिक्षा देकर।

३—उन्हें शास्त्र और विद्या सिखा कर।

४—उनके मित्र और सगियोंमे उनकी प्रशंसा करके।

५—आपत्तिसे उनकी रक्षा करके।

३ पति और पत्नी।

पतिको अपनी पत्नीका इस भाँति पालन करना चाहिए—

१—सत्कारसे उसके साथ व्यवहार करके।

२—उस पर कृपा करके।

३—उसके साथ सच्चा रह कर।

४—लोगोंमें उसका सत्कार करा कर।

५—उसे योग्य आभूषण और वस्त्र देकर।

पत्नीको अपने पति पर इस भाँति स्नेह दिखाना चाहिए—

१—अपने घरके लोगोंसे ठीक तरहसे वर्ताव करके।

२—मित्रों और सम्बन्धियोका उचित आदर-सत्कार करके।

३—पतिव्रता रह कर

४—किफायतके साथ घरका प्रवन्ध करके।

५—जो कार्य उसे करने पडते हों उनमें चतुराई और परिश्रम दिखला कर।

४ मित्र और संगी।

इज्जतदार मनुष्यको अपने मित्रोंसे इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए—

१—उपहार देकर।

२—मृदु सम्भाषणसे।

३—उनके लाभकी उन्नति करके।

४—उनके साथ अपनी वरावरीका व्यवहार करके

५—उनके साथ अपना धन उपभोग करके।

इन लोगोको उसके साथ इस प्रकार प्रीति दिखलानी चाहिए—

१—जब वह बे-खबर हो तो उसकी निगरानी करके।

२—यदि वह अल्हड हो तो उसकी सम्पत्तिकी रक्षा करके ।

३—आपत्तिके समय उसे शरण देकर ।

४—दु:खमें उसका साथ देकर ।

५—उसके कुटुम्बके साथ दया दिखा कर ।

५ स्वामी और नौकर ।

स्वामीको अपने सेवकोको इस प्रकार सुख देना चाहिए—

(१) उनकी शक्तिके अनुसार उन्हें काम देकर ।

(२) उचित भोजन और वेतन देकर ।

(३) रोगकी अवस्थामें उनके लिये यत्न करके ।

(४) असाधारण उत्तम वस्तुएँ उन्हें दे कर ।

(५) उन्हें कभी कभी छुट्टी देकर ।

नौकरोंको अपने स्वामी पर भक्ति इस प्रकार प्रकट करनी चाहिए—

१—वे उसके पहले उठें ।

२—वे पीछे सोवें ।

३—उन्हे जो कुछ दिया जाय उससे सन्तुष्ट रहें '

५—वे उसकी प्रशंसा करें ।

६ गृहस्थ और धार्मिक लोग ।

इज्जतदार मनुष्य भिक्षुओं और विद्वानोंकी इस प्रकार सेवा करे —

१—कार्यमे प्रीति दिखा कर ।

२—वाणीमें प्रीति दिखा कर ।

३—विचारमें प्रीति दिखा कर ।

४—उनका मनसे स्वागत करके ।

५—उनकी सासारिक आवश्यकताओंको दूर करके ।

उन लोगोंको उनके साथ इस प्रकार प्रीति दिखानी चाहिए—

१—उसे पाप करनेसे रोक कर ।

२—उसे पुण्य करनेकी शिक्षा देकर ।

३—उसके ऊपर दया-भाव दिखा कर ।

एक एक कथा किस प्रकार कह कह कर प्रस्थान किया। प्रत्येक ग्रामीण पाठशालाके छोटे छोटे बालक भारतवर्षमे अब तक आश्चर्य और चावसे पढ़ते हैं कि इस साहसी विक्रमने अन्धकार और भयके दृश्योंके बीच एक प्रबल बेतालके ऊपर प्रभुत्व पानेका किस प्रकार प्रयत्न किया और अन्तमें उसने अजेय वीरता, कभी न डिगनेवाली बुद्धि और कभी न चूकनेवाले साहस और आत्म-निर्भरके कारण किस प्रकार सफलता प्राप्त की ।

यह वह वीर था जिसने भारतके भयंकर आक्रमणकारी शक लोगोंको अपने अदम्य पराक्रमसे पराजित करके भगाया था। उससे उत्तरी भारतमें जो सैकड़ो वर्ष तक आक्रमण करनेवालेसे पीड़ित था, शान्तिके साथ ही साथ शिल्पकी वृद्धि हुई । राजाओंके दर्बार तथा बड़े बड़े नगर विलास, धन, बड़े व्यापार और शिल्पके केन्द्र हो गये। विज्ञानने अपना सिर उठाया और आधुनिक हिन्दू ज्योतिष-शास्त्रनें एक नई उन्नति प्राप्त की । कविता और नाटकने अपना प्रकाश फैलाया और वे हिन्दुओंके हृदयको प्रसन्न करने लगे।

इस प्रतापी सम्राट्के करीब १०० वर्ष पीछे अर्थात् सन् ६२९ ईस्वीमे एक और चीनीयात्री भारतमें आया । उसका नाम हुएनत्साग था। वह जिले जलालाबादकी पुरानी राजधानी नगरहारका वर्णन करता है कि—"नगरका घेरा ४ मीलका था । इस नगरमें अन्न और फल बे-शुमार हैं, यहाँके लोग सीधी चालके, सरल, उत्साही और वीर हैं।"

हुएनत्सांग शतद्रु (सतलज) के राज्यसे बड़ा प्रसन्न हुआ था। उसके विषयमे वह लिखता है कि वह राज्य ४०० मीलके घेरेमें है। राजधानीका घेरा ३॥ मील है। इस देशमें अन्न, फल, सोना, चाँदी और रत्न बहुतायतसे हैं। यहाँके लोग चमकीले रेशमके बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्र पहनते हैं । उनके आचरण नम्र और प्रसन्न करनेवाले हैं—वे पुण्यात्मा हैं।

मथुराके देशका घेरा १००० मील है और मुख्य नगरका ४ मील है। यहाँकी भूमि अत्यन्त उपजाऊ है और इस देशमें रुई और स्वर्ण बहुत होता है। लोगोंके आचरण नम्र और सुशील है। वे पुण्यात्मा हैं और विद्यार्थियोंका सत्कार करते हैं।

श्रुघ्न (उत्तरी द्वार) का राज्य जिसके पूर्वमें गंगा और उत्तरमें हिमालय है, १२०० मीलके घेरेमें है। गंगा अपूर्व नदी है। उसकी लहरें समुद्रकी नाँई विस्तृत हैं।

रुहेलखण्ड और हरिद्वारका आश्चर्य-कारक वर्णन कर आगे चल कर यह यात्री कन्नौजके राज्यका वर्णन करता है—

राज्यका घेरा ८०० मील है और सम्पन्न राजधानी ४ मील लम्बी और १ मील चौड़ी है। नगरके चारों ओर खाई है। और भीतर अत्यन्त दृढ़ पत्थरके आकाश-चुम्बी बुर्ज हैं। चारो ओर कुंज, तलाव, फूल आदि दर्पणकी तरह स्वच्छ और रम्य हैं। वाणिज्यकी बहुमूल्य वस्तुओके ढेर बाजारमें भरे हैं। लोग सुखी और सन्तुष्ट हैं, घर धन-सम्पन्न और सुदृढ़ हैं। फूल-फल बे-सुमार हैं। भूमि जोती और बोई जाती है और उसकी फसल समय पर काटी जाती है।

लोग सच्चे, उदार, सज्जन और कुलीन जान पड़ते हैं। वे कामदार चमकीले वस्त्र पहनते हैं। वे बड़े भारी विद्या-व्यसनी हैं और धर्म-सम्बन्धी विषयों पर भारी भारी शास्त्रार्थ करते हैं...... ।

यह यात्री कन्नौजके तत्कालीन प्रतापी राजा शीलादित्य द्वितीयका अतिथि बना और उसने उसका बहुत सत्कार किया। इस बली राजाके पास ५ हजार हाथी, २०००० सवार और ५०००० पल्टनकी सेना स्थायी थी और उसने समस्त पंजाबको ६ वर्षमें विजय किया था।

इसी चीनीयात्रीके समक्ष शीलादित्यने एक बड़ी धार्मिक सभा की थी जिसमें उसने २० देशोंके राजाओंको अपने अपने देशके विद्वान् ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षुओंको तथा प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्रबन्ध-कर्ताओं और सैनिको सहित एकत्रित होनेकी आज्ञा की थी। उस ठाठदार सभा और उत्सवका वर्णन वह विदेशी इन शब्दोंमें करता है—

"संघारामसे लेकर राजाके महल तक सब स्थान तम्बुओं और गानेवालोंके खेमोंसे सज्जित था। बुद्धकी एक छोटी मूर्ति एक बहुत ही सजे हुए हाथीके ऊपर रक्खी जाती थी और शीलादित्य इन्द्रकी भाँति और कामरूपका राजा उसकी दाहिनी ओर पाँच पाँचसौ युद्धके हाथियोंकी रक्षामें चलता था। शीलादित्य चारों ओर मोती और अन्य रत्न तथा सोने-चाँदीके फूल फेंकता जाता था। मूर्तिको स्नान कराया जाता था और शीलादित्य उसे स्वयं अपने कन्धे पर रख कर पश्चिमके बुर्ज पर ले जाता था। और उसे रेशमी वस्त्र पहना कर रत्न-जटित आभूषण पह-

राये जाते थे। इसके उपरान्त भोजन होता था और तव सब लोग एकत्र होकर शास्त्रार्थ करते थे। सन्ध्या-समय राजा अपने भवनमें चला जाता था।"

हाय जो मोती, रत्न सडकों पर लुटाये जाते थे आज देखनेको नसीव नहीं हैं!

इलाहावादके सम्बन्धमे वह कहता है कि इस राज्यका घेरा ३००० मील है। पैदावार वहुत है और फल वे-शुमार हैं। लोग सुशील और भलेमानुस हैं, वडे विद्यानुरागी हैं। यह यात्री हमारे महान् अक्षयवटका भी जिक्र करता है। आज हमें देखनेके लिये उस भाग्यशाली वृक्षका ध्वंशाववेष वचा है।

आगे चल कर यह यात्री वनारसका जिक्र करता है। वह कहता है—

यह नगर हिन्दू-धर्मका स्तम्भ है। राज्यका घेरा ८०० मील है और राजधानी लगभग ४ मील लम्बी और एक मील चौडी है। गृहस्थ लोग खूब धनाढ्य हैं। और उनके घर वड़ी वड़ी वहुमूल्य वस्तुओंसे भर रहे हैं। लोग कोमल और दयालु हैं और वे विद्याध्ययनमे लगे रहते हैं।

नगरमे २० देव-मन्दिर हैं जिनके वुर्ज और दालान नकशीदार पत्थर और लकड़ियोंके वने ये। जिन पर अद्भुत कारीगरीका काम है। इसके वाद वह वैशाली, उज्जैन, मगध, पाटलीपुत्र, गया आदिका चमत्कारिक वर्णन करके प्रख्यात राजा विम्वसारकी राजधानी राजगृहमें आता है और उसका प्रभावशाली वर्णन करके वह उस समयके प्रख्यात विश्वविद्यालय नालंदका अवलोकन करता है। वह कहता है।—

'यहॉके अध्यापक विद्वानोंकी संख्या कई हज़ार है—वे सव वीतरागी संन्यासी हैं। वे वडे योग्य विद्वान् और प्रसिद्ध पुरुष हैं। समस्त भारतमें उनका पूर्ण सम्मान है। गूढ विषयों पर प्रश्न पूछने और उत्तर देनेके लिये दिन काफी नहीं हैं। दिन रात वे शास्त्र चर्चामें लगे रहते हैं। वृद्ध और युवा परस्पर एक दूसरेको सहायता देते हैं। जो लोग त्रिपिटकके प्रश्न पर शास्त्रार्थ नहीं कर सकते उनका सत्कार नहीं किया जाता—वे लज्जाके मारे अपना मुंह छिपाते फिरते हैं। कुछ मनुष्य नालंदके विद्यार्थियोंका झूठ-मूठ नाम ग्रहण करके इधर उधर जाकर सत्कार पाते हैं।

इस विश्वविद्यालयके विषयमें कहा जाता है कि राजा शुक्रादित्य, वुद्धगुप्त, तथागत गुप्त और वालादित्यने वरावर इसकी वड़ी इमारतको वनवानेमें अपने अपने कालमें निरन्तर परिश्रम किया और उसके वन जाने पर जो सभा हुई थी उसमें २००० मील दूर दूरसे विद्वान् लोग एकत्र हुए थे।

इसके आगे यह यात्री बंगाल, उड़ीसा, कलिंग, अन्ध्र, चैल, द्राविड, महाराष्ट्र, गुजरातका प्रभावशाली वर्णन करता है। सर्वत्र वह अन्न-फल और पशुओंकी बहुतायत बताता है। सर्वत्र लोगोंकी सादगी, सुशीलता और विद्याभ्यसन तथा वीरताकी हामी भरता है। अन्तमें वह समस्त देश पर अपनी सम्मति इस प्रकार देता है।

"देशकी राज्य-प्रणाली उपकारी सिद्धान्तों पर होनेके कारण शासन-रीति सरल है। राज्य चार मुख्य भागोंमें बँटा है। एक भाग राज्य-प्रबन्ध चलाने तथा यज्ञादिके लिये है। दूसरा मन्त्री और प्रधान राज्य-कर्मचारियोंकी आर्थिक सहायताके लिये। तीसरा भाग बड़े बड़े योग्य मनुष्योंके पुरस्कारके लिये और चौथा भाग धार्मिक लोगोंको दानके लिये जिससे कि यशकी वृद्धि होती है। इस प्रकारसे लोगोंके कर हल्के हैं और उनसे शारीरिक सेवा थोड़ी ली जाती है। प्रत्येक मनुष्य अपनी सासारिक सम्पत्तिको शान्तिके साथ रखता है और सब लोग अपने निर्वाहके लिये भूमि जोतते बोते हैं। जो लोग राजाकी भूमिको जोतते हैं उन्हें उपजका छठा भाग करकी भाँति देना पड़ता है। व्यापारी लोग जो वाणिज्य करते हैं अपना लेन-देन करनेके लिये आते जाते हैं। नदीके मार्ग तथा सड़क बहुत थोड़ी चुंगी देने पर खुले हैं। जब कभी राज्यके कामके लिये मनुष्योंकी आवश्यकता होती है तो उनसे काम लिया जाता है और मजूरी दी जाती है। जितना काम होता है ठीक उतनी ही मजूरी होती है।"

"सैनिक लोग सीमा प्रदेशकी रक्षा करते हैं और उपद्रवी लोगोंको दण्ड देनेके लिये भेजे जाते हैं। वे रात्रिको सवार होकर राज-भवनके चारों ओर पहरा भी देते हैं। सैनिक लोग कार्यकी आवश्यकताके अनुसार रक्खे जाते हैं। उन्हें कुछ द्रव्य देनेकी प्रतिज्ञा की जाती है। और प्रकट रूपसे उनका नाम लिखा जाता है। शासकों, मन्त्रियों, दण्डनायकों तथा कर्मचारियोंको उनके निर्वाहके लिये भूमि मिलती है।

"सब लोग स्वभावत ओछे हृदयके नहीं होते—वे सच्चे और आदरणीय होते हैं। धन-सम्बधी बातोंमें वे निष्कपट और न्याय करनेमें गम्भीर हैं। वे लोग दूसरे जन्ममें प्रतिफल पानेसे डरते हैं और इस संसारकी वस्तुओंको तुच्छ समझते हैं। ये लोग धोखा देनेवाले और छली नहीं हैं।"

यही सच्ची सम्मति मेगस्थनीजके समयसे लेकर सब विचारवान् यात्रियोंकी रही है जिन्होंने कि हिन्दुओंको उनके घरों और गावोंमें देखा है और जो उनके

नित्यकर्मों और प्रति दिनके व्यवहारोंमें सम्मालित हुए हैं। भूत भारतके इस उन्नत, स्वतन्त्र और ललचीले जीवनोंकी झाँकी कराके ही हमें सतोष नहीं होगा। हम उन वातोंको भी याद करेंगे जिनसे हमारे हृदयमें गर्व होता है।

ये वातें हमारी विद्या-सम्वन्धी योग्यताएँ हैं। मैं उस आध्यात्मिक तत्त्वज्ञानको इस समय छोड़े देता हूँ जिसकी प्रतिद्वन्द्विता करनेका घमण्डी यूरोपने आज तक भी साहस नहीं किया है। और अपने पूरे यौवनके समयमें भी जिसका अनम्र मस्तक झख मार कर जिसके सन्मुख झुकता रहा है। मैं केवल शिल्प, ज्योतिष, वैद्यक, रसायन और साहित्यकी तरफ सकेत करूँगा।

हमें खेद है कि शिल्प एक ऐसी कला है जिसका सम्वन्ध स्थूल आँखोंसे है और जिसके नमूनो पर कालका पूरा पूरा प्रभुत्व है। इस लिये हम करोड़ों वर्ष पुराने वैदिक कालके शिल्पके नमूने नही दे सकते जिनका गम्भीर वर्णन ऋग्वेद और यजुर्वेदके मंत्रोंमें जहाँ तहाँ है। हम केवल उन्हीं आधारों पर चल सकते हैं जो लगभग दो हजार वर्षके हे और जिनके ध्वंसावशेषको यूरोपके विद्वानोंने दाँतोंमें उँगली देकर देखा है। पत्थरकी मूर्तियाँ और घर जो सवसे पुराने मिलते हैं, वौद्ध हिन्दुओंके हे जिसका समय मसीहसे लगभग २०० वर्ष प्रथम है। लोगोंका कथन है कि यह विद्या भारतने यूनानसे सीखी थी। पर डाक्टर फर्ग्यूसन साहव एक स्थान पर लिखते हैं—

" इस वात पर जितना जोर दिया जाय थोड़ा है कि इसकी शिल्पकारी शुद्ध स्वदेशी है। इसमे न इजिप्ट (मिश्र) के कुछ चिन्ह हे और न यूनानी शिल्पके। और न यही कहा जा सकता है कि इसमेकी कोई वात वेविलोनिया वा एसीरियासे उद्धृत की गई है। "

दिल्लीमें जो अद्भुत लोहेका खम्भा है जो कि पाँचवीं सदीके शिल्पका नमूना है उसके सम्वन्धमें डाक्टर फर्ग्यूसन कहते हैं—

" यह हमारी आँख खोल कर विना सन्देह वताता है कि हिन्दू लोग उस समयमें लोहेके इतने वडे खम्भे वना सकते थे जो कि यूरोपमें १८ वीं सदीसे प्रथम वन ही नहीं सकते थे और अव भी वहुत कम वन सकते हैं ...... । और यह वात भी कम आश्चर्य-जनक नहीं है कि १५०० वर्ष तक हवा और पानीमें रह कर उसमें अव तक भी जग नहीं लगा है और उसका सिरा तथा लेख अव तक वैसा ही स्पष्ट और सहज है जैसा कि २४०० वर्ष पहले वनाया गया था। "

भारतके पत्थरकी कारीगरीमें यह विद्वान् खोजी डाक्टर कहता है—

“जब हम लोग हिन्दुओंके पत्थरके कामको पहले पहल बुद्ध गया और तिरहुतके जगलोंमें २०० से लेकर २५० ई० पूर्व तक देखते हैं तो हम उसे पूर्णतया भारतवर्षका पाते हैं, जिसमे कि विदेशियोके प्रभावका कोई चिन्ह नहीं है। परन्तु उनसे वे भाव प्रकट होते हैं और उनकी कथा इस स्पष्ट रूपसे विदित होती है कि जिसकी समानता कमसे कम भारतवर्षमें कभी नहीं हुई। उसमे कुछ जन्तु—यथा हाथी, हिरन और बन्दर ऐसे बनाये गये हैं जैसे कि ससारके किसी देशमे बने नहीं मिलते। और ऐसे ही कुछ वृक्ष भी बनाये गये है और उनमें नक्काशीका काम इतनी उत्तमता और शुद्धतासे बनाया गया है कि वह बहुत प्रशंसनीय है। मनुष्यकी मूर्तियाॅ भी यद्यपि वे आजकलकी सुन्दरतासे भिन्न हैं परन्तु बडी स्वाभाविक है और जहाॅ पर कई मूर्तियोका समूह है वहाॅ पर उनका भाव अद्भुत सरलताके साथ प्रकट किया गया है। रेलफकी नाई एक सच्चे और कार्योपयोगी शिल्पकी भाँति कदाचित् इससे बढकर और कोई काम नहीं पाया गया।”

प्रख्यात रामेश्वरके विशाल मन्दिरके सम्बन्धमे डाक्टर फर्ग्यूसन कहते हैं—“कोई नक्काशी उस विचारको नहीं प्रकट कर सकती जो कि लगातार ७०० फिटकी ऊँचाई तक इस परिश्रमकी कारीगरीको देखनेसे होती है। हमारे कोई गिर्जे ५०० फिटसे ऊँचे नहीं हैं। और सैंटपीटरका गिर्जेका मध्यभाग भी द्वारसे लेकर पूजा-स्थान तक केवल ६०० फिट ऊँचा है। यहाॅ बगलके लम्बे दालान ७०० फीट ऊँचे हैं वे उन फैले हुए पतले दालानोंसे जुडे हुए हैं जिनका काम स्वयं उनकी ही भाँति सुन्दर और उत्तम है। इनमें भिन्न भिन्न उपायो और प्रकाशके प्रबन्धसे ऐसा प्रभाव उत्पन्न होता है जो कि निस्सन्देह भारतवर्षमें और कहीं नहीं पाया जाता। यहाँ हमें ४००० फिट तक लम्बे दालान मिलते है जिनके दोनो ओर कडेसे कडे पत्थरो पर नक्काशी की गई है। यहाॅ पर परिश्रमकी जो अधिकता देखनेमें आती है उसका प्रभाव नक्काशीके गुणोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होता है और वह एक प्रकारकी मनोहरता और अद्भुतताको लिये हुए एक ऐसा प्रभाव उत्पन्न करता है कि जो भारतवर्षके किसी मन्दिरमें नहीं पाया जाता।”

दक्षिणके हुलाविडके बड़े दोहरे मन्दिरके सम्बन्धमें उक्त डाक्टर लिखते है जिसे दुर्भाग्य-वश १४ वीं शताब्दीमें मुसल्मानोंकी विजयने रोक दिया था—

" यदि यह मन्दिर पूरा बन गया होता तो यह एक ऐसी इमारत होती कि जिस पर हिन्दू गृह-निर्माण-विद्याके प्रसंशक अपनी स्थिति लेना चाहते। निस्सन्देह इतने पेंचीले और इतने भिन्न भिन्न प्रकारके नमूनोंका दृष्टान्तके द्वारा समझना असम्भव है ......। इसमेकी कुछ मूर्तियोंमें ऐसा महान् काम हुआ है कि उसका चित्र केवल फोटोग्राफीके द्वारा ही लिया जा सकता है। और सम्भवतः वह पूरबमे भी मनुष्योंके परिश्रमका सबसे अद्भुत नमूना समझा जा सकता है।"

हेलेबिडके मन्दिरोंके विषयमें फर्ग्यूसन कहते हैं—

" यदि हेलेबिडके मन्दिरका इस प्रकारसे दृष्टान्त देकर समझाना सम्भव होता कि हमारे पाठक उसकी विशेषतासे परिचित हो जाते तो उनमे तथा ऐथेसके पार्थिनामें समानता ठहरानेमें बहुत ही कम वस्तुएँ इतनी मनोरंजक और इतनी शिक्षाप्रद होती......।"

अँगरेज विद्वान्‌की यह विचार-पूर्ण तथा गृह-निर्माण-विद्याके सम्बन्धमे दार्शनिक सम्मति क्या हमारे भूत शिल्प पर यथेष्ट प्रकाश नहीं डालती ?

ज्योतिष और गणित सभ्यताकी वे योग्यताएँ हैं जिन्हें संसारकी श्रेष्ठतर योग्यता कहा गया है। इस योग्यतामे भारत बहुत बहुत प्राचीन कालसे पण्डित रहा है।

ऋग्वेद जो संसारकी सबसे प्राचीन और सबसे प्रथम पुस्तक समस्त पाश्चात्य विद्वानोंने मान ली है, उसमें ज्योतिषके सूक्ष्म तत्त्व लिखे हैं। वर्षको १२ चान्द्रमासोंमें बाँटना और चान्द्र-वर्ष सौर-वर्षसे मिलानेके लिये एक तेरहवाँ अर्थात् अधिक मास प्रति ३ वर्षमें जोड देना (१, २५, ८), वर्षकी ऋतुओंके नाम (२, २६), नक्षत्रोंके हिसाबसे चन्द्रमाकी स्थितिका उल्लेख (९, ३, २०) में आया है। और (१०, ८५, १३ में) नक्षत्रोंकी कुछ राशिके नाम भी दिये गये हैं। यह अत्यन्त प्राचीन वैदिक कालकी योग्यता थी।

वेदके पीछेके ग्रन्थोंमें हमें ज्योतिषका और भी विस्तृत वर्णन मिलता है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण ४–५ और शुक्ल यजुर्वेद ३०, १०, २०) तथा श्याम यजुर्वेदमें २८ नक्षत्रोंके नाम दिये गये हैं। शतपथ ब्राह्मण (२, १, २) में नक्षत्रोंके सम्बन्धसे चन्द्रमाकी स्थितिका गम्भीर मनोहर वर्णन है।

आजसे ७० वर्ष प्रथम कोलब्रूक साहबने जो यूरोपके सबसे पहले निरपेक्ष खोजी थे, अपनी पक्षपात-रहित सम्मति ज्योतिषके सम्बन्धमे दी है। वे लिखते हैं—

यूनानियोंने इस शास्त्रके मूल तत्त्वोको जिस शताव्दीमें सीख लिया उसके उपरान्तहीकी शताव्दीमें हिन्दुओंने इसमे विशेष उन्नति प्राप्त कर ली थी। हिन्दुओंको गणितके अंक लिखनेका ज्ञान था । परन्तु यूनानियोंमे इसका अभाव था।........ उनके पंचांग सूर्य और चन्द्रमाके अनुसार होते थे। उन लोगोंने चन्द्र और सूर्यकी गतिको ध्यान-पूर्वक जान लिया था और ऐसी सफलता प्राप्त की थी कि उन्होने जो चन्द्रमाका युति भगण निश्चित किया है वह यूनानियोंकी अपेक्षा वहुत शुद्ध था ......।"

इसी विद्वान्ने अमेरिका और फ्रान्सके वडे वड़े विद्वानोके मतोका खण्डन करके प्रमाणित किया कि क्रांति-मण्डल न चीनकी 'सिड' प्रणाली है और न अरवकी 'अरव मंजिल'। वल्कि अरववालोने निस्सन्देह भारतकी नक़ल की है।

डाक्टर थीवो कहते हैं कि "रेखागणितका अध्ययन पहले पहल भारतमें ही हुआ है। और इसके लिये संसार भारतका ही ऋणी है। कृष्ण यजुर्वेद (५, ४, ११) में इस विषयके वीज मौजूद हैं।"

पौराणिक कालमें जिसे कोई १५०० वर्ष हुए, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त आदि ज्योतिषके उद्भट विद्वान् भारतने पैदा किये। आर्यभट्ट पौराणिक कालमें वीजगणित तथा ज्योतिषका पहला हिन्दू ग्रन्थकार था। उसने 'आर्यमहीय' ग्रन्थ लिखा है जिसमे गीतिका-पाद, गणित-पाद, कालक्रिया-पाद और गोल-पाद हैं। इस ग्रन्थ-रत्नको डाक्टर कर्नने अव प्रकाशित किया है। वे लिखते हैं कि इस ग्रन्थमे आर्यभट्टने पृथ्वीकी परिधिकी जो गणना की (चार चार कोसोंके ३३०० योजन) वह लगभग ठीक है।

वराहमिहिर अवन्तीका सच्चा पुत्र था। इसकी वनाई 'वृहत् संहिता' नामका ग्रन्थ-सागर संसारमें अपूर्व है जिसे डाक्टर कर्नने सम्पादित किया है। इसमे भिन्न भिन्न विषयों पर पूरे १०६ अध्याय (?) है। पहले २० अध्यायोंमें सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और ग्रहोंका विषय है । २१ से २९ तक वृष्टि, हवा, भूडोल, उल्का, इन्द्रधनुष, ऑधी, वज्र आदिका विषय है। ४० से ४२ तक घर, ग्रहों और वनस्पति तथा भिन्न ऋतुमें मिलनेवाली व्यापारकी सामग्रियोका विषय है। ४३ से ६० तक घर वनाने, वगीचे, मंदिर आदि वनानेका फुटकर विषय है। ६१ से ७८ तक भिन्न भिन्न पशुओ और मनुष्यो तथा स्त्रियोंका विषय है। ७९ से ८५ तक रत्न और

असवाश्वका विषय है। ८६ से ९६ तक सव प्रकारके सगुनका विषय है और ९७ से १०६ तक वहुतसे विषयोंका वर्णन है जिनमे विवाद, राशिचक्रके भाग इत्यादि भी सम्मिलित है।

इसके उपरान्त (६२८ ई० में०) ब्रह्मगुप्तने अपना 'वृहत् स्फुट सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ २१ अध्यायका लिखा है। जो अतिशय पूर्ण और ज्योतिषका उत्कृष्ट प्रकाश करनेवाला है।

१२ वीं शताव्दीमें प्रसिद्ध भास्कराचार्यने 'सिद्धान्तशिरोमणि' नामका अपूर्व ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थके आरम्भके भाग वीजगणित और लीलावती (अंकगणित) हैं। भास्कराचार्यके ग्रन्थोमें अद्भुत और गूढ़ प्रश्नोंका विवरण है जो यूरोपमें १७ वीं और १८ वीं शताव्दी तक नहीं प्राप्त हुए थे। वीजगणितमें निस्सन्देह भारतने अद्भुत उन्नति कर ली थी। भास्करने एक प्रश्नको विशेष रीतिसे हल किया—यह ठीक वही रीति है जिसे यूरोपमे लार्ड व्रोकरने सन् १६५७ में आविष्कृत किया था और इसी प्रश्नको—जिसे व्रह्मगुप्तने ७ वीं शताव्दीमें हल किया था—हल करनेका निश्चल प्रयत्न यूलर साहवने किया और उसे अन्तमें सन् १७६७ में डीला ग्रेञ्जे साहवने पूरा किया।

अरवी ग्रन्थकारोने ईसाकी आठवीं शताव्दीमें हिन्दुओंके वीजगणितके ग्रन्थोंका अनुवाद किया और पिसा देशके लियो नार्डोने पहले पहल आधुनिक यूरोपको इस विद्यासे परिचित कराया। त्रिकोणमितिमे भी हिन्दू ससारके आदि गुरु समझे गये है। दशमलवकी प्रणालीको निर्माण करके भारतने अरवको सिखाया और अरवने यूरोपको। आज वह मनुष्य जातिकी सम्पत्ति है।

अव हम अपने देशके प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र पर दृष्टि डालेंगे जो एक समयमे अपूर्व था। प्राचीन आयुर्वेदके आठ अंग थे।

१ काय-चिकित्सा,
२ शल्य-चिकित्सा,
३ शालाक्य-चिकित्सा,
४ भूत विद्या,
५ कौमारभृत्य,
६ अगद-तन्त्र,
७ रासायनिक,
८ वाजीकरण।

इनमें सभी विभाग प्राय: आज नष्ट हो गये हैं! और कुछ क्या वहुत ही खण्डित भाग प्राप्त होता है।

काय-चिकित्सा ।

औषध खिला कर आरोग्य करनेकी विधि । इस विषयके इतने ग्रन्थोंका पता चलता है—

१ चरक—यह ग्रन्थ महर्षि पतंजलिने अबसे प्राय दो हजार वर्ष पूर्व संकलित किया था । इससे पूर्व किस दशामें था—यह जाननेका आज कोई उपाय नहीं है ।

२ अग्निवेशसंहिता—सबसे प्रधान है । प्राय सब टीकाकार इसका उद्धरण करते हैं ।

३ भेलसंहिता—यह अप्रसिद्ध है और तंजौरमें सरकारी लाइब्रेरीमे है ।

४—जतूकर्णसंहिता—यह पुस्तक सर्वथा दुर्लभ है। पर प्राय सभी प्राचीन टीकाकारोंने इसके प्रमाण पेश किये हैं ।

५—पाराशरसंहिता, क्षारपाणिसंहिता—ये दोनों पुस्तकें शिवदास टीकाकारके समय तक प्राप्त होती रही हैं । अब नहीं मिलतीं ।

७—हारीतसंहिता—यह पुस्तक भी असली दुष्प्राप्य है ।

८—खरनाद—यह भी दुष्प्राप्य है ।

९—विश्वामित्रसंहिता—यह अतीव प्राचीन पुस्तक नहीं मिलती है । चरक और सुश्रुतकी टीकामे इसका जिक्र चक्रपाणिने किया है ।

१०—अत्रिसंहिता—इसे अत्यन्त प्राचीन और भारी पोथा कहा गया है—पर दर्शन दुर्लभ हैं ।

शल्यतन्त्र ।

चीर-फाडकी चिकित्सा-सम्बन्धी विज्ञान । इसके विषयमें शैली साहब कहते हैं—इन प्राचीन शस्त्र-वैद्योंको पथरी निकालने तथा पेटसे गर्भ निकालनेकी क्रिया विदित थी । और उनके ग्रन्थोंमें पूरे १२७ शस्त्रोंका वर्णन है । कुछ शस्त्र इतने चोख होते थे जिनसे खडा वाल चीरा जा सकता था ।

इस सम्बन्धमे इतने ग्रन्थोंकी खोज मिलती है ।

१-२-औपधे नवतन्त्रम्, और **भूतन्त्रम्** । इन दोनों ग्रन्थ-रत्नोंका जहां तहाँ टीकाओंमें जिक्र ही रह गया है, शोक !

३—सुश्रुत, वृद्ध सुश्रुत—जिनमे वृद्धसुश्रुतका पता नहीं चलता ।

४—**पौष्कलावततन्त्रम्**—यह भी नष्ट है।

५—**वैतरणतन्त्रम्**—मिलता नहीं। सुश्रुतके टीकाकारने गम्भीर आपरेशनके विषयमें सुश्रुतमें जो बात कही है वह विषय यहींसे उद्धृत किया गया है। नही कह सकते कि यह ग्रन्थ कैसा महत्त्व-पूर्ण होगा।

६—**भोजतन्त्रम्**—यह बहुत भारी ग्रन्थ था।

७—**करवीर्यतन्त्र**—इसका भी कहीं कहीं टीकामें उल्लेख है।

८—**गोपुररक्षिततन्त्र**—नष्ट है।

९—**भालुकीतन्त्र**—नहीं मिलना। इसकी बहुत प्रशंसा है।

१०—**कपिलतन्त्र, गौतमतन्त्र**—बिल्कुल नहीं मिलते।

शालाक्य।

अर्थात् अगोंके बाहरी रोगों यथा आँख, कान, नाक, आदिकी खास चिकित्सा।

इस विषयके इतने ग्रन्थोंके नाम मिलते हैं, पर इस विषयका एक भी ग्रन्थ नहीं मिलता।

१—**विदेहतन्त्र**—यह शालाकियोंका प्रधान तन्त्र था जो विदेहराजने बनाया था। मिलता नहीं।

२—**निमितन्त्र**—यह पृथक् तन्त्र था।

३—**कांकायनतन्त्र**—इसका उल्लेख जहाँ तहाँ चरकमें किया गया।

४-५—**गार्ग्य-गालवतन्त्र**। इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। केवल डल्लनाचार्यने इसका जिक्र किया है।

६—**सात्यकितन्त्र**—इसका जिक्र भी डल्लनने सुश्रुतके उत्तर तन्त्रमें किया है

७—**शौनकतन्त्र**—गुप्त है।

८—**करालतन्त्र**—प्राचीन पुस्तक थी। नष्ट है।

९—**चक्षुष्पथतन्त्र**
१०—**कृष्णात्रेयतन्त्र** } दोनों ग्रन्थ-रत्न नष्ट हैं।

भूतविद्या।

अर्थात् मनकी शक्तियोंकी बिगड़ी दशाकी मानसिक बलसे चिकित्सा। जिसमें पञ्च महाभूतोंके मिश्रणका गम्भीर रहस्य था। खेदकी बात है कि यह विद्या किसी समय अति प्रसिद्ध थी, पर आज खोजने पर भी एक भी ग्रंथ नहीं मिलता।

सुश्रुत (उत्तर ६ अ०), चरक (चि० १४ अध्या०), वाग्भट (उत्तर ४,५ अध्या०), गरुडपुराण, अग्निपुराणमें इस विषयका फुटकर जिक्र है। किसी किसीका मत है कि आथर्वणतन्त्र नामक कोई वृहत् ग्रन्थ इस विषय पर था। आज वह सब नष्ट है।

कौमारभृत्य ।

बच्चोकी रक्षा जिसमें बच्चोंका प्रबन्ध और उनकी माता और दाइयोंके रोगोंकी चिकित्सा सम्मिलित है। इस विषयका कोई मूलग्रन्थ नहीं मिलता। पर वृद्ध-ग्रन्थोका डल्लनने सुश्रुतके उत्तर तन्त्रके व्याख्यानमें जिक्र किया है।

१ जीवकतन्त्र
२ पार्वतकतन्त्र
३ बन्धकतन्त्र

ऐसा मालूम होता है कि ये तन्त्र पूर्वमें अति प्रसिद्ध थे, पर आज नाम भी कठिनतासे मिलता है। ये जीवकादि बौद्धाचार्य थे, ऐसा प्रसिद्ध है।

बौद्ध इतिहासमें 'जीवक' 'कौमारभृत्य' नामसे प्रसिद्ध है। कहते है कि यह बिम्बसार राजाके चिकित्सक अत्रेय भिक्षुके शिष्य थे।

हिरण्याक्षतन्त्र—यह भी अति प्रसिद्ध ग्रन्थ था। इस विषय पर सुश्रुतनें उत्तर तन्त्रमे (२७ से ३० तक) कुल १२ अध्याय लिखे है। अनुमान होता है यह आयुर्वेदका महान् अंग नष्ट हो गया।

अगदतन्त्र ।

विष-चिकित्सा—इसका कटा फटा उल्लेख चरकके चिकित्सा-स्थानमें और सुश्रुतके कल्पस्थानमें मिलता है। इसके स्वतन्त्र ग्रन्थ मिट्टीमे मिल गये हैं। जिनके कुछ नाम मात्र मिले हैं—

१—काश्यपसंहिता—यह ऋषि परिक्षितका चिकित्सक था।

२—अलम्बायनसंहिता। कहीं कहीं प्रमाण मिलते हैं।

३—उशनःसंहिता—इसीके आधार पर कौटिल्यके अर्थशास्त्रमें विषादिका प्रतिकार और आशुमृत परीक्षा लिखी है।

४—सनक (शौनक) संहिता—इस विषयकी अति प्राचीन और बड़ी पुस्तक थी। जिसका यूनानियोंने अनुवाद भी किया था। इसे मूलरने पाया और डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र रायने इसका उल्लेख अपने रसायन-शास्त्रमें किया है।

रसायन।

यह वह विद्या थी जिसके द्वारा मृत्यु और बुढापेको टाला जा सकता था। और लोग अजर अमर बन कर सहस्रों वर्ष जीवित रहते थे। इसकी मुख्य औषधे पारा थी। पारा और अन्य धातुओंको तरह तरहके संस्कारसे भस्म करके शरीरमें प्रवेश कराते थे जिससे रक्त और अन्त्रके क्रिमि नष्ट होकर शरीरके विष नष्ट होते थे और शरीरको नवीन यौवन प्राप्त होता था। इसके २७ सिद्ध बताये गये हैं। महर्षि वशिष्ठने माण्डव्य शिष्यको यह सिद्धि सिखाई थी। वह नागार्जुनने अपने गुरुसे पढी। वाचस्पति मिश्रने पातञ्जलयोग-सूत्रके कैवल्य-पाद सूत्रकी टीका करते हुए इसी माण्डव्यका जिक्र किया है। प्रसिद्ध दीर्घायु मार्कण्डेयको शिवने इसी योगसे दीर्घायु किया था।

मालूम होता है शिव रसायनके बड़े सिद्ध पण्डित थे। वे स्वयं अमर और युवा रहे। उनकी स्त्रियाँ बराबर आयु पाकर मरती रहीं और वे उनकी मुण्डमाला गलेमें धारण करते रहे। वैद्यकमें पारेको शिवबीज और गन्धककी पार्वतीके रजसे उत्पत्ति लिखी है—यह अलंकार भी हमारे विचारको पुष्ट करता है। धतूरा और सर्प आदिका पालन कदाचित वे रसायनके लिये ही करते थे, क्योंकि ये सब वस्तु इसी प्रयोजनकी हैं।

ईस्वी सदीसे ५०० वर्ष पूर्व रसायन पर अनेक ग्रन्थ निर्माण हो चुके थे। जिनमें नागबोधि, लोकनाथ, माण्डूक, माण्डव्य और वार्तिककार प्रसिद्ध हैं। इस विषय-के कुछ प्राचीन ग्रन्थ मिले हैं और हर्षकी बात है कि वे प्रकट हो रहे हैं। अभी हालमें गोविन्दपादाचार्य—जो कि प्रख्यात जगद्गुरु शंकराचार्यके पूज्य गुरु थे—का निर्माण किया ग्रन्थ 'रस-हृदय' बम्बईके स्वनाम धन्य यादवजी त्रिक-मजीके उद्योगसे प्रकाशित हुआ है। उसके प्रारम्भका वर्णन पाठकोंके मनोरंजन-के लिये हम उद्धृत करनेके लालचको नहीं रोक सकते।

"जो मूर्च्छित होकर रोगोंका नाश करता है, बंध कर मुक्ति देता है और मर कर अमर करता है ऐसे पारेसे अधिक करुणाकर कौन है? (२) देवता, गुरु, गौ, ब्राह्मणकी हिंसा, पाप आदिके कारण उत्पन्न हुए घृणित असाध्य रोगोंको भी जो शमन करता है उस पारेसे पवित्र और कौन है। पारेका बन्धन करना धन्य है जिसके मूलमें करुणा है। मैं पारेको सिद्ध करके पृथ्वीको अजर अमर करूँगा।

अच्छे कुलमें जन्म होना यह पूर्व जन्मके उत्तम कर्मोंका फल है। तिस पर स्वतन्त्र बुद्धि हो। वह भी कैसी कि समस्त पृथ्वी पर विलक्षण शक्तिवाली। उस बुद्धिका सर्वोत्तम उपयोग विविध फलों और भोगोंकी प्राप्ति है। भोग शरीरमें हैं। वह शरीर अनित्य है, बस सब व्यर्थ है।

इस प्रकार धन और शरीरके भोगोंको अनित्य मान कर सदा मुक्तिका यत्न करना चाहिए। वह मुक्ति ज्ञानसे मिलती है, ज्ञान अभ्याससे मिलता है। अभ्यास स्थिर देहमें होता है। पर शरीरको स्थिर करनेमें न काष्ठौषधि, न लोहादि कोई वस्तु समर्थ है। काष्ठौषधि सीसाधातुमे, सीसा रॉगमें, रॉग ताम्बेमें, ताम्बा चॉदीमे, चॉदी सोनेमें और सोना पारेमें लीन हो जाता है। इस लिये पारा ही सब धातुओका लीन करनेवाला और शरीरको अजर अमर करनेवाला है।

जो विद्याओका घर है, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका मूल है, ऐसे शरीरको अजर अमर करनेसे बढ़कर उत्तम काम क्या है? जो शरीर बुढ़ापेसे जर्जरित है और कास, श्वास आदि दु खोंसे व्याप्त है वह शरीर क्या समाधिके योग्य है। जिसकी इन्द्रिय और बुद्धि नष्ट हो गई है, जो सोलह वर्ष तक तो बालक रहता है, पीछे विषय रसके आस्वादमें लम्पट हो जाता है और जब कुछ विवेक होता है तो वृद्ध हो जाता है तब कहो मुक्ति कैसे हो?.. इस लिये योगके द्वारा मुक्ति पानेके लिये पारेके दिव्य सयोगसे शरीरको दिव्य बनाना चाहिए... ।"

कैसा सतेज उत्साह-पूर्ण पवित्र भाषण है जिसमेंसे विषयकी सचाई फूट कर निकल रही है। कहॉ गया आज वह ध्येय और जीवन!

सिद्ध नागार्जुन जो रसविद्याका महान् आचार्य मसीहसे ५०० वर्ष पूर्व हो चुका है, उसने पारेसे स्वर्ण बनानेकी विद्या जानी थी। उसका सिद्धान्त था कि स्वर्ण मूलधातु नहीं है। प्रथम उसे बहुत निराशा हुई। कनाड़ी भाषामे उसका नीचे लिखा हुआ वचन प्रसिद्ध है। जिसे वह भिक्षा मॉंगते हुए कहा करता था।

भंग बेयि लिल्ल बंग बेलिय लिल्ल।
रस निल्ल लिल्ल सुट्टु कंगेट्टु हालना—दे भिक्षां देहि॥

अर्थात् भंग पका नहीं, वंग स्तंभन हुआ नहीं और रस अग्निमे टिका नहीं। इससे मैं कंगाल होकर भिक्षा मॉगता हूँ—दो—भिक्षा दो।

इसका विचार था कि सारा पर्वत ही स्वर्णका कर दिया जाय और लक्ष्मीकी कोई कीमत न रहे। आज जब हमारा उद्योग और विज्ञान नष्ट हो गया है और हमारी प्रतिभा नष्ट हो चुकी है तो हम सोना बनानेवालोंको तब तक धूर्त कहे जावेंगे जब तक यूरोप या अमेरिकाका कोई रसायनी सोना बना कर संसार पर यह प्रकट न कर दे कि सौना मिश्रण है, मूलधातु नहीं है।

पर यह नागार्जुन वास्तवमें ऐतिहासिक पुरुष है और इसका जिक्र प्रसिद्ध अरबी-लेखक अलबरूनी और चीनी यात्री हुएनसंगने किया है। हुएनसग तो यहाँ तक कहता है—

"—प्रसिद्ध रसायन शास्त्री नागार्जुनने रसायन-प्रक्रियाओ द्वारा अपनी अवस्था सैकड़ों वर्ष बढ़ा ली है, उसका बुद्धि-बल अक्षय है और वह उडीसा प्रान्तके कोशल राजा सातवाहनका मित्र है।"

वाजीकरण।

यह वह विद्या थी जिसके द्वारा पुरुषके बल-वीर्य सतेज बनाये जाते थे और जननेन्द्रियकी निर्बलता दूर की जाती थी। प्राचीन कालमें जब भारतके पुत्रोंको सारे ससारका प्रबन्ध, हुकूमत और शासन करना पड़ा और जल-थल और आकाशमें उसकी शक्तियाँ उड़ीं तो उसे बहुत-सी सन्तानोंकी चाह हुई। यही कारण एक पुरुषको कई स्त्री रखनेका हुआ और एक पुरुष सैकडो सन्तान उत्पन्न करता था। ऐसी दशामे वाजीकरण औषधकी बड़ी आवश्यकता हुई थी और इस विषय पर बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे गये थे। खेद है कि इस विषयकी कोई प्राचीन सहिता नहीं मिलती, पुराणोंमें भी उद्धरण नहीं मिलता। प्रतीत होता है कि पौराणिक कालसे बहुत पूर्व ही यह विद्या खण्डित हो गई थी। वात्सायनका "कामसूत्र" इस विषय पर मिलता है जो अपूर्ण है। वह लिखता है कि इस विषय पर महादेवके अनुचर नन्दीने हजार अध्याय (?) का एक कामसूत्र रचा था, उसीको श्वेतकेतु औद्दालकने ५०० अध्यायोंमें संक्षेप किया। उसीको बाभ्रव्य पञ्चालीने १०० अध्यायोंका संक्षेप किया। इसके सिवा कुचुमारतन्त्रका भी नाम कहीं कहीं मिलता है। पर केवल नाम है।

पशु-चिकित्सा।

इस विषय पर शालिहोत्रसंहिताका नाम मिलता है जो दुर्लभ है और जिसका अरबी भाषामे अनुवाद हुआ था। प्रख्यात पाण्डव नकुल और सहदेवने इस विषय पर ग्रन्थ लिखे थे।

पालकाव्यसंहिता—हस्ती आयुर्वेदका महान् ग्रन्थ जो अब पूनेके आनन्दाश्रममें छप गया है। पर अब हाथी कहाँ हैं। अलबत्ता कुछ श्रीमानोको कुत्ते पालनेहीकी तौफीक रह गई है।

कीटाणु-शास्त्र।

यह विद्या १८ वीं सदीसे प्रथम पाश्चात्य विद्वानोंको नहीं मालूम थी। परन्तु प्राचीन भारतके विद्वानोंने इस विषयमें पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त किया था। अथर्ववेद (२,३१, ४) (२,३१,२) (१२,३।१५) (४,३७,२) आदि अनेक स्थलोंमें कीटाणु-सम्बन्धी सूक्ष्म विवेचन है। शतपथ ब्रा० (१।४।१०) तथा यजुर्वेदमें और सुश्रुतमें भी कहीं कहीं इसका वर्णन आया है।

रासायनिक मिश्रण—

बनानेकी विद्या भारतमें पुरानी थी। नमक पश्चिमी भारतमे पाया जाता था। सुहागा तिब्बतसे आता था। शोरा और सोडा सहजमे सर्वत्र बनते थे। फिटकरी कच्छमे बनती थी और नौसादर भी बनता था। चूना, कोयला और गन्धकसे हमारा पुराना परिचय था।

खार और तेजाब मुद्दतसे जाने गये थे। यहाँसे अरबवालेने इन्हें सीखा। और धातुओंका खानेकी तरह प्रयोग सर्व प्रथम भारतने किया था।

आज जब भारतवर्षको प्रत्येक भागमे स्वास्थ्य और चिकित्साके लिये विदेशियोंकी विद्या और निपुणताकी आवश्यकता होती है तब आजसे दो हजार वर्ष पूर्व सिकन्दरने अपने यहाँ उन लोगोंकी चिकित्साके लिये हिन्दू वैद्योंको रक्खा था, जिनकी चिकित्सा कि यूनानी नहीं कर सकते थे। और १८०० वर्ष हुए कि बगदादके प्रख्यात खलीफा हारूं रशीदने अपने यहाँ दो हिन्दू वैद्य रक्खे थे जो कि अरबी ग्रन्थोमे मनका और सलेहके नामसे मशहूर हैं। और इसी बादशाहने चरक, सुश्रुत, और निदानका अरबीमें अनुवाद कराया था। जो सिरक, सरसुत और जेदानके नामसे महशूर हैं।

यह असम्भव है कि हम अपनी कहानी विस्तारसे कहें कि उनका आदि अन्त नहीं है। हमारा सारा अतीत जवाहरातका ढेर है जिस पर समयने काला पर्दा डाल दिया है। जो उठा कर देखेगा निहाल हो जायगा।

हाय! कहाँ गया वह अतीत!!!

दूसरा अध्याय।

आत्मबोध।

जिस समय भगवती सीताको ढूँढ़नेको वानर चारों ओर रवाना हुए और दिगन्तमे भी ढूँढ़ कर उन्हें न पा सके तो सबको बड़ा क्षोभ हुआ। तब कुछ वानर समुद्र किनारे एक पर्वतके श्रृंग पर समुद्रमें डूब मरनेकी इच्छासे जा बैठे। वहीं उन्हें महाबली जटायुके भाई सम्पातिसे सीताका पता लगा कि वह समुद्रके बीच टापूमे लंकामें रावणके पर-वश है। समस्त वानर हताश हो अगाध उदधिको देखने लगे—कौन इस महासागरको पार करे। कहाँ इसके साधन हैं। कौन उस राक्षस पुरीमें जाय। किसका ऐसा पराक्रम है—क्रमशः सब ही बिलखने लगे। अन्तमें जाम्बवन्तने हनुमान मारुतीको लक्ष्य करके कहा—"हे वीर! तुम चुप साधे बैठे हो। तुम वायुके पुत्र, पवनके समान तुम्हारी गति, पर्वतके समान तुम्हारी दृढ़ता और वज्रके समान तुम्हारा शरीर है। बालकालमें तुम सूर्यको लाल गोला और सुन्दर खिलौना समझ कर लाये थे और जगत्मे भयंकरता उत्पन्न कर दी थी। अब तुम क्षुद्र समुद्रकी निर्जीव तरंगोंको इस तरह देख कर सिर नीचा किये सोच रहे हो? तुम्हारा वीर्य कहा गया? उठो, एक ही छलांगमे तुम समुद्र लाँघ सकते हो। एक ही चपेटमें राक्षसोंका नाश कर सकते हो। एक ही हुंकारमे लंका विध्वंस कर सकते हो! उठो, स्वामीका कार्य करो—सतीकी रक्षा करो और हमारी लाज और प्राण बचाओ। तुमसे अधिक हममें कौन समर्थ है।"

जाम्बवन्तके ये वचन सुन कर हनुमानके रोमाञ्च हुए—उन्हें आत्मबोध हुआ—अपने आपको पहचाना—रोम रोममें बिजलीकी शक्ति दौड़ी। उन्होंने एक जोरकी किल्कारी भरी और महासागरमें एक छलांग भरी। आगे जो हुआ भारतका बच्चा बच्चा जानता है।

पिछले दिनोंमे जब राजपूतानेमें असल राजपूत जीवित थे उन दिनों उनका मृत्युका व्यवसाय था—वही उनकी जीवन-क्रीड़ा और विलास था। उन दिनों चारण और भाट उनके दरबारमे रहते थे। उनका काम यही था कि युद्धकी यात्रामें जब वे वीरोंके आगे धोंसेकी गर्जना और डंकेकी चोटकी ताल पर गंभीर और ओज भरे स्वरमें

उन वीरोंके पूर्वजोंके वीर कृत्य सुनाते थे, प्रत्येक जवानके आगे आकर उनके पिता, प्रपिता और रमणियों तक वे उत्सर्गके साखे गाते थे, तब प्रत्येक वीरका रक्त गर्म होकर उसकी नसोंमें बहता था। उन्हें आत्मबोध होते ही उनके मनमे उत्कर्षकी होस आ उठती थी, नसे फड़क उठतीं थीं और उनकी तलवार विकराल हो जाती थी। उन शस्त्र-हीन वृद्धोंकी सफेद डाढ़ीमे जो बल था वह हजारो तलवारों, लाखों भालों और शस्त्रोसे कहीं उत्तम था। वीरत्वकी वह कुंजी थी—वीरत्वका वह मार्ग था—वीर उसीकी डोरी पर आगे बढ़ बढ कर हाथ मारते थे, मरते थे और अपने पीछेकी सन्तानोंको एक उदाहरण दे जाते थे। वे वृद्ध कविजन आँखो देखे उस शौर्यकी ऐसी कड़क कविता रचते थे जो जीवित मूर्तिके समान होती थी और उस कविताको वे शान्तिके दिनोंमें अपने गरीब झोपड़ोमे बैठ अपने बच्चोंको सिखाते थे। वे ही बच्चे बड़े होकर अपने पिताके स्थान पर आगे बढ कर राजपूत मात्रके कर्ण-धार और आत्मबोध-दाता होते थे।

पिछला अध्याय 'अतीत' नामका जो मैने लिखा है मेरी इच्छा है कि उससे भारतवासी आत्मबोध प्राप्त करें। हम अपने आपको भूल गये—अपनी शक्ति और योग्यताको भूल गये। डायन अँगरेजी शिक्षाने हमारे मास्तिष्कसे हमारे अतीतकी स्मृतिको मिटा दिया—हम क्या थे यह भुला दिया। भले मानस मैक्समूलरने कहा—वेदोंमें किसानोंके गीत हैं। हमारे स्कूलके मास्टरने कहा—हमारे पूर्वज मूर्ख-जगली और आवारा थे। हम असभ्य कालोंकी सन्तान हैं। हमने यह भी देखा कि हमारा घर दरिद्रताकी मूर्ति है। और बाहरसे आये हुए अँगरेज सुन्दर बंगलोमें बड़े ठाठसे रहते हैं। हमारे बच्चे धूलमें पड़े खेलते हैं, उनके बच्चे गुलाबके पुष्पके समान चटखते फिरते हैं। हमारी स्त्रियाँ चौके-चूल्हेमें जली जाती हैं, उनकी परी बनी फिरती है। हम दरिद्र भिखारी लुभा गये—उनकी श्रेष्ठता पर ललचा गये। पिछला ज्ञान था। अतीतकी शिक्षा देनेवाला कोई न था। वर्तमान अत्यन्त निकृष्ट था। हम पतित हुए। हमारी यह धारणा बँध गई कि हम इनको आदर्श मान कर अपना सुधारा करेंगे। इनका अनुकरण करेंगे।

हमने पतलून बनवाई, कोट-कालर-नैकटाई तैयार कराये और घोर गर्मीका कष्ट सह कर भी सबके सब पहनने शुरू किये। हमारे बच्चोंने अँगरेजी खिलोनोंसे मन बह-लाया। अँगरेजी काटके कपड़े उनके काले, दुर्बल और रोगी शरीर पर बहार दिखाने

लगे। हमारी स्त्रियोंने बूट पहना, अँगरेजी ढंगकी कुर्ती पर साड़ी चढ़ाई, घरमें मेज, कुर्सी जम गई। बूट पर पालिश करनेके ब्रश और शीशी सजाये गये। धीरे धीरे हम काले अँगरेज बनने लगे—मोरके पंख खोंस कर कौवा जैसे मोर बनता है। ये हमारे दुर्दिन थे!

कोई ऐसा न था कि हमें आत्मबोध करावे। अँगरेजी बोलना बड़प्पनकी और गर्वकी बात समझी जाने लगी। अँगरेजोंकी नौकरी आदरकी बात समझी जाने लगी। दिल्लीमे प्रख्यात कवि गालिब रहते थे। प्रारब्ध-वश ये महापुरुष अत्यन्त गरीब थे। बादशाहके उस्ताद जौकसे इनकी एक कविता पर खटपट हो गई थी। इससे बादशाहकी नजर इन पर नहीं थी। गरीब होने पर भी मनमे बड़ा तेज बनाये रखते थे। जब दिल्लीमें मिशन-कालेज खुला और उसमें फार्सीके प्रोफेसरकी आवश्यकता पड़ी तब मिर्जा साहेबकी तरफ सबका ध्यान गया। इनसे प्रार्थना की गई और इन्होंने स्वीकार भी किया। पहले दिन ये तामजाममे बैठ कर गये। कालिजके द्वार पर जाकर चपरासीकी मार्फत साहबसे सूचना कराई। साहबने जवाब भेजा—भीतर चले आइये। साहब मिर्जाके पूर्व परिचित थे। बोले—क्या साहब हमारे इस्तकबालको दर्वाजे तक न आवेंगे? यदि न आवेंगे तो हम कभी भीतर न आवेंगे। साहब आये और हाथ मिलाया। पीछे हँस कर बोले—मिर्जा साहब! हमारी आपकी दोस्तीकी बात अलग है, नोकरीकी अलग है। पहले आप जब आते थे बतौर दोस्तीके आते थे। अब आप कालेजके नोकर हुए—बे-तकल्लुफ चले आया कीजिये—मुझे इत्तला करनेकी क्या जरूरत है। मिर्जाने कहा—जनाब, सरकारी नौकरीको मैं इज्जतकी चीज समझता था। मगर अभी पहला ही कदम—और इज्जत गई। गुलाम—बन्देको नौकरीसे इस्तीफा है—उल्टे पैरो तामजाम पर चढ कर चल दिये।

यह घटना इस बात पर प्रकाश डालती है कि मिर्जा जैसे तेजस्वी पुरुषोंको भी सरकारी नौकरीकी प्रतिष्ठा पर एक बार विश्वास हो गया था। ये दिन थे जब भारतके वर्ग अँगरेजी सरकारकी नौकरीके लिये शरीर और पैसेका खून करके पढ रहे थे। ये दिन थे जब भारतके वर्ग अँगरेजी सभ्यताकी कृपा-कटाक्ष पानेके लिये बड़े बड़े यत्न कर रहे थे। रईस लोग अफसरोंको दावत खिलाना सौभाग्य समझते थे। स्त्रियाँ मेम साहबको लोकोत्तर वस्तु समझती थीं। हमें अपने ऊपर घृणा थी—अपने ऊपर अविश्वास था—अपनेको हम तुच्छ समझते थे। मनुष्यत्वके अधिकार प्राप्त करनेके हौसले

किसको होते ?—हम केवल अँगरेजी सरकारके गुलाम वननेको ध्येय समझते थे। हम काले थे—हमें वताया गया था कि हम काले जंगलियोंकी सन्तान हैं । इसमें हमारा अपराध न था—हम छ सौ वर्षसे पिट रहे थे । कहाँ हमारा आत्मतेज रहता ? कहाँ हमारी पूर्वस्मृति रहती ? कहाँ हमारा वंश-गौरव रहता ? हम कितने पिटे, कितने लुटे, कितने कैद रहे, कितने अपमानित हुए ?

उस दिन हमारे पास कुछ न था । हमें जैसा वताया गया था हम वैसे ही हो गये थे । और हमे यह भी न मालूम था कि हम कैसोंकी सन्तान हैं—सो हम पूरे गुलाम होकर गुलामीकी पूरी तैयारी कर चुके थे ।

इस लिये हम यह कहने और मानने लग गये थे कि विना यूरोपका सहयोग किये, विना अँगरेजोंका अनुकरण किये, विना नई रोशनीकी गुलामी किये हम कभी सभ्य, उन्नत और योग्य नहीं वन सकते । पर यह हमारी वडी भारी भूल थी । जव तक हमें आत्मवोध नहीं था—हमने अपने आपको नहीं जाना था—तव तक ऐसी वातें कहते थे—इसी पर हम जा रहे थे—और उन्नतिकी आशामे गुलामीके निकट पहुँच गये थे ।

पर अव हम कहेंगे कि जो लोग यह कहते हैं कि विना पाश्चात्यसे मिले हम उठ नहीं सकते वे मूर्ख हैं और झूठे हैं । अवसे लाखो वर्ष प्राचीन भारतके राजनैतिक और सामाजिक जीवनकी झाँकी हमारे सामने है । जो देश उस कालमे—जव सारी पृथ्वी पर वर्तमान युगका जन्म नहीं हुआ था—उत्कट राजनीति-क्षमता और सामाजिकताका अधिष्ठाता हुआ है वही देश अव क्या उस पाश्चात्य सभ्यताके पीछे चलेगा ? जो झूठी, ठग, वेईमान, छिछोरी, झगडालू, अशान्त और अमती है, और अभी अभी जिस पर खुले खजाने तड़ातड जूतियाँ पड़ी हैं ?

हमारा उपहास होगा यदि हम यह कहेंगे कि ईश्वर हमें वल दे, क्योंकि वल ईश्वरने हमें स्वय दिया है । हम मूर्ख कहलावेंगे यदि हम कहेंगे कि जरा सुस्ता लें, क्योंकि हम भटक भटक कर खतरनाक जगहमे पहुँच गये हैं और अव हमें ठीक मार्ग मिल भी गया है ।

यही आत्मवोध हमारा पथ-प्रदर्शक होगा— इसीके पीछे हमें चलना चाहिए । हम जो हैं वही रहेंगे । हमारा धर्म, हमारा घर, हमारा द्वार, हमारे कर्म, हमारा व्यक्ति

और समाज हमारा ही रहेगा। हम एक जाति हैं और वह जाति है—जिसके अस्तित्वको समस्त विश्वकी जातियोंके बुजुर्गोंने स्वीकार किया था।

लोग कहा करते हैं कि पीछे फिर कर देखना मूर्खोंका काम है, होगा। जिनके पूर्वज बन्दर, असभ्य और मूर्ख हो वे उन पर परदा डालें, पर हमारे पूर्वज सतेज, आत्मयोगी, तपस्वी, यशस्वी और विजेता थे। वे संसारके गुरु, ससारके अन्नदाता, संसार-नियन्ता और संसारके नेता थे। हमें पीछे फिर कर देखना ही नहीं, बल्के इस घुड़दौड़को छोड़ कर पीछे वहीं लौट चलना चाहिए जहाँ व्यास, कपिल, कणाद, गौतम-से मुनि हों; जहाँ भीष्म, कर्ण, हनुमान जैसे महावीर हों; जहाँ राम-कृष्ण जैसे महापुरुष हों। वही हमारा अतीत हमें वर्तमानमें खींच लाना चाहिए। अब हमें आत्मबोध हुआ है—हमने अपनेको पहचाना है। अब हम न किसीके गुलाम बनेंगे, न अनुसरण करेंगे, न किसीका सहयोग करेंगे—हम अपने रास्ते स्वयं चलेंगे।

तीसरा अध्याय।

अँगरेजोंका भारतसे सहयोग।

महा मनस्वी ऋषि दयानन्द सरस्वती अपने व्याख्यानोंमें बहुधा कहा करते थे कि "भाई! पहले मूर्खोंसे पल्ला पड़ा था—सो छुटकारा पा गये, पर अबकी बार बुद्धिमानोंसे पल्ला पड़ा है, छूट न सकोगे—जब तक बुद्धिमान न बनोगे।" ऋषि दयानन्दका खयाल सच था कि मुसलमान मूर्ख थे, वे भारतको अतिथि-सत्कार करनेवाला, परिश्रमी, वीर, धनी आदि देख कर भी इस पर मोहित नहीं हुए—अपनी धुनमें अन्धे होकर बराबर मार-काट मचाते रहे—और घोर वैमनस्यका बीज बोया—तिस पर यहीं आकर बस गये। अन्तमें उनके अधिकार छिन गये। परन्तु अँगरेज ऐसे मूर्ख नहीं हैं। अपने घरमें वे अच्छी तरह चारों तरफसे निबट कर बैठे हैं—कोई भय या खतरा उनसे बहुत दूर है। यहाँ आकर उन्होंने अत्याचारियोंका साथ नहीं दिया, पीड़ितोंका साथ दिया इस लिये प्रजा उनकी तरफ झुकी। प्रथम कौतूहलसे, पीछे आशासे, फिर भयसे। अँगरेजोंने प्रथम भारत

रक्षणका ढोंग दिखाया और दोनों पक्षसे मतलब बना कर बन्दर बँटवारा किया—दोनोंके भागमेंसे कतर लिया। वह समय ऐसा था कि अविचारी लोग बढ़ गये थे—सामाजिकताको भूल गये थे। दिल्लीके सम्राट् अपने अत्याचारका फल भोगने लगे थे और उन पर और उनकी प्रजा पर कठोर दक्षिणियोकी बराबर मार पड़ रही थी। राजपूताना और खास कर मेवाड़ जो बराबर मुगल शक्तिका सामना करते करते चूर हो गया था, मराठोंकी मारसे व्याकुल हो उठा था, वीरता बूढी हो चुकी थी, ओज मर रहा था, सहन-शक्ति थक चुकी थी, सीसोदिया कहाँ तक सहते? कोई सहायक न था, पड़ोसियोंकी दशा यह थी कि जहर खाये बैठे थे। सबके मनमें गुमान था कि हमारी तो नाक कट गई, उदयपुर सूखा कैसे बचा? उदयपुरकी श्वेत पगडी पर किसी भी स्वार्थीके हाथका काला छींटा पड़ता कि लोगोंके कलेजे ठण्डे होते थे। बदला मिला, दोष किसे दें। निरन्तर अपमान और ठोकर खाकर सहनेकी और सह कर सन्तुष्ट रहनेकी आदत पड़ ही जाती है। पूर्वके प्रान्तोंमें सूबेदार लोग उच्छृंखल नवाब बन बैठे थे और शराब तथा ऐयाशीमें डूबे रहते थे। प्रजा-रंजन एक ओर रहा प्रजा-पालन भी उनसे ठीक ठीक न होता था। बल और स्वेच्छाचारिता थी, पर खैर इतनी थी कि टुकड़े टुकड़े थी। नहीं तो भारतका वहीं अन्त था। दक्षिणके मराठे अपनी गाँठ भरनेकी धुनमें मनुष्यत्वको तिलांजली दे रहे थे। वे कुपित बादशाह पर थे और दण्ड देते थे प्रजाको। दण्ड भी क्या, उत्पीड़न करते थे। पंजाबकी दशा और भी बुरी थी। पर सबके उपर एक बात थी। प्रजामें इस आपसकी अशान्ति और भयने कुछ गुण उत्पन्न कर दिये थे—वह वीर, स्वावलम्बी और सहनशक्तिवाली तथा धोंट हो गई थी। इसके सिवा उसके जीवन-निर्वाहकी विधियाँ बहुत सरल थीं। व्यापारिक छलोंकी सृष्टि नहीं हुई थी। खाने-पीने और व्यवहारकी वस्तुएँ खाने-पीने और व्यवहारके ही काममें मुख्य-रूपमें जानी और मानी जाती थीं—धन्धे और कमाईके रूपमे नहीं। बंगालमें प्रख्यात जालिम नवाब शाइस्तखाँके समयमें रुपयेके आठ मन चावल बिकते थे। जिस सिपाहीकी एक रुपयेकी भी तनखा थी वह आठ आनेमें परिवार भरको तर पुलाव खिला कर आठ आने बचा लेता था। सम्राट् अकबरके राज्यमें मजूरकी तनखा दो पैसा रोज, और उत्तम खातीकी सात पैसा रोज थी। परन्तु खाद्य द्रव्य इतने सस्ते थे कि आज मजूर १) रु० रोज और कारीगर ४) रु० कमा कर भी उतना सुखी नहीं रह सकता है।

पाठकोंके कौतुकके लिये यहाँ सारणी देना अनुचित न होगा।

वस्तु,	४० पैसेके एक रुपयेमे कितना अन्न आता था।			मजूरको दो पैसेमे कितना अन्न मिलता		कारीगरको ७ पैसेमें कितना अन्न मिलता।	
	मन	सेर	छ०	सेर	छ०	सेर	छटाँक।
गेहूँ	२	१७	२	४	१०	१६	४
जौ	३	१९	१०	६	१५	२४	४
उत्तम चावल		१०	६	०	८	१	१२
मामूली चावल	१	१५	८	२	१०	९	१२
मूँग	१	२८	८	३	२	१०	१३
उर्द	१	२९	६	३	८	१२	२
मोठ	२	१७	२	४	१०	१६	४
ज्वार	२	३१	०	५	९	१९	९
खाँड	०	८	१०	०	७	१	८
गुड	०	१९	१०	१	०	३	८
घी	०	६	९½	०	५½	१	३
तेल	०	१४	०	०	११	२	६
नमक	१	२९	६	३	८	१२	२

दूध एक रुपयेका १ मनसे अधिक आता था। क्या दो पैसे रोज कमानेवाला मजूर अपनी तनखामे पेट भर कर खाकर ऐसी दशामे कुछ बचा न सकता था?

यदि एक आदमीकी रोजाना खुराक १ सेर पक्का गेहूँ, पावभर दाल, पावभर चावल, छटाँक घी, छटाँक तेल, तोलाभर नमक गिना जाय तो ११ पैसेके गेहूँ, २॥ पैसेकी दाल, ३ के चावल, ४ पैसेका घी, ३॥ पैसेका तेल, धेलेका नमक—इतनेमें पूरा एक महीना गुजारा हो सकता है। ये सब २६॥ पैसे हुए और दो पैसे रोजके हिसाबसे ६० पैसे आमद हुई। ऐसी दशामे यह मजूर दो आदमियोंका पेट मजेमें भर सकता है। बाकी पैसेमे कभी शाक, दूध, मकान, कपड़ा ले सकता था। यह परिस्थिति वर्तमानसे कुछ बुरी न थी।

यह सस्तापन देख कर यूरोपके यात्री टेर्गेने लिखा है कि मजूरी इतनी सस्ती थी कि उनका कुछ भाव ही नहीं कहा जा सकता। साधारण रीतिसे तमाम

राज्यमे वस्तुएँ इतनी सस्ती थीं कि राज्यका प्रत्येक मनुष्य विना कष्टके पेट भर सकता था।

'सन् १८७० में युक्त प्रान्तके गाजीपुर जिलाके भाव लिखते हुए लिखा है कि अकवरका रुपया आजके रुपयेकी वनिस्वत चौगुनी खेतीकी पैदाशको ले खरीद सकता था और १८७० की अपेक्षा १९०१–२में बीस तीस टका भाव बढ़ गया था जिससे गेहूँके भावमें पाँच गुना फर्क दीख पडता है। आजसे ५० वर्ष प्रथम काठियावाड़में बहुतसे नगरोंमें एक रुपयेको ४–५ सेर घी विकता था। वढ़वाणमें संवत् १९२० में रुपयेका ३॥ सेर घी, १४ सेर दाल और १४ सेर आटा मिलता था।

वही देश आज भूखो मर रहा है। सत्रहवीं सदीके प्रारम्भमें भारत पर अँगरेजोंका प्रभाव पड़ा और उसके अन्त तक वह जम गया।

ग्यारहवीं शताब्दीमें २, वारहवींमें १ भी नहीं, तेरहवींमे १, चौदहवींमें ३, पन्द्रहवींमे २, सोलहवींमें ३, सत्रहवींमें ३, अकाल भारतमें पडे। और अठारहवींका आधा काल वीतते वीतते अर्थात् १७४५ तक ४–इस तरह लगभग साढ़े सातसौ वर्षोंमें यहाँ सब मिला कर अठारह अकाल पड़े थे जिनमें अनुमान ५० हजार आदमी मरे। लगभग वे सब स्थानीय थे—देश-व्यापी नहीं। ससार भरमे इन सातसौ वर्षोंमे जितने युद्ध हुए उनमें इससे अधिक आदमी नहीं मरे।

इसके पीछे सन् १७६९ से लेकर १८०० तक ३ अकाल पड़े। और इसके वाद १९ वीं शताब्दीमें १८०० से १८२५ तक कुल २६ वर्षोंमे ५ अकाल पडे जिनमें लगभग ६० लाख आदमी मरे। १८२६ से १८५० तक २ अकाल पड़े जिनमें ५ लाख आदमी मरे। १८५१ से १८७५ तक ६ अकाल पड़े जिनमें ५० लाख आदमी मरे और १८७६ से १९०० तक १८ अकाल पडे जिनमें अनुमानत २ करोड़, ६० लाख आदमी भूखे मर गये!

साधारण आदमी समझते हैं कि अकालोंका होना पानी न वरसनेके कारण है, पर यह भूल है। अकालका कारण किसानोंकी घोर दरिद्रता है जो अँगरेजी राज्य होने पर घुटने टेक कर उनके घरमें घर कर वैठी है। इस वातको वड़े वड़े विद्वान् अँगरेजोंने भी स्वीकार किया है।

एक वार मुझे मेवाडके अन्तर्गत शाहपुरे राज्यमें जाना पड़ा। इन नवीन दिनोमे उस स्थान पर पुरानी झलक थी। मैंने राजत्व और प्राचीन नृपकोंके सम्बन्धमे

बहुतसी बातोंका पता लगाया। एक बूढ़े राजपूतने कहा—राजत्वका अब नाश होगा। राजाके धन्धेमें कुछ तन्त नहीं रह गया। राजाका महकमा ही निकम्मा है। प्रजा जवान हो गई, वह अपनी रक्षामे स्वयं समर्थ है। सृष्टिका बाल-काल बीत गया है। पहले लड़ने और रक्षा करनेको राजा चाहिए थे, अब उनकी जरूरत ही नहीं है। प्रजा उन्हें शीघ्र ही पैन्शन देगी, नहीं तो ये पड़े पड़े माल चीरते चीरते हरामी हुए जाते हैं। उस पुरुषने और भी कहा—प्रथम राजा किसानोंसे मालगुजारीमे नकद पैसा नहीं लेते थे—उपजका भाग लेते थे। थोड़ेमें थोड़ा, बहुतमें बहुत। कर्मचारियोंको वेतनमें अनाज ही मिलता था और जो अनाज बच रहता था वह प्रजाको मोल बेचा जाता था। भाव राजा निकालते थे। वह बहुत सस्ता होता था। लोग वहाँसे खरीदते थे तो बाजारके दूकानदारोंको भी उसी भाव माल बेचना पड़ता था। पर अब नया बंदोबस्त होनेसे नकद रुपया वसूल किया जाने लगा। इससे एक नुकसान तो यह हुआ कि खर्च बढ़ गया, पटवारी और भाव-तोलका महकमा ही अलग बनाना पड़ा और दूसरे—भाव राजाके हाथसे निकल कर दूकानदारोंके हाथमे चला गया। अब वे मनमाना भावसे बेचेंगे, क्योंकि माल उन्हींके हाथमे है।

उसी पुरुषने यह भी कहा कि पहले राजाओंको काममें सरलता थी। कम खर्च था, आय खूब थी। और व्यापारियोंको परिश्रम, खतरा बहुत था। माल लाद कर वर्षों विदेशके कष्ट भोगने पड़ते थे। न रेल थी, न तार, बहुतेरे मर जाते थे—घर लौटते ही न थे। पर अब राजाके लिये तो सौ कठिनता आ गई। खर्च बढ़ गये, आय कम हो गई। और व्यापारियोंके सरल सुभीते निकल आये—गद्दे पर पड़े पड़े केवल तार खुटका कर लाखों कमाते खोते है, सो बाबा! राजत्व कहाँ ठहरेगा—आज या कल राजत्वका विनाश होनेवाला है।

देहाती बूढेकी बातोंमे जो तत्त्व है उसे पाठक स्वयं सोचें।

अंगरेजोंके भारतमें आनेसे प्रथम भारतका व्यापार और शिल्प इतनी अच्छी दशामें था कि दोनों भरपूर एक दूसरेको उत्तेजन देते थे। मुसलमानी राज्यके स्वेच्छाचारोंने, बल्कि अशान्तिकी आगने भी इसमें रत्ती भर भी कमी न होने दी। इसका कारण यह था कि मुसलमान बादशाह बादशाह थे, व्यापारी नहीं थे। उन्होंने हमारे देशको स्वदेश बना लिया था। उनके जो जुल्म थे वे उनकी धर्मान्धताके कारण थे—

उनकी शिक्षा और अभ्यास वैसा ही था। उन जुल्मोंको हम नीचता-पूर्ण नहीं कह सकते, क्रूर अवश्य कह सकते हैं। इसी मूर्खतासे उनके राजत्वका नाश हुआ।

परन्तु ॲगरेजोंके जहाँ जहाँ पैर पड़े शिल्प और व्यापार पर वज्राघात हुआ। यद्यपि ॲगरेज-जाति कुटिल है, पर व्यापार और शिल्पको नाश करनेको इसने क्रूरताका भी अवलम्ब लिया; इतनी क्रूरता जितनी मुसल्मानोंमें भी न थी। उनकी क्रूरतामें धर्मावेश था—शास्त्राज्ञाकी भी गलत समझी थी, पर इनकी क्रूरतामें नीच स्वार्थ और घृणित उद्देश्य था।

यह माना जायगा कि ॲगरेजोंने अध्यवसाय और सहनशीलता तथा दृढ़ताके उदाहरण दिखाये, पर किस लिये? किसी दीनकी रक्षाके लिये नहीं, किसी धार्मिक मामलेमें नहीं, दूसरोंके छप्परमें तापनेके लिये। प्रथम अरबके गँवार व्यापारियोंको मार कर भगाया, स्वयं ग्राहक बनें, धींगा मुश्ती की और पीछे खरीदी वस्तुओंका नमूना बना कर ले गये और अन्तमें बल, छल, विज्ञान और सत्ताके जोर पर देशको आजकी दशाको पहुँचाया। सुई विलायतसे आती है, धोती जोड़े, मलमल, छींट विलायतसे आती है।

प्रत्येक वस्तु—लिखनेकी कलम, दवात, स्याही तक—विलायतसे आती है। बर्तन भी विलायतसे आते हैं। केसर भी विलायतसे आती है। सब कुछ विलायतसे आता है। स्त्रियाँ केवल भारतकी ही रहती हैं। यदि वे भी विलायतसे आने लगें तो हिन्दुत्व समाप्त हो जाय और भारतका अतीत एक कहानी मात्र रह जाय। ईश्वरकी दयासे अब विलायतसे स्त्रियाँ भी आने लगी हैं और अपने काले चमड़ेकी परवा न कर हम सब साहब तो बन ही गये हैं।

यह बात कही जा सकती है कि प्राचीन फुटकर शिल्प यदि नष्ट हो गया है तो भी नया विलायती ढंगका शिल्प ॲगरेजोंके राज्यत्वमें बराबर ऊँचा चढ़ रहा है। अब यदि करघे नहीं हैं तो बड़ी बड़ी मिलें कपड़े तैयार कर रही हैं। अब यदि छोटी छोटी दूकानें छापने, घड़ने और दूसरे काम करनेको नहीं हैं तो बड़े बड़े कारखानें हैं। बाहरी दृष्टिसे देखने पर इसकी परिस्थिति मालूम नहीं पड़ती, पर सच पूछो तो ये मिल-सदृश भीमकाय राक्षसगृह कारीगरीको उत्तेजन देनेवाले नहीं, कारीगरोंका सर्व-नाश करनेवाले हैं। माना कि कपड़ेकी मिलोंमें कपड़ा यहीं बनता है। पर इसने उत्तेजन विलायती कारीगरको मिला जिसने मशीन बनाई और आमद इस धनीको

उत्तरमें—सयुक्त प्रान्त, मध्य-देश, काश्मीर, राजपूताना, मध्यभारत, पंजाव, सीमा प्रान्त शामिल हैं। यहाँ राल, धूप, लाह, तेलहन, इत्र, सावुन, मोमवत्ती, कत्था, हर्रा, वहेड़ा, रुई, रेशम, ऊन, चमडा, दरी, गेहूँ, अफीम, चाय, शीशम, देवदारु, जस्ता, ताम्वा, नमक, शोरा, सुहागा इत्यादि द्रव्य पाये जाते और उपजते हैं। दस्तकारीमें टीनके सामान, लाहसे रंगे धातुके सामान, पत्थर खोदनेके सामान, ताम्वे पीतलके सामान, फौलादी सामान, पत्थर खोदने काटनेको मिट्टीका काम, लकड़ी, हाथीदाँत, चमडेका काम, रंगाई, छपाई, रुई, रेशम, उनके कपड़े—शाल, दुशाला, दरी, जाजम कालीन इत्यादि मशहूर हैं।

पश्चिम भारतमें—वम्बई अहाता, वरार और वलोचिस्तान हैं। यहाँ गोंद, तेलहन, रुई, अन्न, चमडा, जड़ी-बूटी, नमक, गेहूँ पैदा होता है, सोना-चाँदीके सामान, लकड़ी, सींग, चमडे, रुई, ऊन तथा जरदोजीकी कारीगरी प्रसिद्ध है। दक्षिण भारतमें—मद्रास, मैसूर, निजाम हैदरावाद और कुर्ग है। यहाँ तेलहन, घी, चर्वी, नील, रुई, नारियलके छिलकेका सामान, हाथीदाँत, चमड़ा, चाय, मिर्च, दालचीनी, चावल, चन्दन, मोती, सोना, सीसा इत्यादि द्रव्य पाये जाते हैं। दस्तकारीमें सोना-चाँदी, ताम्वा, पीतलकी कारीगरी, पत्थर, लकड, हाथीदाँतका काम, कपड़ा रंगना, छापना, रेशमी कपड़ा वुनना और चिकन तथा कारचोवीका काम मशहूर है।

वर्मामें रवर, वार्निश, लाह, कत्था, चावल, सागवानकी लकड़ी, टीन आदि होता है। दस्तकारीमें लोहा, सोना, ताम्वा, पीतलके सामान, हाथीदाँत, लाह और शीशेके सामान अच्छे वनते हैं।

ऊपरके विवरणोंसे पता लगेगा कि वंगाल-विहारमें कृषिजात द्रव्योंकी प्रचुरता है पर दस्तकारीकी कमी है। पश्चिम भारतमें उत्पन्न द्रव्यों तथा कारीगरी दोनोंकी कमी है। पर दक्षिण भारतमें फिर भी प्रचुरता है। वर्मामें हुनर बहुत है। उत्तर भारतमें भी कारीगरीकी कमी नहीं है। पर सबसे प्रथम ईस्ट-इन्डिया-कम्पनीने और उसके पीछे ब्रिटिश गवर्नमेंटने और अब साम्राज्यवाले व्यापारियोंने इस वात पर वड़ा जोर दिया है कि भारत कच्चा माल सामान तैयार होनेके लिये विदेश भेजे और वना हुआ माल साम्राज्यमें उत्तम कह कर खरीदे। जैसा मेकालेने कहा था कि अँगरेजी उद्योग-धन्धोंका आश्चर्य-जनक विस्तार और भारतकी दरिद्रता दोनों सम-सामायिक हैं। औद्योगिक कमीशनके सामने एक गवाहने कहा था कि भारतको

बाहरवालोंके लिये पैदावार बढ़ानी चाहिए अर्थात् ईस्ट-इन्डिया-कम्पनीके शब्दोंमे उसे बाहर भेजनेके लिये कच्चा माल पैदा करनेका क्षेत्र बनना चाहिए।

अभागे भारतने भी इसी पर सन्तोष किया और उसे विश्वास हो गया कि वह कृषि-प्रधान देश है, वह कच्चा माल तैयार करनेके ही योग्य है। तिस पर भी तुर्रा यह कि कच्चे मालके व्यापारका भी बहुतसा अधिकार विदेशियोंके हाथमें चला गया। पच्छिमी समुद्र-तलका नारियल तथा उसके देशोंका कारबार, अबरखकी खानें, कुल कच्चा चमड़ा जर्मनीके हाथमें था। और भी मजा देखिये कि वैज्ञानिक कृषिके कुछ ऐसे परीक्षणोंका फल भारतकी माँग नहीं इंग्लैण्डकी माँग पूरी करनेके लिये प्रयत्न किये जाते हैं। भारत छोटे धागेकी कपास पैदा करता है और उसके करघोंके लिये वह उपयुक्त है, परन्तु लकाशायरको लम्बे धागोंकी कपास चाहिए और उसकी यथेष्ट पूर्ति अमेरिका और मिश्र नहीं कर सकता इस लिये भारतमे लम्बे धागेकी कपास पैदा होनेका प्रयत्न किया जा रहा है।

इधर यह हमारी उपज पराई भीम आकांक्षाओकी पूर्तिके लिये उपयुक्त बनाई जाती है। उधर तैयार मालके बनानेवाले विदेशी सरकारको चुंगीकी घूंस देकर मजेमे डाका मार रहे हैं। जब मैं जापानके निकम्मे सामानको हिन्दुस्तानके बाजारोंमें घरा पाता हूँ तो कलेजेमें आग लग जाती है। भगवान्‌ने आज यह दिन भी दिये कि बेचारा जापान भी इस योग्य हुआ कि भारतके बच्चोंको वस्त्र और सामान दे!

अबसे केवल १००,१५० वर्ष प्रथम भारतवर्षका व्यवसाय कितना बड़ा चढा था। रेल उन दिनों नहीं थी, पर भारतका माल अफगानिस्तान, परशियाकी राहसे होता हुआ कारवान द्वारा यूरोप पहुँचता था। ढाके और चन्देरीकी मलमलकी सम्पूर्ण ससारमे धूम थी। यूरोपके बडे बडे वैज्ञानिक जो आजकल अपने ईश्वर होनेकी डींग मारते हैं, लिवरपूल और मैंचेस्टरकी मिल खुलनेसे पहले भारतवर्षके देव-देवियों द्वारा बनी मल्मल अथवा वस्त्रोंसे शरीरको अलंकृत करके अहोभाग्य मानते थे। रोमके बादशाह अगस्टस सीजरके जमानेमें रोमकी रानियोंको ढाकेकी मल्मलके आगे कुछ भाता न था। पतनके समयमें डाक्टर टेलरने ढाकेमे ऐसा बारीक सूत देखा था जो लम्बाईमें १३४९ गज था, पर तौलमे केवल २२ ग्रेन था। इस हिसाबसे १ पौंड रूईमें २५० मील लम्बा सूत बन सकता था। यह सूत आजकलके हिसाबसे ५२४

नम्बरका होता है। यह सूत बिना मशीनके मामूली सीधे सादे तकुरावाले लकड़ीके चरखोंने ही बनाया जाता था। यह सब शिल्प और व्यापार क्या हुआ? इन सत्यानाशके कारण अत्याचार-परिपूर्ण है। इंग्लैण्ड पर भारतीय माल पर बड़े बड़े कर लगाये गये और भारतीय वस्त्र पहननेवालोंको कड़ा दण्ड देनेके लिये कानून बनाये गये। राज-दर्बारमें भारतीय वस्त्र पहन कर जानेकी सख्त मुमानियत कर दी गई। इस प्रकार भारतकी रक्षाके बहाने आकर अँगरेजोंने भारतके शिल्प और वाणिज्यकी हत्या की। बंगालके जुलाहो पर इतना अत्याचार हुआ कि वे अपने अपने अँगूठे काट कर देहातोंमें बस गये। इस कलाको नष्ट करनेमें युक्त और अयुक्त सभी उपायोंका अवलम्बन किया गया। परिणाम क्या हुआ कि मैंचेस्टर और लिवरपूलका भाग्य जाग उठा। सरकारने इन्हें वैध अवैध सब तरहकी सहायता दी। आज वे जीत गये—भारतका कपड़ेका बाजार विलायती कपड़ोंसे भर गया। आज प्रति वर्ष कोई ६० करोड़ रुपयेका कपड़ा विलायतसे आता है। समय है!!

भारतमें अँगरेजी सरकारकी असाधारण स्थितिकी प्रधान विशेषता यह है कि निरन्तर उन्नति करनेवाली सरकार हो। अब यह देखना है कि वास्तवमें ऐसा है या नहीं। प्रथम यह देखना है कि अँगरेजी सरकारने हमारी नैतिक और भौतिक उन्नतिके लिये क्या किया है? जो उपाय उसने अपने अस्तित्वको बनाये रखनेके लिये आवश्यक समझे उनकी इसमे गिनती नहीं हो सकती। उन उपायोंमें रेल, तार और तरह तरहके अन्य कार्य है। ये कार्य वास्तवमें सरकारने प्रजाकी उन्नतिके लिये नहीं बनाये और इन्होंने प्रजाका अन्तमें नाश किया और प्रजाकी नस नसको तोड दिया। समुद्रमे एक जीव होता है। जिसके अनेकों बाहु होते है और वह अपने शिकारको छातीसे पकड कर चिपटा लेता है और चूस कर छोड देता है। यह रेल वही भयकर जीव है। सारे देशका सत्व इसने खींच लिया और हजारों सक्रामक रोगोंकी इसने उत्पत्ति की। यही दशा तार और डाक आदिकी है जिसकी उपयोगिताकी युद्धके कालमें पोल खुल गई। जब खुल्लम-खुल्ला कह दिया गया कि इन विभागोंको जब सरकारी कामसे छुट्टी होगी तब प्रजाका काम किया जायगा। मानो प्रजाकी जरूरत कुछ आवश्यक थी ही नहीं। प्रजाके लिये कोई उत्तम सरकार जो काम कर सकती थी-वे इस तरहके होते कि वह स्वास्थ्य, शिक्षा तथा कृषि-सम्बन्धी उन्नतिके उत्तम उपायोंका अवलम्बन करती, स्थानिक कार्योंमें प्रजाका प्राधान्य स्वीकार करती और कौन्सिलोमे जहाँ नीतियों पर विचार होता है हमें स्थान देती।

कहनेको यह कहा जा सकता है कि उसने ऐसा किया है—स्वास्थ्यके विभाग और भीमकाय अस्पताल खोले हैं। म्युनिसिपालिटीमें स्वाधीन चुनावका अधिकार दिया है और कौन्सिलोंमें हमारे भाइयोंको कुर्सी दी है। परन्तु वास्तवमें वह सब भुस-पर लीपनेके समान निस्सार है।

प्रथम शिक्षाकी बात पर विचार करें। फी सदी २·८ बच्चोंको शिक्षा मिल रही है। शिक्षा-तत्त्वज्ञोंका मत है कि जिन्हें चार वर्षसे कम शिक्षा मिलती है वे थोड़े दिनोंमें सब भूल जाते हैं। ब्रिटिश भारतके १९१४–१५ के एजूकेशनल स्टेटिस्टिक्स, या शिक्षा-सम्बन्धी आँकड़ोंसे हमे मालूम होता है कि ६३, ३३, ६६८ लडकों और ११, २८, ३६३ लड़कियों अर्थात् कुल ७४, ६२, ०३१ बच्चोंको शिक्षा मिल रही है। इनमे ५४, ३, ७५६ बच्चोंने लोअर प्राइमरीसे अधिक शिक्षा नहीं पाई। और इनमें १६, ८०, ५३१ तो पढ़ भी नहीं सकते थे। यदि ये आँकड़े बाद दे दिये जायँ तो २०, २७, ५५५ ही बच्चे ऐसे बचते हैं जिन्हें कुछ काम-की शिक्षा मिल रही है और यह फी सैकड़े ८३ उतरती है जो अत्यन्त भयानक है।

५५ लाख विद्यार्थियोंकी शिक्षाके लिये जितना धन खर्च किया जाता है वह समुद्रमें फेंक देनेके बराबर है। १९१५ के अन्तमे स्कूल जाने योग्य अवस्थाके फी सैकड़े २·४ लडके स्कूलोंमें पढ़ते थे। १९१३ ई० में भारत सरकारने विद्यार्थियोंकी सख्या ४५ लाख बताई। इतना काम ५९ वर्षोंमें हुआ था। वर्षोंकी यह गणना १८५४ ई० से की गई है। जब सर चार्ल्स उडने शिक्षा-सम्बन्धी खरीता भेजा था और जिसके फल-स्वरूप शिक्षा-विभाग बना था। सन् १८७० ई० में ग्रेट ब्रिटेनमे एजूकेशन एक्ट पास हुआ। उस समय इंग्लैण्डमे शिक्षाकी वही अवस्था थी जो आज दिन भारतमे है। इंग्लैण्डमे १८३३ से शिक्षाके प्रचारके लिये धनकी सहायता मुख्य कर चर्च स्कूलोंको दी जाने लगी। १८७० और १८८१ के बीच शिक्षा शुल्क-रहित और अनिवार्य की गई और १२ वर्षोंमें ही औसत फी सैकड़ा ४३ ३ से बढ़कर प्राय· सौमें १०० हो गया। इस समय इंग्लैण्ड और वेल्सकी ४ करोड़की बस्तीमे स्कूलोंमे जानेवाले बच्चोंकी सख्या ६० लाख है। जापानमें १८७२ के पहले स्कूल जाने योग्य बच्चोमे फी सैकड़े २८ स्कूलोंमें पढते थे। जो प्राय· हमारे इस समयके औसतसे ८ फी सैकडे अधिक थे। २४ वर्षोंमें औसत बढ़कर ९२ हो गई और २८ वर्षोंमे शिक्षा शुल्क-रहित और अनिवार्य की गई।

वड़ोदा राज्यमें शिक्षा शुल्क-राहित और अनेक अंशोमे अनिवार्य है। और लड़कोंकी औसत सौमें सौ है । ट्रावनकोरमे लड़कोंकी औसत फी सैकडा ८१·१ और लड़कियोंकी ३३·२ है। मैसूरमे लड़कोकी ४५·८ और लड़कियोंकी ९·७ फी सदी है।

स्कूल जाने योग्य अवस्थाके प्रत्येक वच्चेकी शिक्षाके लिये वड़ौदा ।≈)॥ खर्च करता है और व्रिटिश भारत ≡)।। १८८२ और १९०७ के वीच शिक्षा-व्ययमें ५७ लाखकी वृद्धि की गई। इतने दिनोंमें भूमि-करमें ८ करोड़, सैनिक-व्ययमें १३ करोड, असैनिक व्ययमें ८ करोडकी अधिकता हुई। और रेलोंके लिये पूँजी-रूपसे १५ करोड रुपये खर्च किये गये। इन आँकड़ो पर स्वर्गीय गोखलेने एक वार व्यंगोक्ति करते हुए हिसाव लगा कर वताया था कि यदि जन-संख्या न वढ़ी तो अवसे ११५ वर्ष वाद प्रत्येक लड़का और ६६५ वर्ष वाद प्रत्येक लडकी स्कूलमें होगी।

अव स्वास्थ्य-सुधारकी वातको लीजिये। प्लेग, हैजा और मलेरियाके प्राधान्यसे पता चलता है कि शहर और देहात सर्वत्र स्वास्थ्य-सुधार-प्रवन्धका अभाव है। भारतमे प्रत्येक मनुष्यकी परमायुका औसत बहुत ही कम अर्थात् २३·५ होनेके कारणोंमें यह अभाव भी एक कारण है। इंग्लैण्डमे परमायु ४०, न्यूजीलैन्डमे ६० वर्ष है। रोगोंकी चिकित्साके मार्गमें मुख्य कठिनाइयाँ ये हैं कि विदेशी चिकित्सा-प्रणालीको-विशेष कर गाँवोंमें-उत्तेजन दिया जाता है। और भारतीय चिकित्सा-पद्धतिको कोई सहायता नहीं दी जाती । सरकारी अस्पताल, सरकारी दवाखाने और सरकारी डाक्टर सभी विदेशी चिकित्सा-पद्धतिवाले होने चाहिए । आयुर्वेदिक और यूनानी दवाएँ, अस्पताल, दवाखाने तथा वैद्य, हकीम मान्य नहीं समझे जाते। और वैद्यक तथा आयुर्वेदिक, यूनानी पद्धतियोंके चिकित्सकोकी सहायता करना 'निन्द्य' समझा जाता है। ट्रावनकोर राज्य ७२ वैद्य-शालाओंको सहायता दे रहा है। उनमें १९१४–१५ में ऐलोपैथिक अस्पतालोंकी अपेक्षा २२ हजार अधिक रोगियोंकी चिकित्सा की गई थी। सरकार यह भली भाँति जानती है कि वह ऐलोपैथी दवा और डाक्टरोको अपनी देहाती प्रजाकी सहायताके लिये पहुँचानेमें पूर्ण असमर्थ है। और यह भी उससे छिपा नहीं है कि उसकी फी सदी ९५ प्रजाको वैद्य, हकीम देशी पद्धतिसे बहुत ही सस्तेमें आरोग्य-दान करते हैं। फिर भी वह उनको योग्य वनाने या और कोई सहायता देनेमें वरावर लापरवाही दिखाती रही है। वैज्ञानिक ससार वरावर ऐलोपैथीको अप्राकृत, भ्रान्त और स्वास्थ्य-रक्षामे असमर्थ सावित कर रहा है,

पर सरकार उसी पर प्रजाकी जान और स्वास्थ्यका उत्तरदायित्व सौंप कर निश्चिन्त वैठी है।'

कृषिकी बात और भी गम्भीर है। १९११ की मनुष्य-गणनामे २१ करोड, ८३ लाख किसान बताये गये हैं। किसानोंकी भयंकर दरिद्रताकी बात सभी पर विदित है। सर दीनशाह वाछा उनके दिनो दिन बढ़ते ऋण-भार पर गत २० वर्षोंसे बरावर चिल्लाते रहे हैं तो भी ऋण बढ़नेके साथ ही साथ करमें वृद्धि हो रही है। अभी जैसा कहा गया है—२५ वर्षोंमे मालगुजारीमे ८ करोड रुपये बढ़े हैं। इसके सिवा स्थानिक कर, नमक आदि पर और भी कितने ही कर हैं। नमकका कर गरीब लोगोंको बहुत बड़े कष्टका कारण है। पिछले बजटमें ९० लाख रुपये बढ़ाया गया था। इस दरिद्रताका अवश्यम्भावी परिणाम यह हुआ है कि लोगोंको बुरे खाद्य खाने पडते हैं जिसके कारण उनकी जीवन-शक्ति कम हो गई है और वे रोगोंका सामना नहीं कर सकते। उनकी आयु क्षीण हो गई है और बालकोंकी मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ गई है। सर चारल्स ईलियटके कथनानुसार ७ करोड़ औ र और सर विलियम हंटरके कथनानुसार ४ करोड़ मनुष्योंको जीवन भरमे एक समय भोजन कर दिन बिताना पड़ता है। यदि ॲंगरेजोंके १०० वर्ष शासन करनेके बाद भी यही दशा है तो ॲंगरेज यह दावा नहीं कर सकते कि भारतमे उनका उद्देश्य भारतवासियोंका हित करना है।

किसानोंके अनेक कष्ट हैं। गाँवके निवासियोंकी कठिनाइयोंसे अनभिज्ञ कानून बनानेवालोने जगलके जो कानून बनाये हैं उनसे किसानोको बडे कष्ट झेलने पडते हैं और कुछ ही स्थानो पर जंगल-सम्बन्धी पंचायते बनी हैं। जहाँ परीक्षा की गई है वहाँ उनका परिणाम अच्छा हुआ है और कहीं कहीं तो बहुत ही अच्छा हुआ है। उनके पशुओंके लिये गोचर-भूमिकी कमी, कम उपजाऊ खेतोंके लिये हरी खादका अभाव, जंगलोंके चारों ओर बाड़ेका न होना जिसके कारण चरते हुए पशुओंके भटक जानेसे उनका काजी-हाउसमें पडना और फिर उन्हें दाम देकर छुडाना, ऐसे अपराधोंके लिये दण्ड और जुर्माना भुगतना जिन्हें वे बिल्कुल नहीं समझते हैं, औजारों और उनकी मरम्मतके लिये लकड़ी तथा ईंधनका अभाव, पानीका अनिश्चित विभाग—ये ऐसे कष्ट हैं जिनके सम्बन्धमें गाँवों और स्थानिक परिषदोंमें विचार हुआ करते हैं। आर्म्स-एक्टके कारण जगली जानवरो और

जंगली आदमियोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये उनके पास शस्त्र न होनेसे
उन्हें बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं । न्याय और शासन-विभागोंके एक होनेके कारण
प्राय: न्याय पाना दुर्लभ होता है । और सदा बहुत अधिक समय और धनकी
आवश्यकता हुआ करती है । गाँवोंके सरकारी कर्मचारी ग्रामवासियोंके बदले
स्वभावत: तहसीलदारों तथा कलक्टरोंको प्रसन्न करनेका प्रयत्न किया करते हैं ।
क्योंकि वे ग्रामवासियोंके सामने किसी तरह उत्तरदाता नहीं हैं । दो पक्षोंमें
कलह बढ़ता है, क्योंकि उन दोनोंको एक तीसरे व्यक्तिकी शरण लेनी पड़ती
है । वह यदि उच्च पद पर है तो उसकी ठकुर-सुहाती करके और यदि निम्न पदस्थ
है तो घूँस दे कर खातिर की जा सकती है । और दोनों अवस्थाओंमें हाथ जोड़ने,
दीन वचन कहने तथा उसकी प्रशंसासे कृपा प्राप्त की जा सकती है ।

सभी समृद्ध देवतोंमे कृषिके साथ ही शिल्पकलाका भी स्थान है और एकको
दूसरीसे परस्पर सहायता मिल सकती है । आयलैण्डकी अत्यन्त दरिद्रता, तथा
बाहर जा बसनेके कारण आधेसे अधिक उसकी जनताका ह्रास, ग्रेट ब्रिटेन द्वारा
उसके ऊनी व्यापारके नाश तथा उसके फल-स्वरूप केवल खेती पर उसके अव-
लम्बनके प्रत्यक्ष परिणाम थे । वैसे ही कारणसे, वैसा ही पर उससे बहुत बडा दृश्य यहाँ
भी उपस्थित हुआ है । यहाँ भारतके लिये एक नया और बड़ा परिवर्तन यह हो
रहा है कि भूमि-रहित श्रेणीके लोगोंकी वृद्धि हो रही है जिससे आर्थिक
संकट उपस्थित होनेका भय है । यह बात इम्पीरियल गजेटयरमे १८९१ और
१९०१ की जन-संख्याओंकी रिपोर्टोंकी तुलनामें कही गई है । मेहनत मजूरी करने
वाले साधारण मजूर खेतोंके काममे केवल फसलके वक्त ही रक्खे जाते हैं और
जब खेतीके कामकी भीड़ नहीं होती तब कुछ लोग व्यापारिक केन्द्रोंमे अस्थायी
रूपसे काम करने लगते हैं । फसल कटनेके समय आयरिश मजूरोंकी इंग्लैण्डमें
बड़ी भरमार हो जाती है ।

एक व्याख्यानमें स्वर्गीय गोखलेने कहा था—

"इंग्लैंडकी वार्षिक आयके औसतका अनुमान फी आदमी ४२ पौण्ड है । हमारे
यहाँ एक मनुष्यकी वार्षिक आयका औसत सरकारी अनुमानसे २ पौण्ड और गैर-
सरकारी अनुमानसे १ पौण्ड है । इंग्लैंड आदमी पीछे गैर देशोंसे १३ पौण्डका
माल मँगाता है और हम ५ शिलिंगका । इंग्लैण्डकी सेविंग बैंकमें कुल १४ करोड़,

८० लाख पौण्ड, ट्रस्टीज सेविंग बैंकोमें ५ करोड़ २० लाख पौण्ड जमा हैं। पर वहाँसे सतगुने आदमी होने पर भी हमारे सेविंग बैंकोमें केवल ७० लाख पौण्ड जमा है । इसमे दशांशसे कुछ अधिक भाग यूरोपियनोका है। आपके यहाँ ज्वाइण्ट स्टाक कम्पनियोंकी कुल बसूल हुई पूँजी कोई १ करोड़ ९० लाख पौण्ड है और हमारी पूँजी २ करोड़ ६० लाख पौण्ड भी नहीं है। और इसमे भी अधिकांश यूरोपियनोंकी है । हमारे देशके फी सैकड़े ८० लोग खेती पर वसर करते हैं और कुछ समयसे खेती भी धीरे धीरे बर्बाद हो रही है । भारतीय किसान इतने गरीब और ऋणी हैं कि वे खेतीकी पैदावार बढानेके लिये रुपया नहीं खर्च कर सकते। जिसका फल यह हुआ है कि भारतके एक बड़े भागमे खेतीकी—जैसा कि सर जेम्स केवर्डने २५ वर्षसे प्रथम कहा था कि वह भूमिके निर्बीज करनेका साधन हो रही है—उपज नियमित रूपसे घटती जा रही है और जहाँ इग्लैण्डमे फी एकड कोई ३० बुशल नाज पैदा होता है वहाँ भारतमें प्राय ८–९ बुशल होता है। ”

इन कारणोंको देखते यह मुक्तकण्ठसे कहा जा सकता है अँगरेज सरकार प्रजाको शिक्षा, स्वास्थ्य तथा समृद्धि देनेमें अयोग्य प्रमाणित हुई है। अब स्थानिक स्वराज्यकी बात देखिये। लार्ड मेयोके समय (१८६९–७२)अधिकार विभागके लिये—जिसे कीनने ‘ होमरूल’ (!) कहा है—कुछ चेष्टा की गई । और उनकी नीति अर्थ-सम्बन्धी अधिकार विभागकी न थी। लार्ड रिपनके समय भी कुछ प्रयत्न किये गये । और उनके प्रयत्नको कीनने होमरूलके कीटाणु प्रवेश करना ‘जान डालना’ बताया था।

कौन्सिलोके सम्बन्धमें एक सदस्यने कहा था कि वे “ग्लोरी फाइड डिबेटिंग सोसाइटी” (गौरव-युक्त वादानुवादकारिणी सभा) हैं । भारतीय सदस्योंके प्रस्ताव-सशोधनकी युक्तियोंकी जो दुर्गति—अवहेलना—लाञ्छना इन कौन्सिलोंमें होती है, उसे देखते ही मैं यह सोचते सोचते हैरान होता हूँ कि कैसे निर्लज्ज वे सज्जन हैं जो इतनी दुतकार फटकार तिरस्कार पाने पर वहीं जमे रहते हैं।

पब्लिक सार्विसमें भर्तियोंके विषयमे कमीशनकी रिपोर्ट ही काफी है। इन सबसे अधिक विचारणीय विषय एक और है। वह शासन व्ययकी भयंकर वृद्धि है। सन् १९१७ का राजस्व अनुमान ८ करोड़, ६१ लाख, ९९ हजार, ६ सौ पौण्ड था और खर्च ८ करोड़, ५५ लाख, ७२ हजार, १०० पौण्ड था।

यह अँगरेजी सुगठित शासनकी भीतरी दशा है जिस पर गंभीर विचार करनेसे प्रत्येक व्यक्ति अच्छी तरह समझ जायगा कि 'अँगरेजी शासन भारतके लिये श्रेयस्कर नहीं है और भारतका उससे इस ढंगसे कभी श्रेय न होगा ।'

सरकारी अफसर जिनके हाथमें शासनकी पूरी पूरी लगाम है और रिपोर्ट तैयार करने तथा नित्यके कामोंमें वर्षों अभ्याससे दक्ष हो गये हैं, उनके दिमागका यही ताना-वाना है, यही उनका धन्धा है । वहुधा उनके निजू विचार कुछ नहीं हैं । वे दूसरोंके विचारोंको प्रकट मात्र करते हैं । अपरीक्षित विचार उन्हें पसन्द नहीं आते और हुकूमतकी गाडीको ठीक ठीक चलाने तथा उसके वाहरी कल-पुर्जोंको मॉज कर चमकीले वनाये रखनेको वे अपनी सवसे वढ कर सेवा समझते हैं । उन्हें कमसे कम यह दृढ इच्छा रहती है कि मेरा कार्य साफ-सुथरा रहे और उसमें कोई त्रुटि न होने पावे । जव नई वातोंके सम्वन्धमें सम्मति देनेको वह दवाया जाता है तव वह यह करनेके वदले कि उनका जनताके जीवन और उन्नति पर क्या प्रभाव होगा, सवसे प्रथम यह देखता है कि सरकारी अफसरोंको उससे क्या सुभीते होगे और उनके अधिकारो पर उनका क्या प्रभाव पडेगा । ये लोग पुराने महन्तों और ठाकुरोंकी तरह सर्व-साधारणकी उन्नतिके कामोंमें अनुराग दिखानेको उत्सुक रहते हैं—पर शर्त यह है कि वे उद्भावना न दिखावें और उसके या उसकी आज्ञाके विरुद्ध कोई कार्य न करें । इस शर्तमें वहुत कुछ है । अपना निर्णय प्रायः ईश्वरीय समझ कर वह उस अधिकारी-मण्डलको जिसका वह अग भी है, पवित्र समझता है । ये लोगोंकी तभी तक उपेक्षा करते जाते हैं जव तक वे अपना काम चुपचाप किये जाते और राज्य-सम्वंधी वडे वड़े कार्योंमें हस्ताक्षेप नहीं करते । उनकी वातों पर लोग अधिकसे अधिक नम्रता और अधीनता-पूर्वक अपनी सम्मति मात्र दे सकते हैं । इससे अधिक कुछ नहीं । मतलव यह है कि ये सुयोग्य (?) पुरुष पुरुषोचित स्वतन्त्रता और राजद्रोहमें कोई भेद नहीं समझते । प्रायः समस्त अधिकारी-मण्डलकी ऐसी धारणा है कि हिन्दुस्तानी या तो वागी हैं या डरपोक हैं ।

ब्रिटिश भारतमे २७ करोड़ और देशी राजोंमें ३ करोड़ मनुष्य वसते हैं और देश भरमे केवल कोई १। लाख अँगरेज कुल मिला कर हैं । इनमें वहुतेरे गैर-सरकारी अर्थात् व्यवसाई हैं जिन्हें गैर सरकारी एंग्लो-इन्डियन कहते हैं । ये लोग अन्य कामोंमें लगे रहनेके कारण राजनीतिमें नहीं पडते । पर जव भारतीयोंके

मनमे ऐसे परिवर्तनोंकी कोई आशा उत्पन्न होती है जो राष्ट्रको वास्तवमें लाभ पहुँचानेवाली हो तो ये तुरन्त राजनीतिके मैदानमें आ धमकते हैं। जान स्टुअर्ट मिलने कहा था—

"शासक जातिके जो लोग धन कमानेके लिये विदेश जाते हैं उन्हें सबसे कड़े बन्धनमें रखनेकी आवश्यकता होती है। वे भी सदा गवर्नमेंटकी मुख्य कठिनाइयाँ हैं—प्रताप और विजयी राष्ट्रके तिरस्कार-पूर्ण उद्धततासे फूले रहनेके कारण उनके भाव अनियन्त्रित शक्ति-जनित तथा उत्तरदायित्व-शून्य होते हैं।" इसी प्रकार सर जान लारेन्सने कहा था—

"इन मामलोंमें न्याय-पूर्वक काम करनेके लिये भारत-सरकारके मार्गमें बडी भारी कठिनाइयाँ हैं। यदि देशवासियोंको सहायता देनेके लिये कोई काम किया या करनेका प्रयत्न किया जाता है तो चारों ओरसे कोलाहल मच जाता है और वह इंग्लैण्डमें जा गुँजाता है जहाँ उसे लोगोंकी सहायता और सहानुभूति प्राप्त होती है। कभी कभी तो मैं ऐसे चक्करमे पड जाता हूँ कि यही नहीं मालूम होता कि क्या करना चाहिए। यों तो सभी न्याय, सरलता तथा ऐसे ही उत्तम गुणोंके पक्षपाती होते हैं, पर जब ऐसे सिद्धान्तोंके प्रयोगसे किसीकी स्वार्थ-हानि होती है तो उससे उन विचारोंमें परिवर्तन हो जाता है।"

कभी कभी उस सिद्धान्तके प्रयोगमें भारतमें बसे हुए मुट्ठीभर अँगरेज विरोध कर बैठते हैं जिन्होंने शासनसे सम्बन्ध न रहने पर समाज विशेषका दावा किया है; जब कि उनका शासनसे कोई सम्बन्ध नहीं था। यह दावा केवल देशकी अवस्थाओंके कारण नहीं, बल्के विषय-विशेषके सम्बन्धमे भी था। कदाचित् यह स्वाभाविक ही था कि जाति-प्रधान देशमें शासकोके भाई-बन्द लार्ड लिटिनके कथनानुसार "गोरे ब्राह्मण" बन जायँ। और यह तो वास्तवमें निश्चित है कि जात्याभिमान तथा पच्छिमी सभ्यताने उनमें एक प्रकारकी श्रेष्ठताका भाव उत्पन्न कर दिया है जिसका प्रकट होना बुरा ही नहीं है, विपज्जनक भी, है—यदि सरकारी उत्तरदायित्वके संयोगसे उस भावमे साम्य न आ जाय।

किन्तु यह बात सच्ची है कि समस्त गोरी जातिकी श्रेष्ठता परसे भारत वासियोंका विश्वास उठ गया है। इस विश्वास-नाशका आरम्भ महर्षि दयानन्दने किया था। इस गौरवान्वित पुरुषने भारतीय जनतामे अपनी सभ्यताके महत्त्व तथा अपने अतीत काल पर अभिमान रखते हुए वर्तमान कालमें आत्म-प्रतिष्ठा और

भविष्यत् पर आत्म-विश्वासका ज्ञान उत्पन्न करनेके लिये प्रयत्न किया, उन्होंने सभी बातोंमें पच्छिमकी नकल करनेकी हानिकारिणी प्रवृत्ति नष्ट कर दी और भारतीयोंको विवेक सिखाया कि आँख मूँद कर सभी पच्छिमी नकल करनेके बदले उसके उत्तम विचार और कार्योंकी नकल यदि कर सकते हो तो करो । उसके बाद स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थने पच्छिमी सभ्यताका यह घमण्ड प्रत्यक्ष तोड़ दिया कि गोरी जाति श्रेष्ठ और गुरु है । इन भारतीय साधुओंके चरणोंमें यूरोपका विज्ञान झुक गया—और पैर चूमने लगा ।

इसके साथ ही यूरोपमे संस्कृतके पण्डित उत्पन्न हुए । उन्होंने खुले दिलसे उस साहित्यकी उत्कट प्रशंसा की । उसके पीछे ही जापानने रूसको पछाड़ा । यह एक चौकन्नी करनेवाली बात थी कि यूरोपकी एक बड़ी भारी शक्तिका सामना पूर्वकी एक क्षुद्र जातिसे हो और उसमें वह हार खा बैठे ? उसके पीछे यूरोपीय महा-समरकी राक्षसी रक्त-पिपासा, विजयी सघका निन्द्य स्वार्थ-पूर्ण बन्दर-बाँट, और परस्परके स्वार्थ पर तुच्छता प्रकटन आदि कारणोसे हम समझ गये हैं कि यूरोपका ईसाईपनका ढोंग केवल छल है और सभ्यताकी इतनी लम्बी चौड़ी डींग बहुत ही पतला मुलम्मा है ।

इन सबसे भी अधिक तुच्छताकी बात यह हुई है कि इंग्लैंडने बराबर स्वाधीनता और राष्ट्रीयता तथा न्यायके सिन्धान्तोंके विषयमे गाल बजाया । उनकी यथार्थता और उनके पृष्ठ-पोषकोंकी सत्यताके सन्देहका पर्दा अब फट गया है । कुछ दिन हुए सर जेम्स मेस्टनने कहा था कि मैंने इतने समयके अनुभवमे भारतीयोंका अँग-रेजोंके प्रति कभी इतना अविश्वास और सन्देह-पूर्ण भाव नहीं देखा जितना आज देख रहा हूँ । और यह सच है । वर्षोंसे हमारे साथ की हुई प्रतिज्ञाओं और शपथोंका भग और उपेक्षा की जा रही है । इसके सिवा १९०५ से दमनकारी कानूनोंकी बढ़वार और उनके कड़ाईके उपयोगने हमें और भी मर्माहत और क्षुभित किया है ।

इस सबके पीछे हम यह भी कह सकते हैं कि हमारे सामने एक और गहरा-कारण है और वह कई देशी राज्योंकी उन अनेक विषयोंमें उन्नतिशील नीति और ब्रिटिश शासनमें उनकी मन्दगतिकी तुलना है जिनका प्रजाकी सुख-समृद्धि पर बहुत भारी प्रभाव पड़ता है ।

भारतीय देख रहे हैं कि यह उन्नति हमारी ही जातिके शासको और मन्त्रि-योंके अधीन होती है । जब वे देखते हैं कि यथा-सम्भव उनके अनुसार कार्य

किया जाता है तो हमें इस बातका पता लगता है कि नाम मात्रके अधिकार विना भी उसके मैम्बर हमारी व्यवस्थापिका सभाओंके मैम्बरोंसे अधिक यथार्थ अधिकारोंका उपभोग करते हैं। जब वे देखते हैं कि वहाँ शिक्षाका विस्तार हो रहा है, नये उद्योग-धन्धोंकी सहायता की जा रही है, गाँववालोंको अपने गाँवका प्रवन्ध करने तथा उत्तरदायित्वका भार ग्रहण करनेको उत्साह दिया जा रहा है' तो उन्हें आश्चर्य होता है कि भारतकी अयोग्यता अँगरेजोंकी योग्यतासे इतनी अधिक कार्यक्षम क्यों है?

अन्तमे यह मुक्तकण्ठसे कहा जा सकता है कि हमारे लिये हमारा ही शासन सर्वोत्तम है। हमें अँगरेजोंके सहयोगकी जरूरत नहीं है।

चौथा अध्याय।

अँगरेजी शासन-पद्धतिके दोष।

अँगरेज़ हमारे मित्र बन कर नहीं, वरन् हाकिम बन कर रहे और रह रहे हैं। उनकी शासन-पद्धतिमें कुछ गुण रहे होंगे यह बात अस्वीकार नहीं की जा सकती, पर मैं उनका इस अवसर पर जिक्र नहीं कर सकता। क्योंकि हमको उन गुणोंके कारण कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा है। अलबत्ता दोषोंको हम नहीं भूल सकते, क्योंकि उनके परिणाम हमारी व्यक्तिगत और जातीय मर्य्यादाके लिये भयंकर घातक और निर्दय अपमानकारक हुए हैं।

सबसे अधिक भयंकर दोष कानूनन व्यभिचारको क्षमाकी दृष्टिसे देखना है। यह सत्य है कि विदेशी शासक देशके अन्तस्तलके जीवनको नहीं समझ सकते हैं, पर यह उनका कर्तव्य अवश्य है—खास कर उन विषयोंमें जिनसे समस्त राष्ट्रके नैतिक जीवनके नष्ट होनेका भय है।

यूरोपमें व्यभिचार साधारण अपराध है, परन्तु भारतके नैतिक नियमोंने उसे सर्वोपरि अक्षम्य अपराध माना है, यहाँ तक कि खूनसे भी अधिक। स्मृतियोंके दण्ड-विधानोंमें व्यभिचारियोंको रोमाञ्चकारी दण्ड लिखे गये हैं। छान्दोग्य उपनिषद्‌मे हत्या, चोरी, सुरापान और व्यभिचारको सर्वोपरि दोष माना है। मनुस्मृतिमे कुछ विस्तारसे व्यभिचार-दण्डको लिखा है। व्यभिचारी यदि

ब्राह्मण न हो तो प्राणदण्ड दिया जाता था (८, ३५९)। किसी कुमारी पर बलात्कार करनेसे प्राणदण्ड या उँगुलियाँ काट ली जाती थीं (८,३६४,३९७)। जो स्त्री किसी दूसरेको बिगाड़े उसे कोड़े लगाये जाते थे । व्यभिचारिणी स्त्री कुत्तोंसे नुचवाई जाती थी और व्यभिचारी पुरुष अग्निमे जला दिये जाते थे (८,३६९, ३७१, ३७२)। उत्कट धर्मभीरु शाशक ब्राह्मणोंके आत्मबलके यद्यपि पूरे पूरे कायल थे और धर्मकी दृष्टिसे उन्हे देवाश मान कर अवध्य मानते थे। पर व्यभिचारके दण्ड-विधानसे स्पष्ट पता चलता है कि उन्हें भी वधके सिवा इस अपराध पर कठिनसे कठिन सजा दी जाती थी।

आपस्तम्भमें लिखा है कि द्विज यदि शूद्र स्त्रीसे व्यभिचार करे तो देश-निकाला दिया जाय और यदि शूद्र द्विज स्त्रीसे व्यभिचार करे तो उसे प्राणदण्ड दिया जाय (२, २०, २१) । व्यभिचारको रोकनेके लिये जहाँ ऐसे कठिन कानून बनाये गये थे वहाँ कुछ ऐसी रीतियाँ और पद्धतियाँ भी प्रचलित कर दी गई थीं जिनसे व्यभिचारकी प्यास ही नष्ट हो गई थी । क्योंकि उन धार्मिक कानून-निर्माताओंने यह अच्छी तरह समझ लिया था कि केवल बाँध कर प्रजा किसी स्वाभाविक आकांक्षासे विरक्त नहीं की जा सकती। उन्होंने अनेक प्रकारके विवाह, नियोग और ऐसी प्रथाएँ जारी कर दी थीं जिनका मुख्य लक्ष्य वैध सन्तान उत्पन्न करना था। और यह बात बडे ही महत्त्वकी थी।

यूरोप जो स्त्रियोंके सम्मानकी डींग हाँकता है और जिस देशके कामुक युवक धनवती और सुन्दरी युवतियोंके सामने अनेक तुच्छता-पूर्ण भावोंसे झुक झुक कर जमनास्टिककी कसरत करते हैं, पर अपनी गरीब बहनों—देश-कन्याओंको—सूअर और कुत्तो तथा वेश्याओं तकका जीवन व्यतीत करते देख कर वे लज्जित नहीं होते। मैं साहस-पूर्वक कह सकता हूँ कि यूरोपके शक्तिशाली नामी राष्ट्र इंग्लैण्डने भारतीय स्त्रियोको व्यभिचारकी कानूनन आज्ञा देनेका पाप किया है।

अँगरेजी कानूनके मुताबिक १८ वर्षसे अधिक उम्रकी कोई भी स्त्री अपने पतिको छोड़ कर स्वेच्छा-पूर्वक चाहे जिस पुरुषके साथ रह सकती है। अथवा ऐसी ही बालिग उम्रकी स्त्री किसी भी व्यक्तिके साथमें—चाहे वह उसकी जाति, योग्यता, वय और परिस्थितिके प्रतिकूल भी हो—स्वेच्छासे बिना किसी जिम्मेदारीके खुल्लम-खुल्ला व्यभिचार कर सकती है। और कोई भी पुरुष किसी स्त्रीसे चाहे किसी

ढंगसे यह प्रमाणित करा दे कि वह वालिग है और इसीके साथ व्यभिचार करना स्वेच्छासे पसन्द करती है तो कानून उसे अपराध नहीं मानेगा। भारतकी अस्मत पर कभी ऐसा निर्लज्ज और अपमानकारक कानूनी दाग नहीं लगा था—लम्पट मुसलमान वादशाहों और नव्वावोंके समयमें भी नहीं लगा था।

इस प्रकारके रहनेको मैं व्यभिचार इस लिये कहता हूँ कि उपर्युक्त अवस्थाओंमें कानून ऐसे नाजायज व्यक्तियोंके सम्मेलन अर्थात् व्यभिचारको ही स्वीकार और नीति-मूलक बताता है, पर उनकी सन्तानको अवैध कहता है। इस प्रकारके सम्बन्धसे जो सन्तान उत्पन्न हो वे न पिताकी सम्पत्ति पा सकती हैं, न कुल-गोत्र। यह भयंकर घृणित कानून आज तक और भी शोचनीय दुर्दशामे हिन्दुओंको पटक दिये होता यदि जातीय और सामाजिक जूतियाँ इस व्यभिचारके सिर पर न होतीं जिसे कानूनने वैध और अनपराध माना है। वरावर जातिसे ऐसे स्त्री-पुरुषोंका त्याग और वहिष्कार किया जाता रहा है। और वरावर कठिनसे कठिन जातीय दण्ड देनेका भय उनके सिर पर सवार रक्खा जाता है।

यह उचित था कि अँगरेजी-सरकारको इस गम्भीर और नाजुक विषय पर समाजकी रीति और गृहस्थोंकी परिस्थितिका खयाल करके कानून वनाने चाहिए थे, पर उसने वैसा नहीं किया, और यह विषैला दोष अँगरेजोंकी शासन-पद्धति पर अक्षम्य है।

यह कहा जा सकता है कि स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताको हरण करना अत्याचार था। इस लिये वालिग स्त्रियोंको पुरुषोंहीकी तरह उनकी इच्छानुकूल स्वातन्त्र्य देना चाहिए। दूसरी वात वचावमें यह कही जा सकती है कि वलात्कारके कठोर दण्ड कानूनसे हैं। यहाँ मैं यह कहता हूँ कि वलात्कार अत्याचार या जुर्म है और धोखा, छल, फुसलाहट, व्याभिचार ये पाप हैं। जुर्मसे पापका दर्जा प्रवल है। इसी पापके लिये सरकारी कानूनने रीतियाँ वना दी हैं। फिर यदि स्त्री किसी पुरुष पर वलात्कार करे तो कानूनमे उसका कुछ प्रवन्ध नहीं है। हालाँ कि ऐसे उदाहरणोंकी कमी नहीं है। साथ ही यह वात भी याद रखनी योग्य है कि उत्तराधिकारके वहुत कम अधिकार मृत पतिकी विधवाको कानूनने दिये गये हैं। गौतम, वशिष्ट, मनु और आपस्तम्भ सभी स्त्रियोंको पतिकी सम्पत्तिका और कन्याओंको पिताकी सम्पत्तिके अंशका अधिकारी मानते हैं। पर अँगरेजी कानूनमे ऐसी विधवाओंको जो सती साध्वी हैं, मृत पतिके नाम पर पवित्र जीवन

व्यतीत करती हैं, अत्याचारी सास ससुर, देवर, पिता आदिसे सुरक्षित रह कर मृत पतिकी (जो परिवारमे सम्मिलित हो) सम्पत्तिका कुछ भी उत्तराधिकार नहीं है। आपस्तम्भ माताके स्त्री-धन (आभूषण आदि) का उत्तराधिकार उसकी कन्याको देता है। मनुने कुमारी वहनोके लिये प्रत्येक भाईको अपने हिस्सेका चौथाई देनेका विधान किया है (९, ११८)। इसके सिवा किसी भी अनाचारसे यदि कोई पुरुप किसीको फुसला कर व्यभिचार करे और उस व्यभिचारकी सन्तानको असहाया स्त्रीके सिर पटके तो ऐसी नाजुक स्थितियोंके समय मनस्वी आर्य-कानून निर्माताओंने अतिशय क्षमा और उदारता-पूर्वक उन निरपराध सन्तानोंको पुत्र कह कर उनके अधिकारकी मर्यादा वॉधी है—जिसका अँगरेजी क्षुद्र और तामसी कानूनोंमें कहीं जिक्र नहीं है। और केवल जिसके ही कारण लाचार हो कर गर्भपात और भ्रूण-हत्याके घृणित और रोमाचकारी काण्ड नित्य होते हैं। यहॉ यह बात भी याद रखने योग्य है कि इंग्लैंडमें जहॉ व्यभिचारको पाप नहीं माना जाता, व्यभिचारकी सन्तानके लिये कानूनन कुछ सुभीते कर दिये गये हैं। और उस दोषको साधारण समझ कर वहॉकी जनताने भी कुछ प्रवंध और सुविधाएँ उनके लिये कर दीं।

दूसरा दोष जो इससे उतर कर है वह मादक द्रव्यों और जुएकी रीतियोंको वैध रूपसे प्रचार करने देनेके सम्वन्धमें है। मादक द्रव्योंके सम्वन्धमें गृहसूत्र, स्मृति और नीतियोंमें तिरस्कार-पूर्ण दण्ड लिखे हैं और इन वस्तुओका वेचना अत्यन्त निन्दनीय था। चन्द्रगुप्तके शासनमें मदिरा बेचनेका निषेध था। इन सब बातों पर विचार न करके मुख्य बात जो बिना किसी संकोचके कही जा सकती है यह है कि मनुष्यत्वके नाते मादक द्रव्योंको वेचने देना न्यायत महान् घोर अन्याय है। सम्भव है सरकारके पिट्ठू अनकों दार्शनिक कारण बता कर यह सिद्ध कर दें कि शराबियों-का शराव पीना, अफीमचियोंका अफीम खाना और भगड़ियोंका भग पीना रोकना उनके स्वातन्त्र्यमें बाधा देना होगा। यहॉ इस लचर दलीलके सम्बन्धमे इतना ही कहा जा सकता है कि सरकार कैदियोंको ये अनावश्यक द्रव्य नहीं देती है। तब यही एक कारण हो सकता है कि सरकारको महकमे आवकारीसे करोड़ो रुपयेका फायदा है और सरकार उसके लालचको नहीं रोक सकती। उसे अपने हलवे माण्डेसे काम है—चाहे वह प्रजाकी आवरूको नालियोंमें सड़ानेसे प्राप्त हो या उन्हें भर जवानीमें कुत्तेकी मौत मरनेके उपायोंसे प्राप्त हो।

धनी ऐयाश लोग मैंने देखे हैं जो गटागट बोतले उडा जाते हैं और उन्मत्त हो
(नौकर-चाकर, बच्चो और स्त्रियोंको पशुकी तरह मारते और अहमककी तरह
लेज्ज गाली वकते हैं। या उनसे भी अधिक उन अभागे गरीबोंकी भयंकर दशा
जो दिनभर पसीना वहा कर कुछ पैसे पैदा करते हैं और शामको शरावकी दूका-
पर मोरीका पानी पी कर छूछे हाथ घर आते हैं। और उनके स्त्री बच्चे जो दिन
(मेहकीसी आशा लगाये बैठे रहते थे कि बाबा कमा कर पैसे लावेंगे तो रसोई
गी, देखते हैं बाबा आये हैं, पर दूसरे ही क्षणमें उनकी वह हँसी बरसाती धूप-
तरह उड जाती है, जब वे यह देखते हैं कि बाबा आये तो हैं पर बेहोश, पागल
र पशु बने हुए हैं—गॉठके पैसेका पिशाब पी आये हैं—मोरीके पानी, उल्टी
र मैलेमें शरीर भरा है। क्या जिस प्रजाके घरोंमें ऐसे भयंकर दृश्य नित्य हो
इ प्रजा किसी सभ्य राजाके शासनके अधीन कहला सकती है? कदापि नहीं।

कैसी दिल्लगीकी बात है कि जहॉ एक तरफ शरावके दूकानदारोको सर-
ारने हुक्म दे दिया कि बाजारोंमें दूकाने खोलो और खुल्लम-खुल्ला यह गन्दा
णित जहर बेचो और तमाम प्रजाको यह स्वातन्त्र्य दे दिया कि जिसका
ी चाहे पीओ और जितना जीमें आवे पीओ।

यहॉ तक तो काम कायदे सिर हुआ, पर इसके आगे एक और काम हुआ
के सरकारने पुलिसवालोको डडे लेकर खडा कर दिया और उन्हें कह दिया
के डंडा लिये तैयार खडे रहो। जब कोई इस भयंकर दूकानमें घुसे तो मत रोको।
ब उसे दूकानदार यह भयकर जहर दे तब भी मत रोको। और कोई धूँआ
ार पीवे तब भी मत रोको। परन्तु यदि पी-पी कर कोई मतवाला हो जाय
ो उसे पकड़ कर हमारे पास ले आओ। मानो सरकारको शराव पीनेसे मतवाले
ोनेके अवश्यम्भावी परिणामकी खबर ही नहीं है। और मानो सरकारकी
ष्टिमें शराब पी कर पागल होना कोई आकस्मिक घटना है। वाह! कैसा
ुन्दर शासन है—कैसी सुन्दर व्यवस्था है! चोरसे कहें चोरी कर, साहसे कहें
कड लो। बलिहारी!

अब लीजिए जुएकी बात। इसके अनेक रूप हैं। सट्टा, नीलाम, लाटरी, ठेका
आदि। इसके सम्बन्धवाले कानून इतने स्वार्थमय और छल-पूर्ण हैं कि वे
सभ्यताके नाम पर लाञ्छन लगाते हैं। वे प्रजासे नागरिकताके अधिकारोंके

छीनते हैं। इन सव पद्धतियोंको मैं जुआ इस लिये कहता हूँ कि वस्तुका मूल्य एक नहीं रहता। दूसरे घटना या प्रारब्ध-वश ही एक व्यक्तिको वस्तु वहुत ही कम रुपयेमें मिल जाती है और वस्तुका स्वामी उसकी अधिक ही रकम—जिसके लिये कानूनमे कोई वन्धन नहीं है—वहुतसे लोगोंसे ले लेता है जिन्होंने प्रारब्ध या घटना-वश ही उस वस्तुके उसी कं दाममें मिलनेकी आशामें यह धारणा करके कि पैसा जायगा या माल आयग खर्च किया था। दूसरा स्वरूप और भी भयानक है। यह सट्टा है। यह स प्रायः सभी लाभकारी वस्तुओंका होता है। इसके करनेवाले प्राय सभी निक और दूसरे व्यवसायोंकी योग्यतासे हीन पुरुष हैं। अवैध रूपसे इन मामले बडे बड़े मगरमच्छ छोटी छोटी मछलियोको निगल जाते हैं उनकी बात इस समय नहीं कहूँगा। मैं केवल उस सरकारकी तरफ उँगली उठाता हूँ जिस केवल खासी आमद होनेके लिये ऐसे कानून बना दिये हैं जिसके कारण कु भयंकर पूँजीदार या छाकटे चलतेपुर्जे खुल्लम खुल्ला जुआ खेल कर नौके करते हैं या सब्र कर रो वैठते हैं। और वह वस्तु प्रजाको सस्ती और महँ मिलना हर तरह उन्हींके अधीन है। गेहूँ, रुई, सोना, चाँदीका तो सट्टा चल ही है। कपड़ेकी मिलोंका और दूसरे ऐसे कारखानोंका,—जिनसे सर्व-साधारण नित्य काममें आनेवाली सामग्री तैयार होती है—उनके शेअरोंका भी सट्टा इ जोरसे चलता है कि वस्तुओंके दामोंमें भयंकर घट-बढ होती रहती है। इस सीधा साधा परिणाम यह है कि जो धोतीका जोडा मिलमें ३) रुपयेका तैय होता है उसे ये जुआचोर आपसमे झूठ-मूठ ही खरीद बेच कर उस पर ३ नफा कमा लेते हैं और तब वह ६) का गरीब प्रजाको बेचा जाता है जि कि उसकी सख्त जरूरत है। अर्थात् ये ज्वारी जो लाभ उठाते हैं इसका जुर्मा गरीब भाई देते हैं और सरकार मिल-मालिकोसे—उसके कच्चे मालके व्यापारीसे— इन स्वार्थी सट्टेबाजोंसे—अनेक टेक्स और बहानेसे अपना भरपूर भाग इस पाप कमाईसे बसूल करती है।

गत महायुद्धमें जब समस्त प्रजा आहार और आवश्यक सामग्रीके घोर कष्टो पड़ी और इन आपापन्थियोंने हाहाकार खाती हुई प्रजा पर कुछ भी तरस न खाक खूब अपनी गाँठ मोटी की और निर्दयता-पूर्वक प्रजाको मनमाना लूटा तब सर कारका जहाँ ऐसे कानून बना कर—जिनसे इनका स्वेच्छाचार रुके—इस अन्धेर

रोकना चाहिए था वहॉ उलटे ऐसे कानून बनाये कि इस कमाईका आधा हमें । ठीक उसी तरह जैसे किसी जमानेमें असभ्य और मूर्ख राजा चोरोंसे अपनी थ लिया करते थे। मैं नहीं समझता कि किसी राजाके लिये इससे अधिक क्या नामीकी बात हो सकती है कि उसकी प्रजाके कुछ स्वार्थी लोग उसी प्रजाके बोंका खून चूसते हैं और सरकार उसमे पूरा पूरा हिस्सा पाकर सन्तुष्ट हो जाती । छि ! छि ! !

अब मैं व्यापारिक नीतिकी तरफ पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। जिसमें कारका पातक-पूर्ण अपराध समझता हूँ। अपने विदेशी यारोंको उसने तैयार ल भेजनेके पूरे पूरे स्वातन्त्र्य और अधिकार दिये हैं। उनसे भरपूर टेक्स-रूपी वत पाकर उसने प्रजा-रक्षणका पुण्य कर्तव्य मानो बेच दिया है। अकेले जापान-की बात लीजिये। इसने जैसे धड़ल्लेके व्यापारी डाके डाले हैं और यह जि-ा बेईमान, झूठा और छली है शायद ही कोई होगा। सरे बाजारमें जापानी तु कमजोर और निकम्मी होनेके कारण बदनाम है, पर इस कगले देशके भुक्कड़ गोंने इतनी सस्ती मजूरीमें यह रद्दी माल दिया है कि हमारे अभागे भाई सस्ते-के सामने उसके रद्दीपनकी कुछ परवा नहीं करते। पिछली बातोका जिक्र नहीं रता। असहयोगके आन्दोलनके कारण जो खादीके वस्त्रोका व्यवहार चला जापानने खादी बना कर भेज दी। और उस पर स्वदेशमें बना माल लिख या ? क्या कोई भी स्वाभिमानी गैरतवाला देश खुल्लम खुल्ला इतना झूठ और ईमानी कर सकता है।

ग्रामोफोन, हारमोनियम, साइकिल, खिलोने, रंग, वारनिश और प्रत्येक आवश्यकता-ी वस्तु उसने तत्काल हमारे सामने रख कर हमारे पैसे छीन लिये है। छीने क्या ग लिये हैं, क्योंकि व्यवहारसे हम देखते हैं कि प्रत्येक वस्तु रद्दी और बाहियात । मैं यह पूछता हूँ कि इस चेचकसे देशकी रक्षा करना क्या सरकारका काम हीं था ? झूठे मालो पर सेन्सर बैठाना, उन्हे जालके कानूनसे पकड़ना क्या रकारका न्याय-पूर्ण कर्तव्य न था ? पर नहीं, शक्तिशाली और हाकिमीकी ींग हॉकनेवाले अँगरेजोको स्वार्थ, लालच और खुदपरस्तीने अन्धा कर दिया है— पैसेके लोभसे अपनी इस बदनामी और पाप व्यवहारको लापरवाहीसे कर हे है। यही बात और देशोके सम्बन्धमे कही जा सकती है। साथ ही वे कानून

भी नहीं भुलाये जा सकते जो देशके व्यापार, शिल्प और उद्योग-धन्धोंको नहीं उकसने देते हैं। भूत ब्रिटिश सरकारने विलायतमें हिन्दुस्तानका कपड़ा पहनना कानूनन जुर्म बताया था। और ८० नम्बरसे अधिकका सूत कातना भारतमें कानूनन जुर्म करार दिया गया। इसी तरह कोई भी आविष्कारको पेटेन्ट करनेके कानून अत्यन्त स्वार्थ और छल-पूर्ण हैं। इन सबके साथ हम शर्तबँधे कुलियोंके कानूनों का भी नाम लेना नहीं भूल सकते जिसे हम अपने सिर पर लात मारनेके समान अपमानकारक समझते हैं। और जो सरकारी पद्धतिका लाञ्छनीय दोष है। कानूनकारों और जमींदारोंसे सम्बन्ध रखनेवाले कानूनों पर बहुत ही गम्भीरतासे विचार करनेकी जरूरत है। जिनसे यह पता लगेगा कि ये कानून या तो जान-बूझ कर किसी अत्याचारी राजाने स्वार्थान्ध होकर बनाये हैं या उसे अपनी प्रजाकी परिस्थितिका कुछ ज्ञान नहीं है। पर मुझे यह प्रकट करते खेद होता है कि वे कानून ठीक अपने स्वरूपमें बडी खोज और जॉचके पीछे अच्छी तरह इरादा करके बनाये गये हैं और गरीब किसानोंका सत्यानाश अत्यन्त दृढ़ता-पूर्वक किया जा रहा है। मैं यह भी कहनेमें संकोचकी आवश्यकता नहीं समझता हूँ कि यदि कच्चा माल तैयार करानेमें भारत-सरकारको बाहरी कारखानेवालोंसे गहरी रकम मिलनेका लालच न होता तो वह इन अभागे किसानोको भी उन्हीं संखियेकी गोलीसे चूहेकी तरह मार डालती जिससे पिछले दिनोंमें हतभाग्य व्यापारी और शिल्पी मार फेंके गये थे। चीनसे रुपये झटकनेके ही लिये तो सरकारने अफीमकी खेतीको उत्तेजन दिया और खेती कराई। विलायतके नीले रंगके व्यापारियोंसे टेक्समें मोटी रकम ऐंठनेके लिये ही भारतके नीलके व्यापारका पटरा कर डाला और अब लंकाशायर और मैन्चेस्टरके भेडिये व्यापारियोंकी डकैतीमे भरपूर हिस्सा पानेको लिये ही सरकार लम्बे धागेकी कपास बोनेके लिये भारतके बे-समझ किसानोंको झाँसेपट्टी दे रही है।

यह बात बहुत प्रथमसे कही जा रही है कि किसानोंके ऊपर सरकारी लगान-का भार इतना है जितना किसी भी सभ्य और धनी देशके किसानों पर नहीं है और तहसीलदार, जमींदार और बनियोंके चुंगलोंमें वह इस तरह फँसा रहता है कि किसी तरह भी उसका उद्धार होना असम्भव है। रुपया न चुका सकने पर—चाहे वह सरकारी हो चाहे बनियेका या जमींदारका—कोई कानून उसकी मदद करने-वाला—उसकी बेकसीकी हिमायत करनेवाला और उसे उबारनेवाला—नहीं है।

दीन, अभागा, असहाय किसान किसी भी कारणसे नियत अदायगी न देनेसे अवश्य जेलमें ठूँसा जायगा और अवश्य उसके हल-बैल-वर्तन भी नीलाम करा लिये जावेंगे ।

नहरोंके सुभीते बढ़ानेकी अपेक्षा रेलोंके सुभीते बढ़ाये जा रहे हैं कि कब इनके खेतोंमे इनकी सुबहकी कमाई पके और कब हम उसे ले कर भागें ।

अब न्याय और शासनकी बात पर विचार कीजिये । शासन करनेवाले हाकिमोंके साथ प्रजाके लोगोंसे व्यवहारमें कुछ ऐसे पेंच पड जाना असम्भव ही नहीं वरन् अनिवार्य हैं जिनमे न्यायकी आवश्यकता पडती है । ऐसी दशामें शासन और न्यायाधीशका एक होना कभी न्याय्य नहीं हो सकता । क्योंकि बहुतसी हालतोंमें फर्यादी शाशक पर ही फर्याद करेगा और शाशकको मुद्दाअलेके रूपमे आना पडेगा । ऐसी दशामें वही यदि न्यायाधीश बन कर बैठेगा तो कभी न्यायकी आशा नहीं की जा सकती है । मौर्य राजाओंके राजत्वमें न्याय और शासनके महकमे अलग अलग थे । मुगल राजाओंके यहाँ भी यही बात थी । खेदकी बात है कि उदारता और पद्धतिकी शेखी बघारनेवाले पच्छिमके इन घमण्डी लोगोंके राजत्वमे ऐसे दोष विद्यमान हैं जिन्हें अर्द्ध सभ्य (उनकी रायमें) कालके काले हिन्दुस्तानी राजे—जिन्हें अब दुर्भाग्यसे शासनकी तमीज नहीं रही है—समझ सके और काममें ला सके थे ।

अन्तमें मैं इस अध्यायको समाप्त करते हुए कानून शब्दका जो अपमान ऍंगरेजी शासनमें हुआ है उसकी तरफ पाठकोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ । उपनिषद्के किसी अंशसे मैंने पिछले किसी अध्यायमें कानून शब्दकी व्याख्या उद्धृत की है जिसका अर्थ यह है कि कानूनका अर्थ है सत्य । परन्तु ऍंगरेजी राज्यमे कानूनका अर्थ है नियम । और उसमे घोर छल और प्रमाद है । वह रबरकी तरह खिंच और सिकुड सकता है । इसका फल यह हुआ है कि सारे भारतमे यह अपवाद फैला हुआ है कि ऍंगरेजी कानूनमे सत्यकी जीत नहीं होती । ऍंगरेजी अदालतोंमे जाकर सत्य बोलनेवाला मूर्ख है । ऍंगरेजी अदालतके ऑंखे नहीं हैं, कान हैं । वह देखती नहीं, सुनती है । और अदालतमे जाना किसी भले मानसका काम नहीं, किसी लुच्चे शोहदेका काम है, इत्यादि । मैं नहीं कह सकता हैं कि किसी भी शासन-पद्धतिकी इससे अधिक और क्या लाञ्छना, तिरस्कृति और अवहेलना हो सकती है ।

पाँचवाँ अध्याय ।

अँगरेजी शासनमें प्रजाकी दुर्दशा ।

किसी भी शासक-मण्डलके कानून-निर्माता यदि कानून निर्माण करते समय अपने और प्रजाके स्वार्थोंमें भेद समझें और अपनी स्वार्थ-रक्षाके लिये कानूनकी घडनमें राजनैतिक छल प्रयोग करें तो प्रजाकी दुर्दशाके लिये यहीं बहुत कुछ है।

पिछले अध्यायमें हमने इस बात पर प्रकाश डाला है कि अँगरेजी शासन-पद्धतिके दोप कैसे हैं और अँगरेजी कानूनोंमें कितनी कमी, लापरवाही और राजनैतिक छल हैं—और ये ही कारण प्रजाकी दुर्दशाको कम नहीं हैं। और इन्हीं केवल कारणोंसे प्रजा जिस विपत्तिमें पड़ी है और जैसी भाराक्रान्त हो रही है वह विचारने योग्य हैं। तिस पर कुछ गुप्त रीतियाँ हैं जिनका कानूनसे भी उतना सम्बन्ध नहीं है और जिनका अभिप्राय यह है कि भारतीय प्रजा कभी न उठने पावे—कभी न योग्य होने पावे—कभी न सशक्त और अस्त्र-तेजसे पूर्ण न होने पावे।

ये नीतियाँ यदि खुल्लम-खुल्ला कानूनकी शकलमें धारासभामें पास करा दी गई होतीं तो अब तक कबकी अँगरेजी शासन-पद्धति ससारमें बदनाम हो गई होती। पर अँगरेज बुद्धिमान—दुनियादार जाति हैं, उन्होंने भंग नहीं खाली है कि वे अपनी खुल्लम-खुल्ला बदनामीको ऐसे फूहड ढंगसे फैल जाने देंगे। किन्तु कोई भी विचार-शील सज्जन जो भारतमें इस सिरेसे उस सिरे तक घूमेगा, भारतको ध्यानसे देखेगा, वह यह अवश्य कहेगा कि भारत किसी ईमानदार राजाकी प्रजा नहीं है। जिस प्रकार पिताको यह गर्व होना चाहिए कि उसका परिवार सुखी, समृद्ध और पण्डित है उसी प्रकार प्रत्येक राजाके लिये यह गौरवकी बात है कि उसकी प्रजा सुखी, समृद्ध और पण्डित हो। और जो पिता या राजा ऐसा गर्व प्राप्त नहीं कर सकता है वह या तो बेईमान है या अकर्मण्य। मुझे लाचार हो कर कहना पड़ता है कि अँगरेजी शासनमे प्रजाकी बहुत ही दुर्दशा है।

सबसे प्रथम मैं सम्पत्तिकी बातको उठाता हूँ। क्योंकि यह कलियुग सम्पत्तिका युग है। पैसेकी तराजूमें मनुष्यकी कुल योग्यताएँ तोली जाती हैं। पैसा ही मनुष्यका बाप, चचा, ताऊ और जमाई है। बिना पैसेके आदमी गधा है। पैसेके

हाथमें रहनेसे आज जातियाँ विजयिनी होती हैं। पैसेकी बदौलत उन्हें वीरताका तमगा मिलता है। पैसेकी बदौलत उन्हें इस लोकसे अधिकार प्राप्त होते हैं। वही पैसा भारतमें कितना है। इस सम्बन्धमें जो आँकड़े और सम्पत्ति-शास्त्रके ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं वे पाठकोकी दृष्टिमें पड़े होंगे—मैं व्यर्थ उन नीरस हिसाबोको दुहरा कर पाठकोंके साथ अत्याचार नहीं करूँगा। मैं केवल यह कह सकता हूँ कि इस समय भारत सबसे गरीब देश है और उसकी सम्पत्ति बराबर क्षय हो रही है और उन सबकी जिम्मेदार सरकारकी अनेक ऐसी नीतियाँ हैं जिनसे खर्चेका एक बड़ा भारी पनाला बराबर जारी रहता है। सरकारने हमसे कहा ही नहीं, हमें विश्वास दिलाया है और उसका आयोजन भी किया है कि भारत कृषि-प्रधान देश है—वह कच्चा माल विदेशोंमें भेजे। इसके पूरे सुभीते उसने उत्पन्न कर दिये हैं। पर हम यह कई बार कह चुके हैं कि यह झूठ और भ्रम है। भारत कभी कच्चे माल उत्पन्न करके दूसरे देशोंको देनेवाला देश नहीं है। क्या यहाँ भूमि काफी नही है? क्या यहाँ मजूर काफी नहीं हैं? क्या यहाँ मजूरी सस्ती नहीं है? क्या यहाँका जल-वायु परिश्रम और काम-धन्धे करनेके योग्य नहीं है? और कभी भारतने क्या ऐसे व्यापार किये नहीं थे? पर शोक है सब कारण जान कर—सब बात समझ कर— भी सरकार इस तरफ ध्यान नहीं करती है। मैं प्रथम कह आया हूँ कि कृषि, शिल्प और वाणिज्य इन तीन उपायोसे ही सम्पत्ति उत्पन्न होती है। पर सरकार कृषिको ही उत्तेजन देती है। शिल्प, वाणिज्यको छीन चुकी है। हम कौडीके मोल कच्चा माल देकर छूछे हाथ बैठ रहते हैं और सौनेके मोल वही तैयार माल विदेशसे खरीद कर झख मारते हैं। हमारे घरके मजूर भाई खाली बैठे हैं। उन्हें चार पैसेका रुजगार नहीं है और हम अपना माल औरोसे ऊँची ऊँची मजूरी देकर तैयार करानेको मजबूर किये गये हैं। यह ठीक वैसी ही मूर्खता-पूर्ण ठसक है जैसे कोई दरिद्र गृहस्थी स्वयं हट्टे कट्टे बहू बेटोंके रहते प्रत्येक काम मजूरी देकर गैरोसे करावे। क्या वह सुखी रह सकता है? कदापि नहीं।

किस किस तरहके भयानक कानून बना कर वाणिज्य तथा शिल्पको मार डाला गया है और किस तरह गरीब किसानोंके गला दबानेके आयोजन उत्पन्न करके उन्हें जीता ही जमीनमें गाढ दिया गया है यह बात मैं ऊपर कह आया हूँ। इसके सिवा बड़ी भारी बात इसी सम्बन्धमें जो कहनी है और जिसके लिये सरकार खुल्लम-खुल्ला कानून बना कर बदनाम नहीं हो सकती थी—वह बात उद्योग-धन्धोंके सम्ब-

न्धमें सुस्ती और लापरवाहीका व्यवहार है । जो कभी किसी समुन्नत और समृद्धि-शाली राजाके लिए शोभाकी बात नहीं हो सकती ।

स्कूलों और कालिजोंसे निकले हुए छात्रोकी मट्टी पलीद है । स्टेशनके कुली जब उनसे मजूरी कम लेनेको कहा जाता है तो किसी मैट्रिक पासको खोजनेकी सलाह दिया करते हैं । जो जवान अपने मा-वापोंकी ऑखोके तारे, दिखाऊ पट्ठे, नाहरके समान घर द्वार पर शोभित होते थे, जिनके भयसे चोर, डाकू और वदमाश गॉव घरोंकी ओर ऑख नहीं उठा सकते थे, जो वीस पच्चीस वर्षकी उम्र तक झूठ, व्यभि-चार, छल, पाखण्ड नहीं समझ सकते थे, गॉव भरकी स्त्रियॉ जिनकी काकी, चाची, ताई और वहन थीं, गॉव भरके पुरुप काका, चाचा, और भाई थे वे नवयुवक हाय ! आज किस दशामें हैं । ऑखे गढ़ेमें घुसी हैं, भूख मारी गई है, दुर्वल तन, निस्तेज मुख, व्यर्थ कपडोंसे मढ़े हुए नौकरी ढूँढ़ते फिरते हैं। छोटे छोटे वच्चे प्रेमकी गुत्थियोको सुलझाते हैं। भारतमें एम०ए० तक अँगरेजी शिक्षा सरकारकी ओरसे दी जाती है । इतनी योग्यताके आदमी सिर्फ सरकारी छोटे दर्जेके कर्मचारी बन सकते हैं । क्या भारतको उद्योग-धन्धे सिखाना पाप था ? शुद्ध भारतीय जल-वायुमें रह कर भारतीय आदर्शका आदर सिखाना पाप था । वड़े वड़े प्रतिष्ठित घरोंके वच्चोको नौकरीकी खोजमें ढूँढते देखता हूँ । एक दर्जीको मैं जानता हूँ जिसकी दूकानमें ३) रु० रोजसे लेकर ॥।) रोज तकके ६–७ कारी-गर हैं और जो २००) महीने कमाता है । पर उसका लड़का दुर्भाग्यसे मैट्रिक हो गया । वह २५) महीने पर कहीं दफ्तरमें किसी साहबकी जूतियाँ खाता है । पर अपना काम करना नहीं पसन्द करता है । एक लुहारको भी जानता हूँ जिसका लडका सिर्फ ५ वी या ६ ठी जमात तक पढा था । वावूपनेकी ऐसी हवा दिमागमे घुसी कि लुहारीका हथौड़ा न उठा, हालॉ कि उसकी दूकान पर भी २००) महीनेकी आमदनी थी । निदान वह २०) महीने पर अपने घरसे ५० मील दूर नौकरी करता है । स्त्री तकसे मिलनेके लिये तरसता रहता है । व्याह होते ही उसकी सुहाग रातके दिन किसी जगली स्टेशनके मनहूस कम्पार्टमैन्टकी गन्दी कोठरीमें अकेले कटे थे । कहॉ तक गिनाया जाय ! न जाने इस विपैली शिक्षामे ऐसी कौनसी भयानक शक्ति है कि इसे छूते ही आदमी घमण्डी मगर नीच हो जाता है । सरकारको अपने लिये क्लर्क चाहिए थे वही उसने पैदा करनेको गुलामोंकी टकसाले खोल रक्खी हैं ।

पढ़नेके बादमें ३ महकमें अच्छी आयके हैं। सिर्फ आयके ही कारण अभागे शिक्षित युवक इन पर जी-तोड़ कर टूटते हैं। एक इंजीनियरिंग, दूसरा डाक्टरी, तीसरा वकालत। इंजीनियरीके बराबर वेईमान और चोर कोई ही दूसरा महकमा होगा। जिसमें छोटेसे वड़े तक प्रत्येक चोर और झूठा है। मेरे एक मित्रके पिता ओवरासियर थे। ३५) तनखा मिलती थी। पर महीनेमें २ हजार तक रुपये आते मैंने अपनी ऑखों देखे हैं। एक इंजीनियरको जानता हूॅ। २००) पाते हैं। ब्राह्मण हैं। आर्यसमाजके प्रधान हैं। परन्तु उनके तिमंजिले पुख्ता वंगले खडे हैं। छकडोंमे रुपया लाद कर लाते हैं। चेहरे पर फटकार वरसती है—तेज नष्ट हो गया है। वढ वढ़ कर दान देते हैं और वाहवाही लूटते हैं। एक ठेकेदारको जानता हूँ। अभी ताजी जान पहचान हुई है। वम्बईमें एक नये इन्जीनियर आये थे। उन्होने इन हजरतको सिद्ध-साधक वननेके लिये वुला लिया है। इन्जीनियरकी स्त्रीको साड़ियाँ, हारमोनिय बाजे, जेवर और सौगाते वरावर भेज रहे हैं, एक टाँगसे खड़े होकर जी हुजूर करते हैं। मैंने स्वयं खडे हो कर उन्हें दो दो वोतल शराव पिलाते देखा है। इतना करके वे उनसे आर्डर लेते हैं और मनमाना विल वना कर स्वीकृति करा लेते हैं। उसमें अद्धम-अद्धा दोनोंका है। इस तरह ये दोनों पापिष्ठ लुटेरे उस रुपयेको लूट रहे हैं जो सरकारी कहाता है पर वास्तवमें प्रजाका है।

डाक्टरोने जवसे जन्म लिया उदार चिकित्सा-व्यवसाय तवसे निठुर दूकानदारी वन गया। मनुष्योकी मानसिक, सामाजिक और शारिरिक परिस्थितियॉ पूरी रोगी वन गई हैं। औषध भोजन और वायुकी तरह जीवनकी आवश्यक सामग्री वन गई है। परम कारुणिक तपोधन ऋषियोंने भूतदयासे प्रेरित होकर अपनी तपश्चर्या छोड़ लोक-सेवाके लिये चिकित्सा-विद्याको देवताओसे माँगा और उससे समारका उपकार किया। आज वह मामला है—"मर्ज वढता गया ज्यों ज्यों दवा की"। किसी भी वड़े शहरमे जाइये और उसकी सड़क परसे एक मुट्ठी धूल उठा कर देखिये जरूर उसमेंसे दो चार डाक्टर वैद्य निकल आवेंगे। प्रत्येक गलीमें, प्रत्येक मोड़ पर, प्रत्येक मुहल्लेमें मक्खीकी तरह चिपके हुए हैं। इनके फन्देमें रोगीको आनेकी देर है, वस वे हथकंडे चलाते हैं कि टाट पर एक वाल नहीं रहता। उल्टे उस्तरेसे मूढते हैं। वैद्योंकी दशा ऐसी है कि वेचारे विद्याहीन, धनहीन, दवाहीन अपनी मैली कुचैली शीशियों और झूठी सच्ची दवा-दारूको लिये वैठे दिन फोड़ रहे हैं। आया सो हजम।

सरकारका इस सम्बन्धमे क्या कर्तव्य था यह सोचनेकी वात है। सरकार जानती है कि भारत गरीव है। वह इन डाक्टरोको देहातोमे सव जगह नहीं पहुँचा सकती। उसके लिये यह अशक्य है। देहातोंमे यही वेचारे अयोग्य असहाय वैद्य गरीव प्रजाकी प्राण-रक्षा जैसे वनता है करते हैं। सरकारने पुरातत्त्व-विभागके उद्धार करनेमें ध्यान दिया सो शायद इस लिये कि यूरोपको कारीगरीके सच्चे आदर्श मिले। और ज्योतिपका उद्धार किया सो शायद इस लिये कि यूरोपके दुनियादार इस अपूर्व भारती विद्याका ईमान विगाड कर ईसाई वना लें। परन्तु उसने आयुर्वेदको इतना उपयोगी और कामका जान कर भी कोई सहारा नहीं पहुँचाया, इस लिये कि सारा खेत जब ये घरू वैल (वैद्य) ही चर जावेंगे तो उसके वछड़े (डाक्टर) क्या चरेंगे? विलायतके दवा-विक्रेता किस घर ठीकरे लिये फिरेंगे? इन वछेड़ोंके लिये उसने खेत सुरक्षित रख छोड़े। और आयुर्वेदको मरनेके लिये छोड दिया। उस पर दो लातें और कस कर लगा दीं। ये प्रकृति और स्वभावसे विरुद्ध, हलाहल विषके समान साघातिक ऐलोपैथी दवाइयाँ, जिनसे तमाम यूरोप घवरा कर त्राहि माम् पुकार रहा है, भारत जैसे गर्म देशमें जवर्दस्ती पिलाई जाती हैं। जो भारत सनाथ होता—भारतका कोई जवरदस्त पूत होता तो पूछता—हत्यारो! किस लिये तुम ये जहरे कातिल भुलावा देकर गरीव मासूम स्त्री-बच्चोंके गले उतार रहे हो? किस लिये—हमारे धर्म, जाति और स्वभाव तथा देशकालके विपरीत—हम पर वलात्कार कर रहे हो?

जो वनस्पति स्वाभाविक रूपसे सर्वत्र जगलोंमें लहलहाया करती हैं, जिन्हें ताजा ताजा काममे लाकर वे-खतर आरोग्य करनेकी विधि आयुर्वेद शास्त्रमें है उस शास्त्रका उद्धार न करके सरकारने यह प्रवन्ध किया या होने दिया कि ये वनस्पति यहाँसे लूटी जाकर विलायत जावे और गोरे हाथोसे सस्कृत करके तव हमारे हलकमें उतारी जावें। उसमें अनेक घृणित पशुओंके पित्ते, मास, रस चुपचाप मिला दिये जायँ। क्या इससे भी अधिक कुछ भयकर दशा हो सकती है? मैं इसे पाप समझता हूँ। और वास्तवमे यह पाप है। मैं इसे पाप प्रमाणित कर सकता हूं।

गत वैद्य सम्मेलनमें—जो वम्वईमें हुआ था—जव मैंने वैद्योंसे सरकारी उपाधियोंके छोड देनेका प्रस्ताव किया तव वड़े वड़े प्राय सभी वैद्योंने मेरा घोर विरोध किया। प्राय सभी संस्थाओंके वडे लोग खुशामदी और उपाधियोंके भूखे होते हैं। दुर्भाग्यसे यहाँ

भी उनकी कमी न थी। ऐसी दशामे विरोध होना आश्चर्यकी वात न थी। परन्तु विरोधियोंमें डा० सर देसाईने कहा कि सरकार वैद्योंको अयोग्य झूठ नहीं कहती है। वह वैद्योंकी प्रतिष्ठा करनेको तैयार है। तुम योग्य वनो, कालेज खोलो, पढ़ो, अपने ज्ञानको पूर्ण वना कर वड़े वड़े इलाजोंमें यश प्राप्त करो। गवर्नमेन्ट तुम्हारा सम्मान करेगी। इन सर महाशयकी वात सुन कर मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा—महाशय! आपने जिस कालेजमें एम० डी० पास किया था वह क्या आपके पिताजीने स्थापित किया था या आपके जाति-वन्धुओंने ? क्या कारण है कि विदेशी और अप्राकृत चिकित्सा-पद्धति सिखानेको तो सरकार इतना सिरफुडौवल कर रही है, परन्तु सीधी, सच्ची और उपयोगी चिकित्सा-पद्धतिके लिये कहा जाता है कि हम स्वयं कालेज खोलें, स्वयं योग्य वनें। मानो हम किसी ऐसे देशकी प्रजा है जहाँका कोई वारिस या राजा नहीं है।

अव वकालतके धन्धेकी वात कहता हूँ। मेरी नजरमें इसकी वरावर वेईमान और पाजी पेशा नहीं आया। ज्यों ज्यों डाक्टर वढ़े त्यों त्यों रोग वढ़ा और ज्यों ज्यों वकील वढ़े त्यों त्यों अपराध वढ़े। ये लोग मुकदमेवाजोके पक्के सहारे हैं। इन्हींकी वदौलत मूर्ख डरपोक और पोच आदमी भी अदालतमे झख मारनेको तैयार हो जाता है। ये झूठके व्यापारी—झूठोके उस्ताद—पूरे वेगैरतीका जीवन व्यतीत करते हैं। 'जिसकी देखे तवा परात उसकी गावें सारी रात'। यह मसल उन पर चरितार्थ होती है। मैंने स्वय देखा है कि इन शरीफोंने चोरोको यह कह कर कि वह उस प्रतिष्ठित घरकी स्त्रीका यार था, वुलाने पर गया था, छुड़ा दिया है। इन्हें ऐसे ऐसे पाप करते न ग्लानि, न लज्जा, न लिहाज है।

ये पढे लिखोके जीवन हैं। जिनमें धर्म, दया, सहानुभूति, प्रेम और सामाजिकता विलकुल नहीं है। परन्तु यह तो सिर्फ उनका वाह्याचार है—उनके भीतरी आचार व्यभिचार, पाप, हिंसा और तरह तरहके वीभत्स भावोसे भरे रहते हैं।

हाय! कहाँ गये वे जीवन जव प्रत्येक शिक्षित गुण, कर्म, स्वभाव और व्यवहारमे पिताकी समान पवित्र और गम्भीर रहते थे। वह समाज-संगठन, वह जीवन, वह आदर्श इस शिक्षा डायनने सर्वथा अतल पातलमें डाल दिया।

अव मजूरोंकी दशा देखिये। न उनके रहनेको अच्छा स्थान है, न खानेका सुभीता। दिन भर कामका भूत सवार है, उसी कामने उन्हें भूत वना दिया है।

जब अँगरेजी राज्य नहीं था तब इनमेंसे प्रत्येक आदमी अपनी छोटी छोटी दूकानोंका मालिक था। प्रातः काल न्हा धोकर अपनी दूकान झाड कर बैठता। भगवानका नाम लेता। दिन भर मनमाना काम करता। राजाकी तरह प्रसन्न, बे-फिक्र और मस्त रहता था। मित्र बान्धवोंका खुले दिलसे सत्कार करता और रात्रिको तान कर सोता। प्रत्येक गृहस्थके घरमें कहानियोंकी चर्चा थी। रात्रिको सोती बार रोचक और उपदेश प्रद कहानियाँ कही जाती थीं। परन्तु आज उनकी यह दशा हुई। अन्धेरेमें, आधी रातसे उठ कर उनकी स्त्रीको चूल्हा जलाना पड़ता है। ६ बजे खा-पी कर उन्हें काम पर हाजिर होना चाहिए। सवेरे स्नान सन्ध्याके समय पर वह रोटीके बड़े बड़े कौर जल्दी जल्दी भीतर उतारता है। इतनेमें सीटी सुन पड़ती है। बस भागता है। और दिन भर पशुकी तरह काम करता है। यही मनुष्य-जीवन है। न मित्रोंकी खातिर, न मेहमानकी तवाजो। अप्रमाणिक इतना कि कारखानेसे बाहर आती बार तलाशी देनी पड़ती है। यही दिन भगवानने भारतको दिये ?

किसानोंकी बात कई बार कह चुका हूँ। जिनके तन पर चिथडा तक नहीं है, जो कभी नहीं फूलता फलता, जो सदा कर्जदार, सदा दबा, सदा दुखी, सदा अप्रामाणिक रहता है।

छोटे दर्जेके अहलकार और सरकारी नौकरोंकी भयंकर दशाका अनुमान करना कठिन है। छोटी छोटी कच्ची उम्रके नौजवान छोटी छोटी बालिका अबोध बहुओंको अपने बूढ़े माता-पितासे छुड़ा कर दूर देशमें छोटी छोटी नौकरियोंके आसरे छोटे दर्जेके मकान किराये लेकर पड़े रहते हैं। कोई हितू नहीं, बन्धु नहीं, मित्र नहीं, सहायक नहीं। मैंने कच्ची बालिकाओंको अकेले घरमें अकेली प्रसूता होते देखा है। उनके बच्चे रोगी, दुर्बल, अधमरे होते हैं। बहुतसे मर जाते हैं। बेचारे कठिनतासे अपना निर्वाह करते हैं। सालमें जो दस बीस रुपया जमा होता है वह एकाध बार घर जाने आनेमें खर्च कर देते हैं।

रिश्वतके लिये सरकारी नौकर इतने प्रसिद्ध हो गये हैं कि रिश्वत देना उनसे काम लेनेवालेको एक जरूरी खर्च हो गया है। ये बेग़ैरत लोग रिश्वतको हक कह कर निर्लज्जता-पूर्वक माँगते हैं। पुलिस और साधारण अर्दलीसे लेकर जज तक रिश्वत खोर है। और क्यो न हो ? १०) रु० रुपयेकी तनखामें पटवारी सरकारकी रायमे परिवारका गुजर कर सकता है ? ८) रु० रुपयेकी तनखामे सिपाही सपरिवार रह सकता

है। जो ॲंगरेज हजारों रुपयेकी टेबल सजाते हैं उनके दिलमे इन कलील तनखा-वालेको नित्यकी कठिनाइयाँ न आई हो यह असम्भव है। तब साफ बात यही है कि सरकारने यही चाहा है कि रिश्वत लेकर पेट भरो। हम कुछ न कहेंगे। रेलमें रिश्वत, अदालतमे रिश्वत, दफ्तरमे रिश्वत, साहबके घर पर रिश्वत। हे भगवान! कहीं इस अधर्मका अन्त भी है।

अब मैं अपराधी लोगों और जेलके जीवनो पर भी एक प्रकाश डालूँगा। प्रत्येक देशमे उद्दण्ड लोगोंकी उत्पत्ति होना अनिवार्य है। परन्तु उनके शासन और सुधारनेके लिये उत्तम प्रबन्ध करना राजाका जोखिम-पूर्ण कर्तव्य है। परन्तु जेल लुच्चपन सिखानेकी पाठशाला है। बे-शर्मीकी शान चढ़ानेकी मशीन है—जब कि स्त्री, बच्चे और ऐसे आदमियोको जिन्होंने भूखसे विवश हो कर रोटी चुरा ली थी, ऐसे अपराधीके पास निर्द्वन्द भावसे देखते है जो बलात्कार, खून या डाकेके अपराधमें वहाँ आया है। पुलिसके अधिकार, व्यवहार और हैसियत इतने निकृष्ट और तुच्छ हैं कि कोई भला आदमी पुलिसमे किसी भी प्रकारका सम्बन्ध रखती बार घबराता है। मुझे मालूम है कि एक बार थोड़े दिनके लिये भी जेलमे जाकर कोई भी लज्जालूसे लज्जालू और भीरुसे भीरु आदमी कुछ न कुछ निर्लज्ज और धीठ बन आवेगा। मै भरोसेसे कह सकता हूँ कि जेल अपराधियोके सुधार या दण्डका स्थल नहीं है, वह अपराधोंकी पाठशाला है। वहाँके कर्मचारियोका व्यवहार, वहाँका आहार विहार, वहाँकी कुत्सित निवास-प्रणाली सब मनुष्यत्वके सूक्ष्म कोमल भावोंको नाश करनेवाला है।

सब बातोके सार-रूप यह कहना कठिन है कि प्रजाकी भीतरी दशा क्या है। अमीर, गरीब, शिक्षित, साधारण व्यवसाई, अपराधी, बच्चे, भारतके प्रत्येक प्राणी ठीक उसी दशामे है जिस दशामे एक अनाथ परिवारके लोग होते हैं। मानो उन पर किसीका शासन नहीं है—किसीका अधिकार नहीं है। कोई उनका स्वामी नही है। भारत व्यर्थ पसीना बहा रहा है—व्यर्थ खून बहा रहा है—व्यर्थ ऑसू बहा रहा है। वह भूखा है, वह दबा हुआ है, वह रोगी है, वह पोच है, वह दुखी है, तिस पर भी वह शक्तिशाली ॲंगरेजोकी प्रजा है—धिक्कार है इन राजत्व पर। साधारण व्यक्ति भी अपने पालतू पशु-पक्षियोंको सजा कर रखता है, उनके खान-पान और निवास-की सद् व्यवस्था करता है। शायद ॲंगरेजी सरकारकी दृष्टिमें हम उस व्यवहारके भी योग्य नहीं है। हम कसाईके घर बकरेकी भाँति हैं।

ये वातें उन अभागे लोगोंकी हैं जिन्हें सभी प्रजा कह कर तुच्छ दृष्टिसे देखते हैं। अब मैं एकाध वात उन महज्जनोके सम्बन्धमें भी कहना चाहता हूँ कि जो अपने आपको राजा कहते हैं और अपने निस्तेज चेहरेको भड़कीली पोशाकसे सजा कर जमीन पर पैर नहीं रखते हैं। मुझे अफसोस है कि मैं इन्हें राजा नहीं वल्के अँगरेजोंकी प्रजा समझता हूँ। और यद्यपि ये अकड़वेग-महाशय पूरी दुर्दशाके योग्य हैं, पर फिर भी प्रजाकी दुर्दशाकी वातके साथ इनकी दुर्दशाका वर्णन मैं भूल नहीं सकता।

यह वात कही गई है कि इन राजाओंके ओज और ठाठ कभी कैसे थे। पर आज क्या है? एक तो इनमें वीरता-पूर्वक एक शब्दको मुँहसे निकालनेकी शक्ति नहीं रह गई है। दूसरे उनकी अवस्थाएँ ऐसी गाँठ कर पराधीन कर दी गई हैं कि इस प्रकार शर्तोंको मान कर राजा होना कोई तेजस्वी पुरुष कभी न स्वीकार करेगा।

अजमेरमें एक मेयो कालेज है जहाँ राजकुमार पढ़ाये जाते हैं। मुझे वहाँकी भीतरी दशा, कुमारोंका रहन-सहन, उनके आचरण और उनकी शिक्षाकी सारी हकीकत मालूम है। मैं यह सकता हूँ कि वह साँडोंको वधिया वनानेका कारखाना है। ये जवान लड़के आगे राजा वन कर प्रजाकी पसीनेकी कमाई भले ही चूसनेमें उस्ताद हो जायँ, राजपूत तो रह सकते नहीं। जहाँ इनकी भीतरी दशा वीभत्स है वहाँ बाहरी अपमान-जनक है। उसका एक साधारण उदाहरण सुनिये—अभी जो सभा नरेन्द्र-मण्डलके नामसे प्रसिद्ध की गई है उसका नाम पहले चेम्बर आफ प्रिंसेस रक्खा गया था। पाठक नरेंद्र शब्द और प्रिंस शब्दके अर्थों पर सव तरह विचार करें। मतलब यह है कि भारतकी दृष्टिमें जो नरेंद्र (?) हैं वे अँगरेजोंकी दृष्टिमें प्रिंससे अधिक नहीं हो सकते। इंग्लैण्डमें कोई भी हैसियतवाला आदमी अधीन-वर्गको Boys (लड़के) कह कर पुकार सकता है। हायरे भारतके अभागे नरेंद्रगण!!

छठा अध्याय ।

नृशंस अत्याचार ।

बंगालके नवाबों, दिल्लीके बादशाहो और पंजाब तथा इधर उधरके दो चार राजाओंको पतन करनेमें तत्कालीन अँगरेज कर्मचारियोंने कैसे जघन्य और अनीतिपूर्ण व्यवहार किये थे यह अब धीरे धीरे प्रकाशमें आ रहा है और विचारशील उसे अच्छी तरह समझ गये हैं । मैं इन रोमाचकारी घटनाओंके वर्णनको इस उत्थानके समय अपनी कायरता समझता हूँ। और शिल्पी तथा व्यापारियोको मलियामैट करनेके जो काम किये गये थे उनके परिणाम मात्रका ही दिग्दर्शन करा चुका हूँ । इस अध्यायमें मैं उन अत्याचारोका वर्णन करूँगा जिन्हें मैं नृशंस समझता हूँ। जो निरीह प्रजा पर बिना अपराध किये गये और जिन्हें इतिहास अपराध कह कर पुकारेगा ।

प्रत्येक राजाको अपनी सत्ता जमानेके लिये दूसरे राजाओंके साथ अत्याचार करना ही पड़ता है। राजा बनना खून पीना है। बुजुर्गोंका कथन है—'तपे सो राजा और राजा सो नर्के' यह बात सच है। अँगरेजोंने अपनी सत्ता जमानेके लिये यदि बंगालके नवाबोंके नीच, स्वार्थी नोकरोको घूँस दे कर बेईमान बनाया या अपनी प्रतिज्ञाओंका पालन न किया, दिल्लीके बादशाहको बराबर दबा कर या दबा देख कर अपने स्वार्थका उल्लू गाँठा, पंजाब-केसरी रणजीतसिंहकी अबला विधवाके साथ और झाँसीकी अबला रानीके साथ जोर आजमाई करके अपना महा महिमान्वित गौरव-पूर्ण वीर नाम सार्थक किया—और टीपू सुल्तान, हैदरअली और दक्षिणके तेजस्वी स्वाधीन-चेता सर्दारोको कुचल कर दब्बू—गुलाम—और आत्माभिमान शून्योकी सरपरस्ती की तो कुछ आश्चर्य न था । राजसत्ताके जमानेके इससे सरल उपाय हैं ही नहीं । पराया माल हडपनेके लिये फाँसी लगाना पडता ही है—राजी राजी तो मुर्गी भी अपना अडा नहीं देती ?

पर मेरा कथन यह है कि राज्य जम जाने पर, विरोध पक्षका उन्मूलन होने पर, एक च्छत्र शासन होने पर प्रजाके साथ वैसी ही ढोंग, शक्ति और भयकरताका व्यवहार किये जाना क्या किसी राजाके लिये कलककी बात नहीं है ।

सन् सत्तावनके निष्फल प्रयत्नके पीछे अँगरेजोकी जड एक वार जोरसे हिल कर पुख्ता होकर जम वैठी। और यह वात प्रमाणित हो गई कि शरीर-वल भारतका वहुत ही कमजोर है। और यह बात चतुर अँगरेजोंने अंकित कर ली, पर उन्होंने उस वातको समझ कर चुप्पी साध ली। भारतको कस कर वॉध लिया और रोनेसे रोकनेको अनेक मीठे मीठे वचन दिये जिनका आज तक पालन नहीं हुआ है। परन्तु प्रतिज्ञा-भगकी वातोको भी छोड़ कर मैं उन वातोका जिक्र इस अध्यायमें करूँगा जिसे प्रत्येक आत्माभिमानी नृशंस अत्याचार कह सकता है।

पहला अत्याचार शस्त्रोको छीन लेनेका है। जो अनेक तरहके, ठीक उसी तरहके प्रलोभन सन् ५७ के वाद देकर छीन लिये गये—जैसे मा वच्चेसे कोई भय-कर विष फुसला कर छीन लेती है। मैं निर्भयता-पूर्वक कह सकता हूँ कि यह अँगरेज जातिकी वुजदिली और डरपोंकपनेकी निशानी थी। मैं यह भी मानूँगा कि यह भारतका भी नपुंसकपना था कि उसने चुपचाप पालतू वन्दरोकी तरह अँगरेजोंकी इस अपमानकारक आज्ञाका पालन किया। पर यह मैं प्रथम ही कह चुका हूँ कि उस समय भारतका शरीर-वल क्षीण था और पिटा हुआ तथा घवराया हुआ भारत दूसरे बलोंको उस समय स्मरण न कर सका।

कावुल पर अँगरेजोंने कई वार अधिकार किया, पर उनका राज्य वहॉ ३ दिनसे ज्यादा न चला। एक वार कावुल पर अधिकार करके प्रख्यात वीर लार्ड रावर्टने आज्ञा निकाली थी कि जिसके पास शस्त्र हो वह सरकारमें जमा कर दे। जो २४ घंटेमें इस आज्ञाका ईमानदारीसे पालन न करेगा उसे गोली मार दी जायगी। परन्तु वीर पठान जो शस्त्र रख देना अपनी आवरू पर दाग समझते थे और जो आवरूके जोहरकी कीमत जानते थे, गुस्सेसे होठ चवाने लगे। और उन्हीं चौवीस घटोंमें, उन्हीं शस्त्रोकी वदौलत, उन्होंने कावुलको फिर कब्जेमें किया। जिस मकानमे अँगरेज थे उसे घेर कर आग लगा दी। हुकूमतके पुतलोकी जानके लाले पड गये। और हार कर इस शर्त पर सन्धि कर सीधे नाककी सीधमें हिन्दुस्तानको भागे कि हमे सही सलामत निकल जाने दो वावा! और अपना कावुल सँभालो। ये सिंह-नीके वच्चोंके इतिहासके सुर्ख कारनामें हैं। हम वीरतासे भयभीत हैं, क्योंकि वीरताने हमारी हिमायत लेना छोड दी थी। हम पर जव इससे भी वहुत नर्म आज्ञा जारी की गई, हमने चुपचाप हथियार रख दिये। हुक्म करनेवालोकी शान रह गई। उनकी वन आई!

आज वह दिन है कि जगली पशु हमारे वच्चोंको चीर कर खा जाते हैं, गोरोंकी गोलीका वहुधा हम शिकार बनते हैं, पर एक चक्कू तक पास रखना जुर्म है। लाठी तक बॉधना जुर्म है । जो भारतकी ललनाऍ युद्ध-यात्राके समय अपने हाथोंसे कराली तलवार पुत्र-पतियोंकी कमरसे बाँध कर युद्ध-यात्राको भेजती थीं आज वे चक्कूकी धारसे डरती हैं । जो बालिकाऍ कटारसे ऑखोमें काजल डालती थी आज उनसे उस्तरा देखा नहीं जाता। जातिकी जाति नामर्द हो गई । किसी पशुको वधिया करना यदि पाप है तो भारतके हथियार छीनना भी पाप है ।

उसके बाद मैं उन कामोंको उसी श्रेणीके अत्याचारोंमें गिनता हूँ जिनसे बगालमे भयंकर रूपसे अँगरेजोके प्रति विद्वेष फैला और जिसमें फुलरशाहीकी तूती बेलाग वजती रही ।

हथियार छीन कर बिना दन्त-नखका सिंह बना कर अपनी समझमे सरकारने बडा सुन्दर अकंटक कार्य किया, परन्तु जब गत युद्धका प्रारंभ हुआ और कैसरने रक्त-रंगे चावलोंसे महाबलियोको युद्धके लिये ललकारा तो अँगरेजोको मालूम हुआ कि तीस करोड मनुष्योसे भरे हुए देशको नि शस्त्र करके कोई राजा कितना मूर्ख बन सकता है । फिर भी भारतने महाशक्तियोंके स्वतंत्र बच्चोंके कन्धोंसे कन्धा भिडा कर युद्ध किया। भारतके रक्तमें वीरताकी झलक थी । जिस समय फ्रासके ऐयाश छबीले पैरिसका पतन निकट देख राजधानीपनेका मुकुट उसके सिरसे उतार सुदूर देशको भागे उस समय पंजाबके शेरोने अपनी सगीनों और छातियोंकी दीवारोंसे वर्बर शत्रुको रोककर उसकी लाज बचाई । एकबार भूतपूर्व वाइसराय लार्ड हार्डिजने ऑसू भर कर इस वीरसेनाकी कथावली कही थी जिसके कुछ जीते हुए सिपाही बच कर लौटे थे । उसके बाद ससारकी शक्तियोंने देखा भारतीय योद्धा बराबर प्रत्येक महाजातिके बराबर अधिकार योग्य हैं । और प्राय सभी जातियोंने यह स्वीकार किया कि उसे साम्राज्यमें बराबरीके अधिकार मिलने ही चाहिए। अपने अधिकारोंकी चर्चाका ज्ञान हमें ५७ के विप्लवके बाद ठीक ठीक हो गया था और हम बराबर उसकी चाहना कर रहे थे परन्तु ऐसे ईमानदार आदमी कम हैं जो पराई वस्तु उसके मालिकको बिना मॉगे दे देते हैं । हमने अँगरेजोंको ऐसा ही समझा था । हमें बताया गया था कि अँगरेजोंने अड़े वक्त पर अराजकता और अशान्तिमे भारतकी रक्षा की । हमें बताया गया था कि अँगरेज न्यायी और उदार जातिके आदमी हैं । और वे हमारे अधिकार हमें अवश्य देंगे । पर यह सब व्यर्थ हुआ ।

जिस समय यहाँ युद्धके वाद यूरोपका खूनी अर्थवाद रक्त भरे हाथोंसे संसारको शान्ति देनेकी विडम्बना करने वैठा तो सारी कलई खुल गई। भारतके अधिकारो और माँगोंको अत्यत लापरवाहीसे देखा गया। और उसकी पूरी पूरी उपेक्षा की गई। और भारतको अपनी योग्यता दिखा कर भी अन्तमें पूर्ण निराश होना पड़ा।

इन सवसे अधिक अपमान और लाछनकी वात जो किसी भी जागृत जातिको खटक सकती है वह रौलेट एक्टके पास करनेकी हुई।

इसे पहले स्थायी कानून वनानेका विचार था। पर पीछे इसकी अवधि ३ वर्षकी कर दी गई। किन्तु इससे सिद्धान्तके आधार पर इसका विरोध नहीं मिल सकता। इसमें ५ भाग और ४३ दफा हैं। और यह कुल व्रिटिश भारतके लिये है। इसमें व्यवस्था है कि यदि भारत-सरकार देखे कि भारतमें किसी भागमें क्रान्तिकारी अपराध जोरो पर हैं तो सार्वजनिक रक्षाके लिये वह वैसे अपराधोंकी शीघ्रतासे जॉच करनेके लिये व्यवस्था करनेको कानूनके पहले भागको उस भागमें जारी करनेकी घोषणा कर सकती है। इस कानूनके पक्षपाती इस वात पर जोर देते हैं कि पहले गवर्नर जनरल और उनकी कौन्सिल अपना सन्तोष कर लेगी तव कानून काममें लाया जायगा। अव देखना यह है कि ये उच्च अधिकारी किस तरह अपना सन्तोष किया करते हैं। अपराध-सम्वंधी सूचनाका प्रारम्भ पुलिसके छोटेसे छोटे कर्मचारीसे होता है। जो वास्तविक वात वहुत वढ़ा कर कह सकता, अत्यन्त ना-समझ होता और प्राय घूँसखोरीसे वचा हुआ नहीं रहता है। वह अपनेसे ऊँचे अफसरको रिपोर्ट देता है कि क्रान्तिकारी आन्दोलन हो रहा और उससे सम्वन्ध रखनेवाले अपराध किये जा रहे हैं।

उच्च अफसर उसके सम्वन्धमें जॉच करता है। यदि उसे सन्तोष नहीं होता तो निम्न कर्मचारी उसके सन्तोषके लिये और प्रमाण देता है जिनमे कितने ही वनावटी होते हैं। इस तरह वह रिपोर्ट क्रमसे उच्चातिउच्च अफसरके पास पहुँचती और गवर्नर जनरलके द्वारा घोषित होती है।

रौलेट एक्टमें राजद्रोह, घातक शस्त्रोंसे दंगा करना, भिन्न भिन्न जातियोंमे द्वेष फैलाना, डाका आदिके अपराध हैं। इस तरह सरकारके किसी कानून पर की हुई टीका टिप्पणी, मजहवी दंगा, हिंदुओं और मुसलमानोका झगडा आदि क्रान्तिकारी आन्दोलन-

से सम्बंध रखनेवाले बताये जा सकते हैं। यदि एक वार क्रान्तिकारी आन्दोलनके होनेका सन्देह भर हो जाय। जल्दी मुकदमा सुननेका अर्थ बिलके प्रस्तावकके शब्दोंमें "बिना सेशन या हाईकोर्ट सुपुर्द किये हुए जल्दी जॉच करना है जिसमे अपील करनेका अधिकार न होगा। और वह बन्द कमरेमें की जा सकती है।" रोलेट एक्टकी दफा ७ के अनुसार एकसे पहले भागके विरुद्ध जाप्ता फौजदारीकी व्यवस्था होनेसे वह जाप्ता मामलेमे काम न आवेगा। कानून शहादत (गवाही) के अनुसार मरे हुए गवाहका बयान तभी स्वीकार किया जा सकता है जब वह उसके आर्थिक स्वार्थोंके विरुद्ध हो और उस पर जिरह भी की जा चुकी हो। पर रोलेट एक्टकी दफा १८ के अनुसार यदि मजिष्ट्रेटके सामने गवाही देनेवाला आदमी मर गया या लापता हो गया हो या गवाही देने योग्य न हो तो उसका बयान लिया जा सकता है। यदि कोर्टको इतना विश्वास हो जाय कि उसकी बयान देनेकी उक्त अयोग्यताएँ उसके हितके लिये हैं। इस तरह न्यायकी पूरी हत्या हो सकती है। दफा १७ के अनुसार कोर्टके फैसलेकी अपील या पुनर्विचारकी व्यवस्था उठा दी गई है। कहा जाता है कि अपील अनावश्यक है, क्योंकि कोर्टके जज ऐसे होगे जो हाईकोर्टके स्थायी जज रह चुके होंगे। परन्तु आगे चल कर हम दिखावेंगे कि बिना नियमोंके बन्धनके ऐसे जजोंसे बनी मार्शल-लॉकी अदालतोंसे अप्रेलके पंजाबी दंगोंके समय कैसे अन्याय हुए हैं।

रोलेट एक्टका दूसरा भाग और भी भयंकर है। जब गवर्नर जनरलको विश्वास हो जाय कि एक्टमें कहे हुए अपराधोंके लिये कोई आन्दोलन किसी प्रान्तमें किया जा रहा है तो वे उस प्रान्तमे यह भाग जारी होनेकी घोषणा कर सकेंगे। जब प्रादेशिक सरकार किसी आदमीको ऐसे अपराधसे सम्बन्ध रखनेवाला समझे तो वह उसका पूरा मामला किसी जजके सामने—जो हाईकोर्टका जज रह चुका है—रक्खेगी जो हाईकोर्टकी अदालतमें सूचना दिये बिना, स्थान न बदलने आदिके लिये, एक वर्षके लिये नेकचलनीकी जमानत ले सकता है। दफा २४ के अनुसार गवर्नमेन्ट अपनी आज्ञाओंका पालन करानेके लिये सब उपायोंको काममें ले सकती है। इस तरह केवल सन्देह होनेहीसे पुलिस प्रतिष्ठितसे प्रतिष्ठित नागरिकको मुकद्दमे डाल सकती है। इस भागमें प्रादेशिक सरकारके हुक्मोंमे परिवर्तन करनेके लिये जांच करनेवाले अधिकारियोंकी व्यवस्था है। जिसे बन्द कमरेहीमें जांच करना पड़ेगी।

जिसके मामलेकी जॉच होगी उसे वकील खड़ा करनेका अधिकार न होगा । और दफा २६ के अनुसार जॉच करनेवाले अधिकारीको कानून शहादतके नियम माननेको वाध्य न हाना पड़ेगा । भाग तीनकी दफा ३४ के अनुसार जिस आदमी पर सन्देह हो उसके विरुद्ध दफा २२ के अनुसार तो कोई आज्ञा निकाली ही जा सकती है । साथ ही विना वारंट वह गिरफ्तार किया और नजर बन्द रक्खा जा सकता है । चौथे भागके अनुसार भारत-रक्षा कानूनसे पीडित लोगोंके सम्बन्धमे रोलेट एक्टके भाग दो और तीन काममें लाये जा सकते हैं । भाग ५ के अनुसार यदि घोषणा रद्द भी कर दी जाय तो भी उस वक्त चलते हुए मामले आदि चलते रहेंगे । और अभियुक्तको पूर्ववत् सजा दी जा सकेगी । इसके अनुसार ब्रिटिश भारतसे वाहर उस स्थान पर भी कोई आदमी गिरफ्तार किया जा सकता है जहॉ तीसरा भाग नहीं प्रचलित है । दफा २ के अनुसार एक्टके दिये हुए हुक्मोंके सम्वन्धमें कोई कार्रवाई नहीं की जा सकती । *इस तरहकी भयकर व्यवस्थाका यह क़ानून था—* जिसकी न अपील, न दलील, न वकील ।

यह भयंकर अत्याचार सारी भारतीय जनता पर जिस शान, ठाठ और हठ-पूर्वक हुआ उसे विज्ञ पाठकोंने तत्कालीन समाचार-पत्रोंमें पढ़ा होगा और वह कभी न भूलनेवाला अपमान है ।

जिस समय कौन्सिलमे यह कानून पेश हो रहा था उस समय समस्त भारतीय सदस्योंने हजार हजार मुखसे इसकी निन्दा और विरोध किया । मालवीयजीने एक एक अक्षरका जवर्दस्त खण्डन किया । खापर्डे, शर्मा और अन्य सदस्योंने कुछ कसर न छोडी, मगर—

मरीज हो तो दवा करे कोई,
मरनेवालेका क्या करे कोई ?

निन्दनीय हठ, दुराग्रह, वल, धमकी और असभ्यता तकसे माननीय सदस्योंका अपमान किया । यहॉ तक कि जिन सज्जनोंने धर्मकी साक्षी देकर ब्रिटिश साम्राज्यके भक्त और कानूनके अधीन होनेकी शपथ ली थी वे वहॉसे उठ कर चले आये । भारत भरमें क्षोभ फैल गया । और कानून पास हो गये । विलकुल प्रजाकी इच्छा और रायके विरुद्ध और नृशंस अत्याचारकी सहायतासे जिसके कारण प्रथम वार अँगरेजी शासन पर समस्त भारतको ग्लानि उत्पन्न हो गई ।

एक बात और भी विचारनेकी है कि जब ये बिल प्रकाशित हुए थे तब भारतमे कहीं क्रान्तिकारी अपराध नहीं हो रहे थे। और मैं यह साहस-पूर्वक कह सकता हूँ कि भारतमें कहीं क्रान्ति थी भी नहीं। और इसका अखण्ड प्रमाण यह है कि जब पंजाबमें सरकारने हत्याएँ कीं और साथ ही असह्य अपमान किया उस समयमें भी न किसी क्रान्तिकारीने छिपे शस्त्र निकाले और न बम बनाये—न गुप्त हत्याएँ कीं।

यह बात याद रखनेकी है कि इससे बहुत प्रथमहीसे एक जबर्दस्त दमनकारी कानूनके—जो कि भारतरक्षाके नामसे प्रसिद्ध किया गया था—बलसे पंजाब और बंगालकी क्रान्तिके अपराध अच्छी तरह रोक दिये गये थे। वह कानून युद्ध-कालके लिये क्रान्तिकारी अपराधोंके दमनके लिये बनाया गया था। यद्यपि यह कानून भी बहुत ही भयंकर नंगी तलवार थी और इसमे स्वेच्छाचारकी काफी गुंजाइश थी, परन्तु युद्ध-कालमें भारतसे सब सैनिक सामान मेसोपोटामिया भेज दिया गया था। तब ऐसे असाधारण अधिकार आवश्यक थे। फिर भी युद्धके बाद लोग उसका रद्द होना देखना चाहते थे। वह भी खास इस लिये कि यद्यपि सरकारने वचन दिया था कि कानूनका प्रयोग राजनीतिक आन्दोलन दबानेके लिये न किया जायगा। तो भी उसका बडा दुरुपयोग किया गया। और मिसेज बेसेंट जैसी कानूनके भीतर रह कर काम करनेवाली भी उसके पंजेसे न बच सकी। इससे जनताका गवर्नमेन्टमें पूरा अविश्वास हो गया था और उसे आशा थी कि भारतकी युद्धमें पहुँचाई हुई अद्वितीय सहायता तथा १९१७ की बीसवीं अगस्तकी घोषणाके विचारसे वह कानून रद्द कर दिया जायगा। परन्तु इसके विरुद्ध जब दोनों रोलट बिल प्रकाशित हुए तब लोग बडे आश्चर्य-चकित हो गये। बिलोंके पेश होनेके समय वाइसरायने जो भाषण दिया उससे असन्तोष और बढ गया। और उससे पता चलता था कि बिल सिविल-सर्विसके अँगरेजोंके उस भयके उत्तरमें रचे गये हैं जो सुधारोंके कारण उन्होंने अपनी रक्षाके सम्बन्धमे प्रकट किये थे।

महात्मा गान्धीने इन बिलोंके सम्बधमे स्पष्ट कहा था—"मैंने कई रातें इन बिलोंके विचारमें बिताई हैं, पर रोलट बिलोंकी कुछ भी न्याय्यता मुझे नहीं मालूम होती। रोलट कमेटीकी कुल रिपोर्ट पढ कर मैंने यही परिणाम निकाला है कि गुप्त अपराध भारतके बहुत ही थोडे भागमे है जो समाजके लिये संकट-जनक है। किन्तु ऐसे

बिलोंका पास करना जो कुल भारत और उसकी जनताके लिये बनाये गये है और जिनमें गवर्नमेन्टको असाधारण अधिकार दिये गये हैं, और भी अधिक संकट-जनक हैं। बिलोंके पेश होनेके साथ ही वाइसरायने सिविल-सर्विस और ब्रिटिश व्यापारिक स्वार्थोंके सम्बन्धमें विश्वास दिलाये हैं जिसका पूरा अर्थ मेरी समझमें कुछ नहीं आया। यदि उनका अर्थ यह है कि सिविल-सर्विस और ब्रिटिश व्यापारिक स्वार्थ भारत और इसकी राजनीतिक तथा व्यापारिक आवश्यकताओंसे बढ़ कर समझे जायँगे तो एक भी भारतीय यह सिद्धान्त नहीं स्वीकार करेगा। इसका एक ही परिणाम हो सकता है कि साम्राज्यके भीतर भाई भाईमें झगड़ा हो, सुधार हों या नहीं। सिविल-सर्विस दलको समझ लेना चाहिए कि वह भारतमें तभी रह सकता है जब बातोंहीसे नहीं, वह कार्य द्वारा भारतका नौकर और प्रबन्धक बन कर रहे। और ब्रिटिश व्यापारिक कम्पनियोंको समझ लेना चाहिए कि वे तभी यहाँ रह सकती हैं कि जब वे भारतकी आवश्यकताएँ पूरी होनेमें सहायता करें। उसके देशी व्यापार और कला-कौशल तथा उद्योग-धन्धे न नष्ट करें। सर जार्ज लोंडस् भारतका इतिहास भूल गये हैं। नहीं तो उन्हें पता होता कि जिस गवर्नमेन्टका वे प्रतिनिधित्व करते हैं वह पहले भी लोकमतके सामने अपने निश्चित विचार त्याग चुकी है। बिलोंसे राज्यके विरुद्ध घृणा और द्वेष भाव भी बढ़ जायगा।"

बिल रोलेट बिलके नामसे इस लिये प्रसिद्ध हुए कि १९१७ की १० वीं दिसम्बरको भारत-सरकार द्वारा नियुक्त कमेटीकी शिफारिशोंके फल-स्वरूप हैं जिसके अध्यक्ष मि० जस्टिस रोलेट थे। रोलेट कमेटीने जो जाँच की थी वह बन्द कमरेमें की थी। और आज तक नहीं मालूम हुआ कि उसके सामने किन लोगोंने गवाहियाँ दी थीं और न उन गवाहोंसे जनताकी ओरसे जिरह ही की जा सकी थी। रिपोर्टको पढ़नेसे पता लगता है कि उसकी शिफारिशें ऐसे समयमें की गई थीं जब वह अवस्था ही नहीं थी जिसके प्रबन्धके लिये वे की गई थीं। कहा जाता है कि भारत-रक्षा कानून या उसके स्थानमें किसी और कानूनके बिना मारकाटकी रुकावटकी ग्यारंटी नहीं की जा सकती। इससे दो कल्पनाएँ उपस्थित होती हैं। पहली तो यह कि दमनकारी कानून क्रान्तिकारी अपराधोंके ही दमनके लिये आवश्यक नहीं हैं। बल्कि यह भी कि ऐसे कानूनकी उपस्थितिमें ही ऐसे अपराध रुके रह

सकते हैं। और दूसरी यह कि ऐसे आदमी तब भी बचे हुए थे जो क्रान्तिकारी हैं या जिन पर क्रान्तिकारी होनेका सन्देह किया जा सकता है। पहली बात इस बातको प्रमाणित करती है कि राजनीतिज्ञताका दिवाला निकल गया है। तथा असफलता प्रकट की जाती है। और दूसरीसे अत्यन्त अयोग्यता प्रकट होती है।

सच तो यह है कि दमनकारी कानूनोंकी मॉगका अर्थ जनताकी इच्छाका मान न करना या लोगोंका उनकी इच्छाके विरुद्ध शासन करना है। कौन्सिलमे मा० मि० शास्त्रीने कहा था कि यदि शासन-सुधार कट्टर अराजकोंको सन्तुष्ट भी न कर सके तो भी शान्तिका सच्चा मार्ग सुधार ही है—दमन नहीं। कारण यह है कि अराजकोंको नहीं प्रत्युत सर्व-साधारणको सन्तुष्ट करनेकी आवश्यकता है। सुधारोंसे जब लोग सन्तुष्ट हो जावेंगे और अराजक देख लेंगे कि उनसे किसीकी भी सहानुभूति नहीं है और उनके कामके लिये उन्हे कहीं उपयुक्त स्थान नहीं है, क्योंकि लोग सन्तुष्ट हैं तब चाहे कानूनकी पहुॅच उन अराजको तक न हो तो भी उनका स्वभावतः अन्त हो जायगा। मि० शास्त्रीने अपने महत्त्व-पूर्ण भाषणमें भली भॉति प्रकट किया था कि इन बिलोंके लोकमतके विरुद्ध पास करनेसे देशमें घोर आन्दोलन होगा और कौन्सिलका कोई मैम्बर अपने कर्तव्यका पालन न करेगा यदि वह उसमे शरीक न हो।

सभी गैर-सरकारी भारतीय मैम्बरोके घोर विरोध करने पर भी बिल सेलेक्ट कमटीमें भेजनेका प्रस्ताव पास हो गया और इस आशयका कि बिल पर तब तक विचार न किया जाय जब तक वर्तमान व्यवस्था-सभाकी अवधि समाप्त होनेके बाद ६ महीने न बीत जायँ। संशोधक प्रस्ताव अनुकूल २२ और विपक्षमे ३५ सम्मतियाँ आनेसे अस्वीकार हुआ। बिलके पक्षमे राय देनेवाले एक ही भारतीय सर शंकर नायर थे जो वाइसरायकी शासन-सभाके मैम्बर होनेके कारण बिना पद त्याग किये और कोई सम्मति दे ही नहीं सकते थे। बिल पास हुआ और इससे रुष्ट हो तीन प्रमुख मैम्बरोने कौन्सिलका त्याग किया। मालवीयजी, जिन्हा और मझरुलहक।

इस प्रकार इन पापिष्ट बिलोंके विपरीत कौन्सिलके भीतरके भारतीय मैम्बरोंने और बाहर देशभरके पत्रोंने घोर विरोध करना शुरू कर दिया। उसी समय महात्मा गान्धीने उसके विरुद्ध सत्याग्रह युद्धका निश्चय किया और उसकी सूचना कमिश्नरों-को दे दी। तथा ६ अप्रेलका दिन उस युद्धका प्रथम दिन था जिस दिन समस्त

देशभरमें प्रार्थना, उपवास और व्रत करनेका तथा हडतालका निश्चय किया गया था। और जो उस दिन वास्तवमें देशके गाँवों तकमें मनाया गया। परन्तु दिल्लीमें वही दिन ३० मार्चको मनाया गया।

जैसा कि अन्याय किया गया था प्रजाका उत्तेजित होना कोई आश्चर्यकी बात न थी। पर प्रजा उत्तेजित न थी। प्रजाको केवल उस नि शस्त्र युद्ध पर उत्साह था। उसी कारण उस पर वह भयंकर अत्याचार किया गया जिसके लिये हमें हार कर यह अध्याय और सच पूछो तो यह पुस्तक लिखनी पड़ी है। और सारे देशको युद्धमें उतरना पड़ा है। वही दिन है जिस दिन योरूपकी सभ्यताका घाघरा फटा और उसी दिन समस्त भारतके हृदय अँगरेजोंसे अलग हो गये।

अब मैं थोड़े विस्तारसे उस भयंकर पाप-कथाको कहूँगा जो वीर भूमि पंजाबमें सरकारी शासनकी आज्ञा और समर्थनसे हुई। पंजाबका क्षेत्रफल कोई एक लाख ३६ हजार वर्गमील है और उसमें कुछ कम दो करोड़ आदमी रहते हैं। जिसमें कोई ३५ लाख सिख हैं जो ब्रिटिश सैन्यमे सबसे उत्तम सैनिक हैं। गत महायुद्धमें पंजाबसे ३॥ लाखसे अधिक योद्धा भेजे गये थे।

१९१९ की ६ ठी अप्रेलको महात्मा गान्धीके सत्याग्रह-युद्ध प्रारम्भके आदेशानुसार समस्त भारत भरमें हडताल मनाई गई थी। उसके दूसरे दिन अर्थात् ७ वीं अप्रेलको वहाँके गवर्नर सर ओडायरने अपनी कौन्सिलमे एक भाषण किया था। जिसमें उन्होंने अपने १५ वर्षके अनुभवसे पंजाबको गुणोंसे भरपूर प्रदेश बतलाया था। उनके कुछ शब्द ये थे—"मैंने पंजाबियोंको राजभक्त पाया, पर गुलाम नहीं। साहसी पाया, पर डींग हाँकनेवाला नहीं। उद्यमशील पाया, परन्तु मिथ्या स्वप्न देखनेवाला नहीं। और उन्नतिशील पाया, किन्तु झूठे आदर्शोंके पीछे या वास्तविक वस्तुको छोड कर परछाईके पीछे पडनेवाला नहीं।"

इसी वक्तृतामे उन्होंने आगे चल कर शत्रु-विजयी शक्तिशालिनी गवर्नमेन्टकी सत्ताका भय दिखा कर यह भी कहा था कि रोलेट एक्टसे कोई हानि नहीं है और यह सफेद झूठ भी बोला था कि इससे पुलिसको मनमाने तौर पर किसीकी स्वाधीनता पर हस्ताक्षेप करनेका अधिकार नहीं मिलता। इसके साथ ही उन्होंने दृढतापूर्वक कानूनोंको बनाये रखनेकी बात जोरसे कही थी और कहा था कि आन्दोलनकारियोंको मैं चेतावनी देता हूँ कि वे अपने कामों और शब्दोंके जिम्मेदार हैं। यहाँ

एक बात यह भी बता देनी ज़रूर है कि रोलेट कमेटीकी रिपोर्टके पृष्ठ १५१पर पंजावके भूत लाट सर ओडायरके विषयमे लिखा है कि उन्होंने भारत-सरकारको सलाह दी थी कि क्रान्तिकारी या अन्य राजद्रोही पकडे जावें तो उन पर साधारण ढगसे मामला न चलाया जाय और वे वकील वैरिष्टरोंकी तर्कना-शक्तिसे लाभ न उठाने पावें।

६ ठी अप्रेलको देशके साथ पंजाबमें भी हडताल हुई। वह इन गर्म ओडायर महाशयसे न सही गई। पंजाबके नेता पकडे गये। उन पर जो मामला चलाया गया था उसने उस शान्ति-पूर्ण कार्यको षडयन्त्र और युद्ध छेडना कहा था। सरकारकी तरफसे कहा गया था—

"१९१९ की १८ वीं अप्रेलको वडी कौन्सिलसे रोलेट विल पास हुआ तब पंजाबके वाहरके लोगोंने शोरगुल मचानेवाली सभाएँ करके गवर्नमेन्टके विरुद्ध जनतामें उत्तेजन फैला उसे इस तरह भयभीत करनेके लिये सर्वत्र हडताल करानेको षडयन्त्र रचा जिससे वह कानूनको नामंजूर कर दे। अभियुक्त उसमें शामिल हुए, तदनुसार भारत और विशेष कर पंजाबमें उक्त षडयन्त्रियोंने अभियुक्तोंके सहित ३० मार्चको सर्वत्र हडताल मनानेकी घोषणा की जिससे अशान्ति हो। देशका आर्थिक कार्य रुके और गवर्नमेन्टके विरुद्ध अप्रेम और शत्रुताके भाव पैदा हो।" फिर सरकारकी ओरसे कहा गया था कि "९ वीं अप्रेलको गवर्नमेन्टके विरुद्ध अप्रेम और शत्रु-ताके भाव फैलानेके लिये रामनौमीके उत्सवके समय अभियुक्तोंने कानूनसे स्थापित सरकारके विरुद्ध हिन्दुओ और मुसलमानोमें भाईचारेके वर्ताव होनेका उत्तेजन दिया। १० वीं अप्रेलको शान्ति और व्यवस्था वनाये रखनेके लिये पंजाव-सरकारने गान्धी नामक एक षड्यन्त्रीका पंजाबमें प्रवेश निषिद्ध किया। और उसी दिन अमृतसरके दो अन्य षडयन्त्री किचलू और सत्यपालको देश निकालेकी सजा दी। सरकारने शान्ति-रक्षाके लिये जो ये पूर्वोपाय किये, इससे षडयन्त्रियोको महाराजके विरुद्ध युद्ध छेडनेका मौका मिल गया।"

इन शब्दोंसे सरकारका भय और गलत समझी पर प्रकाश पडता है। सातवीं अप्रेलको व्यवस्थापक सभाकी वैठकके वाद जव रायजादा भगतरामजी सर ओडा-यरसे मिलने उनके ड्राइंग रूममे गये तव उन्होंने पूछा—"आप लोगोंने जालन्धरमें कैसी हड़ताल मनाई। रायजादाने उत्तर दिया—पूरी हडताल मनाई गई और कोई उत्पात नहीं हुआ। सर ओडायरके उसका कारण पूछने पर उक्त रायजादा साहेवने कहा कि "इसका कारण म० गान्धीका आत्मवल है। इस पर सर ओडा-

यरने ऊपर हाथ उठा कर कहा कि रायजादा साहेब ! याद रक्खो एक दूसरा भी वल है जो गान्धीके आत्मवलसे वहुत वडा है ।"

इन वातोंसे प्रमाणित होता है कि उन्होंने सव तरहकी राजनीतिक जागृति नष्ट करनेका कोई भयंकर सकल्प प्रथमहीसे कर लिया था और वही आगे आकर प्रत्यक्ष हुआ ।

लोगोंको पागल बना देनेवाला अकुशका प्रहार प्रथम अमृतसरमें ही हुआ ६ अप्रेल वही प्रख्यात पवित्र दिन था और उसके वाद ९ वीं अप्रेलकी रामनौमी थी। वह रामनौमी उस एकताके सूतमें अपूर्व गुँथ गई थी जिसकी इतिहासने अव वरके वाद कभी झाँकी भी नहीं की थी । डाक्टर किचलू और सत्यपाल इस नैया कर्णधार थे । २९ वीं मार्चको डा० सत्यपाल और ९ वीं अप्रेलको किचलू आदि कई प्रमुख पुरुष पकड़ कर कैद किये गये । यह समाचार विजलीकी तरह नगरमें फैला। जनता भीड़के रूपमें डिप्टी कमिश्नरके वंगलेकी ओर गई । उसका अभिप्राय उनसे प्रार्थना करके अपने नेताओंको छोडनेकी विनती करनेका था । सव नंगे सिर और नंगे पैर थे और सव निहत्थे थे । पुलिसने उन्हें रोका और गोली चलाई। जनता विगडी और मकानोंमें आग लगाने और हत्या करने लगी । दो चार आदमी मार डाले गये। दो चार मकान जलाये गयें। दो एक वैंक लूटे गये । यह याद रखनेकी वात है कि उत्तेजनाके पर्देमें वदमाशोंने अपना अवसर न खोया । पीछे पुलिसके सिपाहियोंके पास तक लूटका माल वरामद हुआ ।

हत्या और अग्निकाण्ड ऐसा अकस्मात् हुआ कि वे उस समय शक्तिहीनसे हो गये। मि० किचिनने अपने वयानमें हंटर कमेटीके सामने कहा था कि सडक पर भीड थी, पर किसीने मोटर पर जाते देख कर भी छेडछाड नहीं की । यह १० वींकी शामकी वात है । मि० किचिन ११ वींको लाहौर लौटे और दूसरे दिन मोटर पर ही फिर आये तव तक कोई उत्पात नहीं था । इसी वीचमें जनरल डायरने कोई १२ आदमी नगरमे गिरफ्तार कर लिये थे ।

१० वींकी रातको नगरमें कुछ प्रवन्ध नहीं था, पर कहीं चोरी लूट नहीं हुई। ११ वींको लोग मुर्दोंकी अन्त्येष्टि धूमधामसे करना चाहते थे । वड़ी कठिनतासे हुक्म मिला कि जुलूस २ वजेसे प्रथम ही लौट आवे—वैसा ही हुआ । उसके वाद १३ वींको वह जलियांवाले वागका भीषण हत्याकाण्ड हुआ ।

एक बार गोली खाकर भी अब तककी घटनाओसे सिद्ध होता है कि जनता शान्त थी। १३ वीं अप्रैलको सवेरे ९॥ बजे जनरल डायर कुछ सैनिक साथ ले नगरमें घुसा और एक घोषणा की—जिसका अन्तिम भाग यह था—"किसी तरहका जुलूस नगरके किसी भागमें या बाहर किसी समय न निकलने पायगा। कोई ऐसा जुलूस या ४ आदमियोंकी भीड़ गैर-कानूनी समझी जायगी और आवश्यकता होने पर हथियारके बल पर वह छिन्न भिन्न कर दी जायगी।"

यहाँ यह बात ध्यानके काबिल है कि उक्त जलियानवाली सभाकी घोषणा विच्छेदित कर दी गई थी और उस दिन वैशाखी मेलेका दिन था जिसमें शामिल होनेको बाहरी गाँवोंसे बडी भीड चली आ रही थी—जिन्हें घोषणाका कुछ भी पता न था। और यह बात भी सोचनेकी है कि जनरल डायरने अपने बयानमें पीछे यह स्वीकार किया है कि नगरके बहुतसे भागोंमे घोषणा नहीं सुनाई गई। इसके सिवा करीब करीब उससे कुछ प्रथम ही एक लडका कनस्तर पीट कर तमाम बाजारमें यह कहता फिर रहा था कि जलियानवाले बागमे आज शामको सभा होगी। उस बेचारेको सरकारी कार्रवाईका कुछ भी ज्ञान न था। पौन बजे डायरको सभाकी सूचना मिली। उन्होंने अपने बयानमें स्वीकार किया है कि उन्होने सभाको रोकनेकी कोई चेष्टा नहीं की। ४ बजे शामको उन्हें निश्चित सूचना मिली कि सभा हो रही है। तत्काल वे गोरखे और सिक्खोंकी टुकडी लेकर वहाँ पहुँचे। और शस्त्रोंके साथ साथ मशीनगन भी थी। ५। बजे बागमें पहुँचे। बागमे केवल ३ वृक्ष, १ मण्डप और एक कुँआ है। और उसका दर्वाजा इतना सकडा था कि मशीन-गन उसमे होकर नहीं जा सकती थी। हाँ दर्वाजेसे मिली हुई ऊँची भूमि थी। उसी पर डायरने अपनी गन जमाई—क्योंकि फैरके लिये वह सबसे उत्तम जगह थी। इसके पीछे वे ९० सैनिकोंके साथ जब बागमे घुसे तब भीडके निकलनेका कोई मार्ग नहीं रह गया था।

यह बात प्रमाणित की गई है कि डायरके वहाँ पहुँचनेके समय कोई २० हजार आदमियोंकी भीड़ थी। उस पर हवाई जहाज मँडरा रहा था। भीड़मे कुछ लडके थे। कुछ लोग बच्चोको गोदमे लिये पहुँचे थे। जनरल डायरने जो किया वह उसीके शब्दोमें लिखते हैं—यह जवाब हंटर कमेटीके सामने हुए थे।

प्रश्न—बागमें पहुँच कर तुमने क्या किया?

उत्तर—मैंने फैर करना शुरू कर दिया ।

प्रश्न—फौरन ?

उ०—फौरन ही । मैंने मामले पर विचार कर लिया था । और मैं नहीं समझता कि मुझे अपना कर्तव्य समझनेमें ३० सैकन्डसे ज्यादा समय लगा ।

प्र०—भीड़ क्या कर रही थी ?

उ०—लोग सभा कर रहे थे । बीचमें ऊँचे प्लेटफार्म पर एक आदमी था जो शायद व्याख्यान दे रहा था ।...वह मेरे सैनिकोंसे कोई ५० या ६० गज पर था। जनरलने स्वीकार किया था कि भीड़मे ऐसे आदमी हो सकते थे जिन्होंने घोषणा नहीं सुनी हो। इस पर लार्ड हंटरने पूछा—यह सोचने पर कि ऐसे लोगोंके भी भीड़में होनेकी सम्भावना है जिन्हें घोषणाका पता नहीं—क्या तुम्हें यह नहीं सूझी कि फैर शुरू करनेसे पहले भीडको तितर-वितर हो जानेको कहते ।

डा०—नहीं । उस समय मैंने यह नहीं सोचा । मुझे केवल यही मालूम हुआ कि मेरी आज्ञाका पालन नहीं हुआ.. ...मैंने तत्काल फैर की ।

प्र०—क्या इसके प्रथम कोई कार्रवाई भीड़ने की थी ।

उ०—नहीं । भीड भाग निकली थी ।..

प्र०—इतनी बडी कार्रवाईके पहले क्या तुमने नगरकी व्यवस्थाके जिम्मेदार डिप्टी कमिश्नरसे राय लेना उचित नहीं समझा ?

३—राय लेनेको कोई डिप्टी कमिश्नर नहीं था । और मैं किसीसे राय लेना ठीक नहीं समझता था ।

प्र०—फैर करनेसे तुम्हारा उद्देश्य क्या भीड़को तितर-वितर करनेका था ?

उ०—नहीं साहब ! जब तक भीड तितर-वितर न होले तब तक फैर करनेका मेरा विचार था ।

प्र०—जैसे ही तुमने फैर की क्या वैसे ही भीड तितर-वितर होने लगी ।

उ०—तुरन्त ही ।

प्र०—तुमने फिर भी फैर जारी ही रक्खी ।

उ०—हाँ ।

फिर अनेक प्रश्नोंके उत्तरमें जे० डायरने कहा कि मैंने कोई १० मिनिट तक फैर की...। उसने १६५० गोली चलाई। उसने यह भी स्वीकार किया कि “ यदि मैं

वागके भीतर तोप ले जा सकता तो वहींसे फैर करता और मैंने तब फैर बन्द की जब मेरे पास एक भी गोली न बची। भीड बडी गहरी थी मैंने घायलोंको सहायता देने या उठानेका कोई प्रबन्ध नहीं किया। उस समय सहायता करना मेरा कर्तव्य नहीं था। यह डाक्टरी प्रश्न था। बीच बीचमें मैं अपनी फैर बन्द कर देता और ऐसी जगहो पर फैर करता जहाँ भीड सबसे अधिक घनी होती। ऐसा मैंने इस लिये नहीं किया था कि भीडवाले जल्दी नहीं जा रहे थे, बल्के इस लिये कि मैंने दृढ निश्चय कर लिया था कि एकत्र होनेके लिये उन्हें सजा दी जाय।"

ये बातें उस हत्यारे आदमीकी खूनी प्रकृतिका काफी परिचय देनेवाली हैं। अब ऑखो देखी बातें कहनेवालेके वयानसे घटनाका वर्णन सुनिये। लाला गिरधारीलाल यह दृश्य अपने ऊँचे मकानसे देख रहे थे। उनका कहना है कि सैकडो आदमी वहीं मरे देखे गये। सबसे बुरी बात तो यह थी कि जिन दर्वाजोंसे लोग भाग रहे थे उन्हींकी ओर फैरके निशान होते थे। कितने ही तो भागती हुई भीडके पैरो तले रोदे गये। खूनकी तो नदी बह रही थी। जमीन पर पडे हुए लोगों पर भी फैर की गई। लाशो और घायलोकी खवर लेनेका अधिकारियोंकी ओरसे कुछ प्रवन्ध नहीं हुआ। तब मैंने घायलोको पानी तथा ऐसी सहायता दी जो सम्भव थी। मैंने घूम घूम कर कुल स्थान देखा। कई स्थानों पर ढेरकी ढेर लाशें देखीं। लाशें जवानों और बालकोंकी भी थी। कुछके सिर फट गये थे, कुछकी ऑखे फूट गई थीं। और कितनोहीकी नाक, छाती, भुजा या पैर चूर चूर हो गये थे। मैं समझता हूँ उस समय बागमें कुछ नहीं तो एक हजार आदमियोंकी लाशे रही होगी। कितने ही लोग तो लाशे भी न उठा सके। क्योंकि डायरकी घोषणाके दूसरे भागमे यह भी कहा गया था कि ८ बजे रातके बाद कोई अपने मकानसे बाहर न निकले। यदि उसके बाद कोई दिखाई देगा तो गोली मार देने योग्य होगा। ...जो घायल किसी तरह बागसे बाहर निकल सके थे उनमेंसे कितने ही राहमे मर गये। और उनकी लाशें सडको पर पडी रहीं!

यह भीषण हत्याकाण्ड था जिसे सत्यवादी धर्मात्मा एन्ड्रयूजने कतल कह कर पुकारा है। अगले दिन शामको ५ बजे इसी आदमीने उर्दूमें एक व्याख्यान दिया था जो इस प्रकार है—"तुम लोग अच्छी तरह जानते हो कि मै एक फौजी आदमी हूँ। तुम शान्ति चाहते हो या युद्ध। यदि युद्ध चाहते हो तो सरकार उसके (?) लिये तैयार है। अगर शान्ति चाहते हो तो मेरा हुक्म (?) मानो।..

नहीं तो मैं गोली मार दूँगा । मेरे लिये फ्रांसका युद्धक्षेत्र और अमृतसर एक जैसा (?) है......"

कौनसा ऐसा हृदय है जो इस क्रूर सिपाहीकी कायरता-पूर्ण बातोंसे घृणा न करे जिसने सशस्त्र होकर, निरीह, दुर्बल, शस्त्र-हीन और जख्मी प्रजाको ऐसी निर्लज्जता-पूर्वक युद्धके लिये ललकारा और जिसने शान्तिका मोल अपना (?) हुक्म रक्खा और जिसने उसकी अवज्ञाका दण्ड गोली मार देना ठहराया! यह आदमी भीषण फ्रांसके युद्धक्षेत्रकी अमृतसरको उपमा देनेमें भी कुण्ठित न हुआ । यह अँगरेज जातिकी वीरताका—ओजस्विताका—एक जीवित दृष्टान्त था जिसने भारतके बच्चे बच्चेकी आँखे खोल दी है । इसने हंटर कमेटीके सामने कहा था कि—सर ओडायरने मेरे कामको स्वीकार किया इस लिये हम हार कर यह कहने पर मजबूर हैं कि उक्त 'कतल' का जिम्मेदार हत्यारा डायर नहीं है—उसकी जिम्मेदार अँगरेजी सरकार है । अफसोस ।

हम अत्यन्त दुःख और क्षोभसे जनताके किये अँगरेजोंके वध और अग्निकाण्डको देखते हैं । न उनका पक्ष लेते हैं और न उन्हें अनिन्दनीय बताते हैं । परन्तु क्रुद्ध भीड़वालोंका काम चाहे जैसा कापुरुषता-पूर्ण, अनीतिमय तथा नीच हो उसके लिये सरकारके द्वारा दण्ड देना या न्याय करना ही उचित था—बदला लेना नहीं । हमें यह मानना ही पडा कि बदला ही लिया गया । और यह अनेक प्रमाणोंसे प्रमाणित भी किया जा सकता है । १० तारीखको अमृतसरके एक प्रतिष्ठित निवासी लाला ढोलनदास जब अधिकारियोंके बुलाने पर उनके पास गये तो उन्हें क्रोधमें पाया । सभी क्रोधमें थे ' मि० सियोरने कहा कि एक अँगरेजकी जानके बदले १ हजार हिन्दुस्तानियोंकी जानें ली जावेंगी । किसी किसीकी तो नगर पर गोलाबारी करनेकी राय थी । तब ला० ढोलनदासने कहा कि यदि किसी भी प्रकारसे सुनहरे मन्दिरका कोई भाग छू गया तो संकटोंका अन्त ही न होगा । बैरिस्टर मि० मुहम्मद सादिक कहते हैं कि ११ वींको लाशोंके सम्बन्धमें जब मैं अफसरोंके पास गया तो उन सबके यही भाव थे कि बदला लिये विना न रहा जायगा । और आवश्यकता होने पर नगर पर गोलाबारी की जायगी । सब असिस्टैन्ट सर्जन डा० बालमुकुन्द कहते हैं कि ११ वीं अप्रेलको सिविल सर्जन कर्नेल स्मिथने कहा था कि जनरल डायर आ रहे हैं वे नगर पर गोलाबारी करेंगे । उन्होंने शकलें खींच कर बतलाया था कि किस तरह नगर पर गोले बरसाये जायँगे और किस तरह वह आध घन्टेमें

ज़मीदोज़ कर दिया जायगा। इस तरह स्पष्ट है कि क्यों और किस तरह १३ वीं अप्रैलका भीषण काण्ड इरादतन उपस्थित किया गया था और वास्तवमें वह भीड़ छाँटना नहीं था—भड़के लोगोंके मूर्खता-पूर्ण कार्योंका प्रजासे बदला लेना था।

बदलेका प्रश्न ही हिंसाका प्रश्न है। वह क्रूरता, कायरता, नीचता और पापका एक मिश्रण है। जातियाँ ज्यों ज्यो सभ्य होती जाती हैं बदलेका प्रश्न उतना ही तिरस्कृत होता जाता है। परन्तु अँगरेज सरकारने बदला ही लिया।

जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि बदला हिंसाकी नारकीय ज्वाला है। उसकी तृप्ति खूनसे नहीं हो सकती थी, इस लिये खूनसे भी अधिक थर्रानेवाले अत्याचारोंकी अव बारी आई।

१—एक गली पर किसी मिसको उद्धत्त भीड़ने पीटा था। वह गली लोगोंको कोड़े लगानेके लिये चुनी गई। और उस गलीमें पेटके बल रेंग कर चलनेको प्रत्येक पुरुषको मजबूर किया गया। यह गली तंग और गंदी तथा कंकड़ोंसे भरी थी। और १॥ सौ गज लम्बी थी।

२—प्रत्येक अँगरेजको जबर्दस्ती सलाम कराया गया।

३—वेश्याओं तकके सामने सभ्य पुरुषोंको नंगा करके कोड़े लगवाये गये।

४—वकीलोंको स्पेशल कान्स्टेबिल बनाया गया। और उनसे मामूली कुलीकी तरह काम लिया गया।

५—प्रतिष्ठाका विचार बिना किये ही लोग अन्धाधुन्ध गिरफ्तार किये गये। और उन्हें झूठी गवाही देने या अपराध स्वीकार करानेके लिये अपमानित किया और कष्ट दिया गया।

६—अपराधोकी जाँचके लिये उसी अमानुषी कानून रोलेट बिलकी रूसे खास अदालत बनाई गई जिसकी न अपील, न दलील, न वकील था।

लाला मेघमल कहते हैं कि—

"मेरा मकान कूचा कुरोच्चनमें और दूकान गुरुबाजारमें है। जब मैं शामको घर आया तो सैनिकोंने रोक कर पेटके बल रेंगनेका हुक्म दिया। मैं भाग गया। और सैनिकोंके रहने तक बाहर रहा। मैं उस दिन ८ बजे रातको घर लौटा और अपनी स्त्रीको ज्वर-ग्रस्त पाया। घरमें पानी नहीं था। बहुत रात बीते मुझे स्वयं पानी

भरना पड़ा। पीछे ७ दिन तक दवा-दारूका कुछ भी प्रबन्ध नहीं हो सका, क्योंकि कोई डाक्टर पेटके बल रेंगना नहीं पसन्द करता था।

लाला रलियाराम कहते हैं—" जब मैं पेटके बल रेंग रहा था तब मुझे बूट और बन्दूकके कुन्दोंसे ठोकरें मारी गई। उस दिन मैं खाना खाने घर नहीं लौटा...। पूरे ८ दिन भंगी नहीं आया। न टट्टियाँ साफ हुईं और न कूड़ा कर्कट हटाया गया "।

जैन मन्दिरके लाला गणपतिरायजी कहते हैं कि " जो लोग पूजाके लिये मन्दिरमें जाते थे उन्हें भी उसी तरह पेटके बल रेंग कर जाना पड़ता था।

महानचन्द २० वर्षके अन्धे थे। वे भी पेटके बल रेंगवाये गये। और उन्हें ठोकर मारी गई।

अब्दुल्ला मास्टरको भी ठोकर मारी गई। मोटे होनेके कारण उनके कुल शरीरमें खरोंच लग गई।

जब लोग पेटके बल रेंगवाये गये थे तभी पवित्र कबूतर और पक्षी मारे जाते थे। पिंजरापोल गन्दा किया गया। और सैनिकोंने गलीके कुँओंके पास टट्टी-पेशाब कर उन्हें अपवित्र किया। सरकारी कथन है कि करीब ५० आदमियोंको यह बर्बर और अमानुषी सजा दी गई।

लोगोंसे जबरदस्ती सलाम करानेका जो हुक्म जारी किया गया था उसके पूरे कष्टोंका पता तो उन्हें ही है जिन्हें सलाम करना पड़ता था। उनसे खास ढंगसे सलाम ही नहीं कराया जाता बल्के सलाम न करनेवालोंको तरह तरहकी सजाएँ भी दी जाती थीं।

१८ वीं अप्रेलको ला०हरगोपाल खन्ना बी० ए० अपने मित्रोंके साथ एक गलीसे जा रहे थे। उन्होंने जे०डायरको देख कर सैनिक ढंगसे सलाम किया। इस पर उनसे कहा गया कि तुम सलाम करना नहीं जानते। इस लिये कल रामबागमें हाजिर हो। उन्होंने नगरके सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० प्लोमरसे पूछा कि रामबागमें कहाँ हाजिर होऊँ। तो उन्होंने एक कान्स्टेबिलको हुक्म दिया कि इसे कोतवालके पास ले जाओ। वहाँ पहुँचाये जाने पर उन्हें दो तीन आदमियोंके साथ गीली धरती पर पलौथी मार कर बैठना पड़ा। ७ बजे शामको और भी आदमी आये। उन्हें उसी जमीनमें लेट

कर रात काटनी पड़ी। सवेरे वे रामबाग पहुँचाये गये—जहाँ उन्हें धूपमें तब तक खड़े रहना पड़ा जब तक एक सर्जेन्टने उन्हें सलाम करना नहीं सिखाया।

आनरेरी मजिस्ट्रेट मि० फिरोजदीन कहते हैं कि "जनरल और मि० ड्रोमरको सलाम करते समय खड़े न होनेके कारण लोगोंको कोड़े लगाये गये और गिरफ्तार किये गये। लोग इतने भयभीत थे कि भूल करके सजाओंसे बचनेके लिये कितने ही तो एक प्रकारसे दिन दिन भर खड़े ही रहते थे।"

सबके सामने कोड़े लगाना अपमान-जनक ही नहीं अति दुःखदायक था। गलीके भीतर टिकटीसे बाँध कर ६ लड़कोंको बेंत लगाये गये। प्रत्येकको ३०।३० बेत लगाये गये। एक लड़का सुन्दरसिंह चौथे बेंतमें बेहोश हो गया। एक सैनिकके उसके मुँहमे पानी छोड़नेसे वह फिर होशमे आया। और फिर बेत उसको लगाये गये। वह दुबारा बेहोश हो गया। पर जब तक ३० बेंतोंकी गिन्ती पूरी न हुई बराबर उसकी मूर्च्छित देह पर बेंत पड़ते गये। अन्य लड़कोंके साथ भी यही किया गया। वे बेहोश थे—उनके शरीरसे खून बहता था—वे चलनेमें असमर्थ थे। वे घसीट कर किले पहुँचाये गये।

ला० कन्हैयालाल पुराने और प्रतिष्ठित वकील हैं। वे भी स्पेशल कान्स्टेबिल बनाये गये। वे कहते हैं कि—

"अन्य वकीलोंके साथ २२ अप्रेलको मुझे भी कान्स्टेबिल बनाया गया, जब कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। ..मेरी बुढाईमे मुझसे कुलीका काम लिया गया। मुझसे मेज कुर्सी ढुलवाई गई। और कड़ी धूपमे नगरमें गश्त लगाना पड़ा। हमें जो अपमान और गालियाँ सहनी पड़ीं उनसे हमारे कष्ट और भी बढ गये। मैं विश्वास नहीं करता कि हमारी नियुक्ति शान्ति रक्षाके लिये थी, बल्कि हमें सजा देनेकी यह युक्ति थी।

हाईकोर्टके वकील ला० बालमुकुन्द भाटिया म्युनिसिपिल कमिश्नर कहते हैं—

"हमें जमीन पर बैठना पड़ता था और नागरिकोंको कोड़े लगानेका दृश्य देखनेका हमें खास हुक्म था। शामको हम सब एक कतारमे खड़े किये जाते थे। ले० न्यूमैन हमारा अफसर बनाया गया था। हममेसे एकको उसने ठोकर मारनेकी धमकी दी थी। हमें बराबर दिन भर हाजिर रहना पड़ता था। हमें बराबर याद दिलाई जाती थी कि हम कान्स्टेबिलसे अधिक कुछ नहीं हैं।

और असावधानी करनेसे कोडे, जेल तथा मौत तककी सजा हमें दी जा सकती है। कुल ९३ वकीलोंका इस प्रकार अपमान किया गया।"

लाला गिरधारीलाल कहते हैं कि—"मुझे स्मरण है कि पुलिसने १२ अप्रेलसे लोगोंको गिरफ्तार करना शुरू किया और उसके बाद वह क्रम कभी नहीं टूटा। किसी पर कोई अभियोग लगाये बिना ही अपने शान्ति-पूर्ण कारवारमें लगे हुए लोग पकडे जाते थे और महीनों सड़ाये जाते थे।

जब उन्हें मालूम हुआ कि पुलिस उनकी खोजमें हैं तो वे पुलिसके अधिकारीके पास गये। उन्हें तत्काल हथकडियाँ पहना दी गई और पूछने पर भी कारण नहीं बताया गया। २२ अप्रेलके ११ बजेसे दूसरे दिनके ८ बजे सबेरे तक उन्हें कुछ भी खानेको नहीं दिया गया। वे एक छोटेसे कमरेमें १० या ११ आदमियोंके साथ बन्द किये गये। एक कोनेमें दुर्गन्ध करता हुआ पात्र था। सबेरे कुछ मिनटोंके लिये वे टट्टी होने आदिको बाहर निकलने पाये और फिर उसी कमरेमे बन्द कर दिये गये। न उन्हें नहाने और न कपडे बदलनेकी आज्ञा थी। एक कान्स्टेबिलसे उन्हें पानी मिला। मईमें सब समयसे अधिक गर्मी पड़ती है। इससे उनके कष्टका अनुमान किया जा सकता है। पीछे जब वे अफसरके सामने पेश किये गये तब एकने उनके सम्बन्धमे अपमान-जनक बातें कहीं। २४ वीं मईको वे जेलमे भेजे गये जहाँ ऐसा खाना मिलता था जो मनुष्यके खानेके योग्य नहीं था। २७ वींको वे और उनके साथी हथकडियाँ पहना कर लाहौर भेजे गये। उनसे जो बात करता वह भी तुरन्त पकडा जाता था। लाहौर स्टेशनसे कोर्ट तक दो मील वे पैदल घसीटे गये। राहमें पुलिस इन्स्पेक्टरनें उन्हें पानी नहीं पीने दिया। कोर्टके बाहर दिन भर उन्हें ठहरना पडा। वहाँमे वे सेन्ट्रल जेल भेज दिये गये। जहाँ प्रत्येक आदमी ७ फुट लम्बे, २ फुट चौडे और ४ फुट ऊँचे लोहेके पींजरेमें बन्द कर दिया गया।

सेठ गुलमुहम्मद २० वीं अप्रेलको नमाज पढते हुए पकडे गये। कोतवालीमें जवाहिरलाल इन्स्पेक्टरने उनकी दाढी पकड कर इतने जोरसे थप्पड मारा कि वे काँप उठे। तब उसने कहा कि कह दो कि 'डा० किचलू और सत्यपालने छठीको हडताल करनेको मुझे उभाडा था, और यह कह मुझे उत्तेजित किया था कि देशसे अँगरेजोंको मार भगानेके लिये हम बम काममे लावेंगे'। उनके इन्कार करने पर इन्स्पेक्टरने अपने एक मातहतसे कहा कि इसे भीतर ले जाकर ठीक करो। कुछ क़दम ले

जानेके बाद कॉंस्टेबिलने कहा कि इन्स्पेक्टर जो चाहते हैं कह दो। पर उन्होंने इन्कार किया। तब कान्स्टेबिलने उनका हाथ पकड कर उसे चारपाईके पायेके नीचे दबा दिया जिस पर ८ कान्स्टेबिल बैठ गये। जब उन्हें पीडा असह्य हुई तो वे चिल्ला कर बोले मुझे छोड दो कहोगे वही करूँगा। वे फिर उक्त इन्सपेक्टरके पास लाये गये और फिर उन्होंने डाक्टरोंको फँसानेसे इन्कार कर दिया। तब वे एक कमरेमें बन्द रक्खे गये। पीछे वे बेंतो और थप्पड़ोंसे पीटे गये। आठ रोज बाद उन्होंने हार कर बयान कर देनेकी बात स्वीकार की। वे मजिष्ट्रेट आगा इब्राहीमखॉंके पास पहुँचाये गये। तब उन्होंने सारी बातें कह दीं। आखिर दस दिन बाद वे इस शर्त पर छोडे गये कि हर रोज कोतवालीके सामने हाजिर हुआ करो।

सरदार आत्मासिंह ज० डायरके सामने १३ वीं अप्रेलको पकडे गये। वे कहते हैं कि—"उन्होंने मेरी एक भुजा कपडेसे बाँधी और अपने साथ कई गलियोंमें घसीटा।" एक ब्रिटिश सैनिकने उन्हे पानी नहीं पीने दिया। रातको ९ आदमी एक छोटीसी कोठरीमें बंद किये गये। १५ वींको वे जनरलके सामने पहुँचाये गये। फिर एक पेडमें बाँधे गये जहॉं उनको गालियॉं दी गई और दिल्लगी उडाई गई। एक सार्जेन्टने उनकी सोनेकी घडी और अँगूठी छीन ली। मुहम्मद इस्माइल और उनका बाप तथा अब्दुल अजीज भी पकडे गये और सताये गये। ला० रलियाराम ५८ वर्षके बूढे पैंशनर हैं। एक दारोगाने उनसे मिस शेरवुडके पीटनेवालोंके नाम बतानेको कहा। उन्होने कहा कि मै कुछ नहीं जानता, क्योंकि मैं उस समय वहॉं था नहीं। इस पर वे बेंतसे पीटे गये और उनकी डाढी उखाड ली गई। ला० दादूमल पीटे और पेटके बल रेंगवाये गये। वे और उनका लडका दोनों पकडे गये और उन्होंने १००) पुलिसके लिये बाजारके मुखियाको दिया। फिर पकडे जाने पर और ५०) रु० देने पडे। उनकी दूकानसे पुलिस जबर्दस्त मलाई आदि खाती थी। उनका लडका ८ दिन हाजतमें रक्खा गया और ३० बेंत उसे लगाये गये। ला० सखारामने देखा कि धनीराम बैठाये गये थे। और उनसे उनके पैरोंके नीचेसे हाथ निकाल कर दोनों कान पकडवाये गये थे।

गुलामकादिरको गिरफ्तार करके लूटका माल पूछा और कहा कि दो तीन आदमियोंके नाम भगतनवाला स्टेशन लूटने और जलानेवालोंमें ले दो। इन्कार करने पर वे खूब पीटे गये। इनका कहना है कि "मैने पीरा गूजरको जमीन पर पडा हुआ देखा और एक हवलदारने अमीरखॉं दारोगाके सामने उनकी गुदामें एक

छडी घुसेड दी। मैं उस हवलदारको देख कर पहचान सकता हूँ। वह बराबर चिल्लाता रहा। किन्तु पुलिसने दया न दिखाई। मिराजदीन नाईकी भी गुलाम-कादिरकी तरह ही दुर्गति की गई। मसजिदके इमामगुलाम जिलानीको सबसे अधिक वेदना पहुँचाई गई। उनका पूरा बयान रोमाञ्चकारी और भीषण है। उनका समर्थन मिया फिरोजदीन और बैरिस्टर गुलाममसीन भी करते हैं। मुहम्मद शफी भी वैसा ही कहते हैं और उनका कहना है कि वैसे ही कष्ट एक खैरदीन नामक व्यक्तिको भी पहुँचाये गये। जो अन्तमें मर ही गया। मिया कमरुद्दीनखॉ जमींदार और हाजी शमशुद्दीन जमींदार भी गुलाम जिलानीकी चोटोंके देखनेकी बात कहते हैं। हाजीका कहना है कि उन लोगोंने उसकी गुदामें छडी घुसेड दी थी। उनकी दशा बडी शोचनीय थी। उनका पाखाना पिशाव निकल रहा था। पुलिसवाले उसे दिखा दिखा कर हमसे कहते थे कि यही दशा उनकी होगी जो गवाही न देंगे।

बैरिष्टर मि० बदहल इसलाम अलीखॉ १८ वीं अप्रेलको पकडे गये। पुलिसवाले उनकी स्त्रीके सोनेके कमरेमें घुस गये। जब स्त्रीने उन्हें निकल जानेको कहा तब उन्होंने इन्कार कर दिया। कोतवालीमे मि० प्लोमरने उनसे कहा कि यही आदमी है जो पंजाबका लाट होना चाहता है। उन्हें बडे बडे कष्ट दिये गये।

ऊपर जो अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियॉ और झूठी गवाहियॉ तैयार करनेके लिये दी हुई घोर यन्त्रणाओंका वर्णन है वह मार्शल-लॉके नाम पर किये गये अत्याचारोका सबसे भीषण दृश्य है। इससे पता लगता है खून भी किया गया और जूतियाँ भी मारी गईं। गला भी काटा गया और नाक भी काटी गई। जान भी ली गई और इज्जत भी ली गई। मेरे लिये अशक्य है कि इस पुस्तकमें विस्तारसे इस पाप-कथाका वर्णन करूँ। इस भीषण हत्याकाण्डकी जॉचके लिये कांग्रेसकमेटीने जो कमीशन बनाई थी और जिसके सभापति गान्धी थे, उसने करीब १७०० आदमियोंकी गवाहियॉ ली हैं। उनमेसे दो चार उद्धृत करके मैं इस दुखदाई अध्यायको समाप्त करूँगा।

× × × ×

पंजाब चेम्बर आफ कामर्सके डिप्टी चेयरमेन और अमृतसर फ्लावर ऐन्ड जेनरल मिल्स कम्पनीके मैनेजिंग डाइरेक्टर लाला गिरधारीलालका बयान (अमृतसर)।

१५ वीं अप्रेलको दूकानें खुलीं और हडतालका अन्त हुआ। हडतालके बाद शहरमें साधारण-रूपसे कामकाज शुरू होने पर शान्ति-पूर्वक और सान्त्वनाके

भावसे व्यवस्था करनेके बदले अधिकारियोने लोगोके दिलोंमें भयका सञ्चार करनेके लिये तरह तरहके मर्यादा तोडनेवाले उपायोसे काम लिया। शहरके सभी वकीलोंको स्पेशल कांस्टेबिल बनाया गया, उनका अपमान किया गया और उन्हें गालियाँ दी गई। उन्हें खुले आम कोडे लगते दिखाये गये। और कुलियोंकी भाँति उनसे अस्वाव ढुलाया गया। शहरके सभी यूरोपियनोंको सलाम कराया गया। जिन्होने सलाम नहीं किया वह गिरफ्तार कर हवालातमें बन्द रक्खा गया। कुछको तो कडी धूपमें घन्टो खडे रहनेका हुक्म दिया गया और कितनोंको कुछ समय तक अभ्यास करके सलाम करना सीखना पडा। प्रतिष्ठित पुरुषोको हथकडियाँ पहनना तो प्रति दिनकी घटना हो रही थी। पेटके बल रेंगनेका अमानुषिक और असह्य हुक्म कई दिनो तक जारी रक्खा गया। एक अन्धे आदमीको भी वैसा ही करना पडा। और न कर सकने पर उसे ठोकर लगाई गई। पुलिस अनेक तरहके निर्दयता-पूर्ण उपायोसे लोगोंको अत्यन्त पीडा पहुँचाती थी। ऊँचे हाथ बाँध कर कोडे लगाना तो साधारण बात थी। प्राय ऐसा हुआ कि आदमियोके हाथ चारपाईके पायोके नीचे दवा कर उस पर बहुतसे आदमी बैठते थे। हाजतमें रक्खे हुए लोगोंको दिशा पेशावके लिये सहज ही हुक्म नहीं दिया जाता था। गाली देना, थप्पड मारना, लोगोकी मूछों और डाढीके वाल उखाडना हल्की सजाएँ समझी जाती थीं। यहाँ तक कि पुलिस जैसा चाहती थी वैसी बातें करानेके लिये उसने कई आदमियोकी हथेली पर धधकता हुआ कोयला तक रखवा दिया था। एक आदमीके हाथोमें कीलें गाडी गई। एक मूत पीनेको लाचार किया गया। और अन्योकी गुदामे छडियाँ घुसेडी गई।

× × × ×

अमृतसरकी एक विधवा दुखियाका वयान—

१० वींको ११ बजेके करीव मेरा लडका गुरदित्ता घरसे स्टेशनको रवाना हुआ। उसे अपने सम्बन्धीसे भेट करनेको हुशियारपुर जिलेके मेकारियान स्थानको जाना था। जव वह रेल्वे पुल पर जा रहा था उनके दोनों पैरोमें गोली लगी। वह अपनी दूकानमें लाया गया जहाँ वह सोनेका गोटा बनाया करता था। मैंने डाक्टर ईश्वरदासको बुलाया जिन्होंने ५ दिन उसकी दवा की। मेरी गलीमें रहनेवाला कान्स्टेविल बुआदित्ता आया। उसने पूछा कि पैरोमें चोट कैसे आई? हाल मालूम कर वह चला गया। और थोडी ही देर वाद कई कान्स्टेविलोंको

लेकर आया जिन्होंने मेरे रोगी बेटेको खूब पीटा और थानेमें ले गये। फिर वह अस्पताल भेजा गया जहाँ १५ दिन तक रहा और पीछे कोतवाली भेजा गया। जहाँ वह २२ दिन रक्खा गया। फिर वह मि० पकिलके सामने हाजिर किया गया—जहाँ उसे दो वर्षकी कडी कैदकी सजा दी गई। वह अमृतसरकी जेलमें ५ दिन रक्खा गया। वह इतना कमजोर था कि कोई कडा काम नहीं कर सकता था। इस लिये जमादार बूटासिंहने उसे बडी बुरी तरह मारा। यह बात मुझे विशनदासने बताई थी जिन्होंने स्वय अपनी आँखों सब कुछ देखा था। वहाँसे वह माटगोमरी जेल भेजा गया। जहाँसे मुझे तार मिला कि वह मर गया (!!) उसके मरनेकी खबर पा मेरी विधवा लड़की सुनहरे मन्दिरके तलावमें डूब मरी। वही हम सबको रोटी देनेवाला था।

× × × ×

जलियानवाला बागके पास रहनेवाली विधवा रतनदेवीका बयान—

"जब मैंने गोलियोकी आवाज सुनी तब मैं लेटी थी। मैं तुरन्त उठी, क्योकि मेरे पति वहाँ गये हुए थे। इसकी मुझे चिन्ता हुई। मैं रोने लगी और बागको चली। दो स्त्रियाँ मेरी मददको और चलीं। वहाँ मुझे लाशोंके ढेरमें अपने पतिकी लाश मिली। वहाँ तक पहुँचनेका रास्ता खूनसे तर और लाशोंसे ढका हुआ था। कुछ देर बाद ला० सुन्दरदासके दोनों लडके वहाँ आये। मैंने उनसे कहा कि मेरे पतिकी लाश घर ले चलनेको कहींसे चारपाई ला दो। लडके घर गये। और मैंने दोनो स्त्रियोंको भी भेजा। उस समय रातके ८ बज गये थे। और कर्फ्यू आर्डरके डरसे कोई अपने घरके बाहर नहीं निकल सकता था। मैं राह देखती और रोती हुई वहाँ खडी रही। कोई ८॥ बजे एक सिख सज्जन आये। और कुछ और भी आदमी थे जो लाशोके बीचमें ढूँढ रहे थे। मैं उन्हें नहीं जानती थी। पर मैंने उनसे प्रार्थना की कि इस जगह खून भर रहा है—मुझे कृपा कर मदद दीजिये कि मैं अपने पतिकी लाशको सूखेमें कर दूँ। उन्होने लाशका सिर और मैंने पैर पकडा और सूखी जमीन पर रख दिया। मैंने १० बजे रात तक राह देखी। पर वहाँ कोई नहीं आया। मैं उठी और अहलूवाला कटरेकी ओर रवाना हुई। मैंने विचार किया कि ठाकुरद्वाराके विद्यार्थियोंसे कहूँगी कि वे मुझे मेरे पतिकी लाश घर ले जानेमें मदद दें। मैं दूर नहीं गई थी कि पासके एक

मकानकी खिडकीमें बैठे एक आदमीने पूछा कि इस समय यहाँ क्यों आई हो? मैंने कहा—मैं अपने पतिकी लाश घर ले जानेको कुछ आदमियोंकी तालाशमे हूं। उन्होने कहा—मैं एक घायलकी सेवामे हूँ। और ८ वज चुके है इस लिये इस समय तुम्हें कोई मदद नहीं दे सकता।

तव मैं कटरेकी ओर चली और एक और आदमीने वही प्रश्न किया। मैंने उनसे भी वही प्रार्थना की और उन्होंने भी वही जवाव दिया। मैं तीन चार ही कदम आगे वढ़ी हूँगी कि एक वूढ़े आदमीको हुक्का पीते और उनके पास ही कई आदमियोको सोते हुए देखा। मैंने हाथ जोड कर उनसे भी अपनी सारी कहानी कह सुनाई। उन्होने मेरे ऊपर दया कर उन आदमियोंको मेरे साथ जानेको कहा। उन्होंने कहा कि रातके १० वज गये हैं, हम गोली खाकर मरनेको न जावेंगे। यह समय अपनी जगहसे हिलनेका भी नहीं है। तव मैं पीछे लौटी। और मै अपने मृतक पतिकी वगलमे राम आसरे वैठ गई। सयोगसे मुझे एक वाँसका टुकडा मिल गया। जो मैंने कुत्तोंको दूर रखनेके लिये हाथमें ले रक्खा था। मैंने देखा कि तीन आदमी तडफड़ा रहे हैं और एक भैंस छटपटा रही है। १२ वर्षके एक लडकेने दुःखने मुझसे प्रार्थना की कि यह स्थान छोड़ कर मत जाओ। मैंने उससे पूछा कि तुम्हें जाडा मालूम होता हो तो मैं ओढा सकती हूँ। उसने पानी मॉगा पर उस स्थान पर पानी कहाँ था? मैंने घंटे घंटे वाद वरावर घंटे वजनेकी आवाज सुनी। दो वजेके करीव सुलतान गॉवके एक जाटने जो एक दीवारमें फेसा पडा था, मुझसे कहा कि मेरे पास आ मेरा पैर उठा दो। मैं उठी और खूनमें तर उसके कपडे पकड उसका पॉव उठा दिया। ५॥ वजे तक कोई नहीं आया। ६ वजेके करीव ला० सुन्दर-दास, उनके लडके और मेरी गलीके कुछ लोग चारपाई लेकर आये और मै अपने पतिकी लाश उठा कर घर लाई।.........मैंने अपनी सारी रात वहाँ विताई। मुझे कैसा मालूम पडता था वह वर्णन असम्भव है। लाशोंका टेरका टेर वहाँ लग रहा था। कुछ लाशें सीधी पडी थीं, कुछ औंधी। उनमे कितने ही गरीव निर्दोष वालक थे। मैं वह दृश्य कभी न भूलूँगी। उस सुनसान जंगलमें मैं रातभर अकेली रही। कुत्तोंके भूकने और गधोकी आवाजके सिवा लाशोके वीच रोती और रख-वाली करती हुई सारी रात मैंने विताई। और कुछ नहीं कह सकती। वह दुःख मैं जानती हूँ या ईश्वर।

एक गरीव स्त्रीका वयान—

मेरे मकान और कुरीशामें बारह घरोका बीच है । चार दिन हम विना खाये पीये रहे । मेरी चार वर्षकी लडकी डरके मारे मर गई । वह सदा यही चिल्लाया करती कि—मा, सिपाही लोग कबूतर मारने आये हैं। वे मुझे भी मार डालेगे। इससे उसे बुखार आया । हमने घर भी छोड दिया । लेकिन डरने उसका पिण्ड नहीं छोडा और वह ८ वें दिन मर गई ......।

अमृतसरकी एक और अभागनका बयान—

...औरोंके साथ मैं भी पकड़ी और थानेमे पहुँचाई गई थी। वहाँ हम लोगोंसे वैंकका लूटा सामान देनेको कहा गया । पन्ना, राखी, रानीसे भी ऐसा ही कहा गया । मुझसे कहा गया कि अपना पायजामा उतार दो । मुझे पुलिसके दबावके कारण पायजामा उतार देना पडा । ऐसा ही वर्ताव मेरी बहन इकबालनके साथ किया गया । इससे पुलिसमैन खूब खुश हुए और हँसे । हमें १० वजे रात घर जाने हुक्म दिया गया । लेकिन सवेरे फिर आनेको कहा गया । ५ दिन ऐसा ही होता रहा । कभी कभी हमारी भगोमें छडियाँ घुसेडी जाती थीं । हम सबको बेंत लगाये और बरावर गालियाँ दी जाती थीं । पीछे जब हमने इस तरह रुपये दिये तब जाने पाई ।

बलोचन ४०), रानी २०), राखी २०) और इकबालन पन्ना तथा मेरी बहन फिरोजनने ४०) दिये ।...और भी कई लडकियोंसे रकमे वसूल की गई। हम सबने ये रकमें सुन्दर कान्स्टेबिल और फाजल हवलदारको चुकाई थीं ।

कसूरकी रंडियोंका बयान—

...एक दिन कसूरकी सब रंडियोको मय भडुओके साथ सेनाके सदर कसूर रेल स्टेशन पर ४ बजे शामको हाजिर होनेके लिये मुनादी की गई। यह भी कहा गया कि अगर कोई रंडी हाजिर न हुई तो उसे गोली मार दी जायगी। तीसरे पहर सब रंडियाँ स्टेशन पर हाजिर हुई । हममेसे किसीको नहीं मालूम था कि हम क्यो बुलाई गई हैं । कहा गया कि हुक्म मार्शल-लॉके अफसरका दिया हुआ था। सैनिक यह देखनेको हमारे घरोंमें गये कि पीछे कोई रह तो नहीं गई है। जब हम स्टेशन पर पहुँची तब वहाँ कप्तान डोवेट तथा दो तीन अफसर मिले। हम वहीं प्लेटफार्म पर सिगनलके लोहेके घेरेके पास खड़ी की गई। कुछ ही देर बाद एक आदमी लोहेके घेरेसे बाँधा गया और हमें उसको देखते रहनेका

हुक्म दिया गया। दारोगा या पुलिसका कोई दूसरा अफसर हाजिर नहीं था। हम बेंत लगते देख न सकीं इस लिये अपना मुँह ढाकनेका प्रयत्न करने लगीं। किन्तु कप्तान डोवेटने वह भयकर दृश्य दिखाया और कहा—प्यार करनेका जो फल होता है वह सावधानीसे देखो।......५ आदमियोको बेंत लगाये जानेके बाद उनमेसे प्रत्येकको हमारे पास लाया गया और हममेसे प्रत्येकको उनका लोहूलहान शरीर देखनेको कहा गया। जब करमशाहको बेंत लगाये जाने लगे तो वे पीडासे बड़े जोरसे रो पड़े। हम लोग वह दृश्य न देख सकीं। हमने अपनी नजरें हटा लीं। पर कप्तान डोवेट हमारे बीचमे आये। और हमें बडी निर्दयतासे धक्का देकर बेंत लगाता देखनेको लाचार किया गया। उन्होंने धमकाया कि अगर सावधानीसे तुम बेंत लगता न देखोगी तो तुम्हें बेंत लगाये जावेंगे।.....।

कोई बीस स्त्रियोंका बयान—

हम सब अपने घरोमें या जहाँ थीं वहाँसे बुलाई गई और स्कूलके पास जमा की गईं। हमसे अपने घूँघट उठानेको कहा गया। हमें गालियाँ दी गईं। और हम इस लिये तंग की गईं कि कह दें कि भाई मूलसिंहने सरकारके विरुद्ध व्याख्यान दिया था। यह घटना गत वैशाखके अन्तमें सवेरेके समय मि० बोसवर्थ स्मिथकी उपस्थितिमें हुई। उन्होंने हमारी ओर थूका और बहुतसी बुरी बुरी बाते कहीं। उन्होने हममेसे कुछको छड़ियोंसे मारा। हम कतारोंमें खडी कराई गई और हमसे हमारे कान पकड़वाये गये। उन्होने गालियाँ देते हुए हमें कहा कि मक्खियो! अगर तुम्हे मैं गोली मार दूँ! तो क्या कर सकती हो? (छि!)

एक और स्त्रीका बयान—

...एक दिन मि० बोसवर्थ स्मिथने हमारे गाँवके ८ वर्षसे ऊपरके सब पुरुषोंको गाँवसे कुछ मील दूर पक्का डल्ला बंगलामें तहकीकातके लिये एकत्र किया। जब पुरुष बंगले पर थे तब ये घोडे पर सवार हो हमारे गाँवमें आये और उन स्त्रियोंको भी लौटाते लाये जो बंगले पर अपने आदमियोको साथ ले कर जाती हुई राहमे उन्हें मिलीं। गाँवमे पहुँच वे सब गलियोंमें घूमें और सब स्त्रियोंको हुक्म दिया कि घरोसे बाहर निकलें। उन्होने स्वयं अपनी छडीसे कितनोंहीको निकाला। उन्होंने हम सबको गाँवके दायरेके पास खडा किया। स्त्रियाँ उनके आगे हाथ जोड़े खडी हुईं। उन्होने कुछको छड़ीसे पीटा और उन पर थूका और अत्यन्त भद्दी और न

प्रकट करने योग्य गालियाँ दीं। उन्होंने मुझे दो बार मारा और मेरे मुँह पर थूँका। और जबर्दस्ती अपनी छडीसे सबके मुँहके घूँघट उठाये। उन्होने हमें बारंबार गधी, कुत्ती, मक्खी, सुअरी कहा और कहा कि "तुम अपने मर्दोंके पास लेटी हुई थी फिर उन्हें नुकसान करनेके लिये जानेसे नहीं रोका। अब तुम्हारे पायजामोंके भीतर कान्स्टेबिल देखेंगे।...........यह सुलूक उस वक्त किया गया जब हमारे मर्द बगले पर थे"।

ये उस बीभत्स अत्याचारके नमूने हैं जिन पर टीका टिप्पणीकी बिल्कुल भी जरूरत नहीं है। केवल इतना कह देना यथेष्ट है कि सरकारने इन अत्याचारी कर्मचारियोंको दण्ड देनेकी अब तक कोई चेष्टा नहीं की। बल्के उनको मुक्त करनेके लिये तत्काल एक नया कानून, बहुत विरोध करने पर भी इस तेजीसे बना दिया गया कि वह बिल्कुल आपापन्थी कही जा सकती है। ये सारे पापिष्ठ, खूनी, नीच, और रिश्वती, बेईमान कर्मचारी अब तक ब्रिटिश साम्राज्यमें स्वच्छन्दता और प्रसन्नतासे नागरिताके पूर्ण अधिकारोंके साथ रह रहे हैं। जिसका अर्थ यह है कि उपर्युक्त समस्त घटनाएँ सरकारको स्वीकृत हैं और वह उन्हें अत्याचार नहीं मानती और इस लिये वही उनकी जिम्मेदार है।

यह बात भी ध्यानमें रखनेके योग्य है कि बार बार प्रतिज्ञाओंको तोड़ने पर, खिलाफतके मामलेमें तुर्क पर अन्याय करने पर और इस भीषण अपमान-पूर्ण जुल्म पर जिसे कोई भी जाति सह नहीं सकती है, सारे देशने क्षोभ, मातम और क्रोध प्रकट किया। पर सरकारने न उसके लिहाजसे और न युद्धकी सहायताओंकी कृतज्ञताके खयालसे ही अपने गौरव और उत्तरदायित्वके योग्य कार्य किया।

इसके सिवा महात्मा गान्धीने अत्यन्त धैर्य और सहनशीलता तथा विश्वास पूर्वक सरकारके न्यायकी प्रतीक्षा की। यहाँ तक कि उन्होंने जनताका तिरस्कार और कटूक्तियाँ भी सुनीं। परन्तु उन्हें इस बातका भरोसा था कि ये अत्याचार नीच, स्वार्थी कर्मचारियोंके व्यक्तिगत अपराध हैं। परन्तु अन्तमें उन्हें विश्वास हो गया कि हमारी धारणा निर्मूल है। और उन्होंने हार कर इस भयकर अपमानपूर्ण भीषण अत्याचारके विरोधमे युद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की जैसी कि प्रत्येक गैरतवालेका कर्तव्य था।

सातवाँ अध्याय ।



ज्वालामुखी ।

भारतमें ज्वालामुखी प्रकट हुआ है । इस ज्वालामुखीकी भव्य प्रशान्त मूर्ति, उन्नत आकार, अचल स्थैर्य, अप्रतिम सहिष्णुता बीसवीं शताब्दीके लिये देखनेकी वस्तु है । इसके छोटेसे मुखसे जो उज्ज्वल ज्योतिर्मय लौ निकलती है वह देखनेमें सर्वथा हृदयहारी है, पर सारे संसारके लोगोंको सचेत हो जाना चाहिए कि यह भीतरकी भीषण धधकती हुई महाग्नि समुद्रकी बौछार है—यह नैसर्गिक समुद्र पाताल तक गहरा है और अब उसी क्षुद्र मुखके द्वारा आकाश तक ऊँचा उठना चाहता है । सारा ससार उसमें भस्म होगा, क्योंकि ससार झूठा और प्रकृतिका उपासक हो गया है । पापकी मलीनताको भस्म करनेके लिए यह ज्वाला करुणासे द्रवित हो कर बहनेवाली है । यह ज्वालामुखी महापुरुष गान्धी हैं ।

पाठकोंमेसे जिन्होंने गान्धीको देखा है वे मेरी बातको नहीं समझेंगे और जो उनके पास रहते हैं वे भी नहीं समझेंगे । ज्वालामुखी कभी समझनेकी वस्तु नहीं होती । अन्तस्तलकी आग कभी देखनेकी वस्तु नहीं है—नैसर्गिक द्रवित भीषणता कभी सुज्ञेय पदार्थ नहीं है । गाँधी भी समझने और जाननेकी वस्तु नहीं है ।

यह बीसवीं शताब्दीका विकास है । यह विश्वम्भरके पीड़ित जीवोंके विश्वासकी मूर्ति है । यह जगतके न्यायका अवतार है । यह हमारे भविष्य कालका प्रारब्ध है । यह और भी कुछ है । पर हम उसे कह नहीं सकते हैं । समझ भी नहीं सकते हैं ।

महापुरुष गाँधी इस समय जीवित हैं । हम इस लोकोत्तर छायाको साधारणतः नहीं, दूरसे भी नहीं, अत्यंत निकटसे घोर युद्ध करते देख रहे हैं । एक तरफ संसारका मायावाद है—अर्थशास्त्र है—पशुबल है—जिसने प्रत्येक वीरको, प्रत्येक मनस्वीको, प्रत्येक आत्मवादीको मोह कर गुलाम बना लिया है और दूसरी तरफ यही अकेला योद्धा है ।

दुर्बल शरीर, मलिन प्रभा, चिन्तित मस्तक, व्यथित हृदय, थकित मन, किन्तु ? किन्तु प्रखर आत्मतेज, प्रदीप्त चैतन्य बुद्धि, अद्भुत क्षमता, अपूर्व आत्म-विश्वास, भीषण

साहस, अलौकिक सत्य और अप्रतिम निर्भयताकी सज्जासे सजा प्रतिक्षण विजयकी ओर बढ़ रहा है।

यही महापुरुष गाँधी हैं। हमारे भविष्य सन्तान हमारे सौभाग्यको इस लिये सराहेंगे कि हम गाँधीके समयमे जीवित थे। और इस धैर्यवान् योद्धाने देशकी राजनैतिक आकांक्षाओको और अँगरेजोंके राजनैतिक छल-पूर्ण स्वेच्छाचारोंको उन्हींके आत्म अनुतापके लिये छोड दिया था। क्योंकि मनुष्य जातिकी मानवता पर यह महान् पुरुष अश्रद्धा नहीं कर सकता था। परन्तु पंजाबके कमीने अत्याचारो और मर्म-स्पर्शी अपमानोंको देखनेकी इसमें ताब न थी। इसका अर्थ यह था कि जिस जातिकी यह सम्पत्ति है उसमें जीते रहनेकी योग्यता नहीं थी—उसका खून ठण्डा पड गया था। जो सरकार कानून और नियम कह कर बच्चोंकी हत्या करती है, स्त्रियोंकी इज्जत उतारती है, नागरिकोंको नंगा करके चूतडोंकी खाल हंटरोसे उड़वाती है, घृणित कीडोंकी तरह धरतीमें रेंग कर चलाती है उस सरकारसे जिसकी छातीमें बाल हैं, जो मर्द है, जिसके खूनमें गर्मी है, जो इन्सानकी इज्जतको जानता है और जिसे गैरत है, कभी सहयोग न करेगा।

जिस समय इस नरकेसरीने असहयोग युद्धकी घोषणा की थी तब भारतके वाइसराय लार्ड चेल्म्सफोर्डने एक बार घमण्डसे कहा था कि—" हम असहयोगको स्वयं मरनेके लिये छोडे देते हैं। " उस समय यह नहीं जाना गया कि उक्त बातको कौन्सिलके माननीय सदस्योने किस कनसे सुना। पर आज यह सिद्ध हो गया कि वाइसरायका यह कथन जो हमारी जातीय इच्छाका भयंकर अपमान था, कहाँ तक अविचार और छिछोरपनसे भरा हुआ था।

जिस असहयोग पर संसारके एकान्त तपस्वीका हाथ है, जिस असहयोगका सीधा आत्मबलसे सम्बन्ध है और जिसके बल पर हम यूरोपके दम-पूर्ण अहंकारको परास्त किया चाहते हैं उसका ऐसा अपमान हम केवल इसी लिये सह सकते हैं कि हम गुलामोंकी औलाद हैं—गुलामीमें पले हैं और गुलामीकी हवामें साँस ले रहे हैं। कोई भी तेजस्विनी जाति अपनी जातीय हलचलको इतनी तुच्छतासे नहीं देखने दे सकती।

पर जैसा प्रकृतिके उपासकोंका विचार है हम गुलामीमें पले और साँस अवश्य ले रहे हैं, किन्तु हम गुलामोंकी औलाद नहीं हैं। हमारे हृदयमें भगवान् कृष्णका

धर्म है—रगोमें पृथ्वी-विजेताओका रक्त है और मस्तकमें तपस्वियोकी बुद्धि है। हम लडेंगे। हम ऋषि-सन्तानके गर्वको भूल भी जायॅ तो भी हममे इतनी गैरत माजूद है कि हम ' मनुष्य ' होनेके गर्वको नहीं भूल सकते।

इसी सिद्धान्त पर असहयोगका प्रशान्त रक्त-पात-हीन युद्ध जारी किया गया है। विना सरकारसे लडे न्यायकी रक्षा नहीं हो सकती थी। पर वे मूर्ख हैं जो तलवारके जोरसे सरकारसे लडना चाहते हैं। यह बात नैतिक दृष्टिसे तो अत्याचार है और परिस्थितिके खयालसे एकदम मूर्खता है।

यही महापुरुष गान्धी हमारा सेनापति है। हमारी भविष्य सन्तान हमारे सौभाग्यको इस लिये सराहेगी कि हम गान्धीके समयमें जीवित थे और इस अद्भुत युद्धको अपनी ऑखोसे देख चुके हैं। और यदि स्वराज्यके वायु-मण्डलमे सॉस लेना भाग्यमे हुआ—आयुने धोखा न दिया—तो वुढापेमें हमारे जवान पोते हमारी धवल दाढीके वालोको कौतुक और श्रद्धासे देखते हुए इसी महापुरुषकी कथा वडे चाव और हर्षसे सुनेंगे। यह देशका पिता सवके सुनने, जानने-देखने और स्मरण रखनेकी वस्तु होगा।

यह उज्ज्वल खादी, यह चरखेका विराट आयोजन, यह विना रक्त-पातका युद्ध मृत्युजय होगा—यह एक इतिहास होगा।

वीसवीं शताब्दीका यह अक्षय धन है—जीवित समुदायके लिये यह अद्भुत सत्व है। उसका उद्गार शीतल है, पर वह हवामें जल उठता है—उस आगसे वडे वडे आग्नेय सत्व कॉपते हैं। यह आग छोटेसे वडे तक सवको समान भावसे उपयोगी है। यह अक्षय है—यह अपूर्व है—यह कामधेनु है। भारतके भाग्य खुले हैं—यह भारतके हाथ लगी है।

यह वात वहुत शीघ्र प्रमाणित हो जायगी कि असहयोगकी मृत्युका स्वप्न देखना मस्तककी कमजोरीका चिह्न है। और मैं विश्वास करता हूॅ कि जिस असहयोगकी स्वय मृत्युकी आशा सुयोग्य वाइसराय चेम्सफोर्डने की थी उसके लिये धुरन्धर कर्मचारियोको वडे वडे तीव्र विप तैयार करने पडेंगे। अव गैरत और आत्मत्यागके नाम पर हमारा यह कर्तव्य होना चाहिए कि महापुरुष गॉंधीकी वातोंको हम समझे। उनका कथन है—

"हमारे लिये यह लज्जाकी वात है कि केवल १ लाख गोरे ३१ करोड़ हम पर पूर्ण स्वेच्छाचारिता और राजनैतिक छल-पूर्ण शासन कर रहे हैं। और यह घोर निन्दाकी वात है कि उन्हें अपनी प्रत्येक तजवीजोंको स्वच्छन्दतासे प्रयोग करनेमें वेरोक हमारा सहयोग मिल रहा है। हम साँपकी तरह अपने ही अंडोंको खाये जाते हैं। देश यह चाहता है कि अँगरेजोंकी पाशविक शक्ति नष्ट कर दी जाय, और यह दिखा दिया जाय कि पाशविक शक्तिसे भारतमें एक दिन भी शासन नहीं हो सकता।"

आठवाँ अध्याय।

आत्म-रक्षाके विश्वव्यापी युद्धमें भारतका आसन।

वीसवीं शताब्दी युद्धकी शताब्दी है। कदाचित् यह युगका अन्तिम काल है। इस शताब्दीमें आत्म-रक्षाके लिये समस्त ब्रह्माण्ड पर युद्ध हो रहे हैं। इस युद्धमें भारत भी शरीक है। अत एव यह विचार करना जरूरी है कि इस युद्धमें भारतका आसन कैसा है।

यह वात तो है कि भारत युद्धके योग्य नहीं है। संसारकी दृष्टिमें युद्धके उपयोगी जो सामग्रियाँ हैं वे भारतके पास नहीं हैं। भारतका भाग्य—भारतका जीवन—भारतका सर्वस्व—पराये हाथमें है। भारत केवल भिक्षा माँग सकता है—सहायता माँग सकता है—सहानुभूति प्राप्त कर सकता है। संसारकी महाजातियाँ उस पर दया करें—उस पर कृपा दिखायें—सहानुभूति प्रकट करें—तो वह उनके आसरे जीनेकी, स्वात्म-रक्षाकी आशा कर सकता है।

वही भारतने किया। उसने जर्मन, अमेरिका और समस्त विश्वकी सभ्यतासे सहानुभूति, दया, न्याय और सहायताकी प्रार्थना की। पर नतीजा कुछ न हुआ। लोगोने हँसीमें यह रोना टाल दिया। भिखारीकी आर्त मूर्ति देख कर जो निष्ठुर हँस नहीं देते हैं—दया करते हैं—वे भी एक पैसा देकर अपनी दयाका अन्त कर

देते हैं ? करें भी क्या ? क्या अपना घर दे डाले ? या कपड़े उतार दें ! परन्तु उस एक पैसेसे दरिद्र भिखारीका भिखारी पन नहीं नष्ट होता है ।

रास्ता गलत था । दयाकी याचना करके भारतने रही सही भी वात खोई । न जर्मन, न अमेरिका, न संसारकी नागरिकता ही अपने कृपा-कटाक्षसे उसे निहाल कर सकी । यह असंभव था—कृपा-कटाक्षसे कभी कोई निहाल हुआ नहीं है ।

जिस समय संसारकी नींद टूटी, आत्म-रक्षाकी भूख ससारको लगी उसी समय संसारने देखा कि वह आत्म-रक्षामे पराधीन है ।

हल्ला मचा, तलवारें उठीं, मारकाट चली और जमीन लोहूसे रंग गई । जर्मनीने देखा—अँगरेजोने तमाम उपनिवेश कब्जेमें कर लिये । महान् अमेरिकाने उनकी भाषा स्वीकार कर ली । फ्रान्सके व्यापार और सगठन-प्रणालीने उसका मार्ग उठा दिया । रूसमें जागृति हो रही है । पर उसके घरमें काफी जगह है । अब मैं क्या करूँ ? मेरे ये केहरीके समान वच्चे—मेरे ये उठते हुए होसले—प्रशियाके प्रदेशोंमे क्या बँधे रहेंगे ? यहाँ तो इनका दम घुट जायगा—वेमौत पर जावेगे । उसने देखा—हम पीछे चेते हैं, लोग अपना अपना मतलव साध चुके । कोई वैध उपाय नहीं रह गया है । उसने कहा— वीरभोग्या वसुन्धरा है—सवको हटाऊँगा—निकम्मी जातियाँ मरेंगी और वहाँकी चमकती धूपमे मेरे वच्चे खेले खायँगे । उसने तलवारकी झाड़ूसे सवको वुहार कर साफ करना चाहा—खूनके चावलोंसे पृथ्वीकी महाशक्तियोंको चुनौती दी । प्रतिज्ञा-पत्रोंको तुच्छ कागजके टुकड़े कह कर फैंक दिया और लोहू और लोहेकी धुन वाँध दी ।

संसार सन्नाटेमें आ गया । लहरो पर हुकूमत करनेकी डींग हाँकनेवाले अँगरेजोंकी पतलून विगड़ गई । अँगरेज वहादुर लंडनके तहखानोंमे छिप वैठे और शक्तिवती लडन नगरीने अपने सव आभूषण उतार फैंके, रातोंको उसके घरोंमें दिया तक न जला ।

फैशनेवुल फ्रेन्च, छवीले पैरिसके सिरसे राजधानीपनेका मुकुट झपट कर कोसों दूर भागे । वेचारा वेलजियम फँस गया—कठिन समय सभ्यता पर वीता । परन्तु अन्तमें जर्मनका पतन हुआ । अँगरेज जीते ? क्यों ? क्या अँगरेज वीर हैं ? नहीं । क्या अँगरेज धैर्यवान् है—? नहीं, तव ? तव एक वात है, अँगरेज छली हैं—छलसे उनकी जीत हुई । वीरताका काल गया । तलवारकी शक्ति गई । शक्ति सदा एक टिकाने नहीं रहती । वह लक्ष्मीसे अधिक चंचल है—वह लक्ष्मीसे पहले भागती है ।

जर्मनीकी आकाक्षाकी अपेक्षा रूसकी आकाक्षाका युद्ध कुछ महत्त्वका है। मै यह विश्वास-पूर्वक कह सकता हूॅ कि जर्मनीको ॲगरेजोंने या अमेरिकाने नहीं हराया है—जर्मनीको रूसकी आकांक्षाके युद्धने हराया है—रूसकी आकांक्षाकी आग भीतर की भीतर जर्मनीमे लग गई। और कैसरका महत्त्व नष्ट हो गया—कैसरको तल्वार पटकनी पडी!!

रूसकी इस आगमें कोई पद्धात्ति नहीं है। यदि है भी तो वह गिनमे योग्य नहीं है। तब एक वात है। वह यह कि यह आग अपवित्रता और सत्ताओंको एकदम जला कर क्षार कर रही है। यह आग वोलशेविजमके नामसे प्रख्यात है। इसका कोप सत्ताओं पर है। यद्यपि सैकडों वर्षसे ससार पर सत्ताने स्वेच्छाचार किया है, पर रूस इसमे बढ़ गया। रूसमें इम विकासके उत्पन्न होनेका एक यह भी कारण हुआ कि वहॉका अत्याचार अपनी ही जाति पर था। लोग लोहूका घूॅट पीकर समयको देख कर विदेशीका अत्याचार सह सकते हैं, अपना नहीं। कैसरके ऑगनमें जगह नहीं थी, उसके बच्चे पैर फैला कर सो नहीं सकते थे। उसने तल्वारके जोरसे पडौसियोंके घर खाली करानेकी इच्छा की थी, पर रूसकी दशा इसके विपरीत थी। उसके पास जगह तो बहुत थी, पर उसके उठते हुए बच्चोको स्वेच्छासे खेलनेका हुक्म नहीं था—वे बलात् वन्द रक्खे जाते थे। उन्होने अपने ही सिर पर तल्वार उठाई—अपने राजाको मारा। जहॉ वालकके रोगी होने पर राजाकी मूर्ति धोकर पिलाई जाती थी वहॉ राजाको निच्छत्र किया गया—वन्दी किया गया—अन्तमें गोलीसे पागल कुत्तेकी तरह मार डाला गया। उसकी स्त्री वच्चे तकको धरतीसे उठा दिया। अवसे वहुत प्रथम फ्रासने यही कर्म किया था—यह उसकी पुनरुक्ति हुई।

पर यह अत्याचार था। मूल कारण दोनों जगह एक हैं, पर प्रकारमें भेद है। कैसरने पड़ौसी पर अत्याचार किया, रूसने अपने राजा पर। कैसरका पतन हुआ। रूस सभल रहा है—उसका पतन न होगा ऐसी आशा है। इसका कारण वीरता नहीं है। कह चुका हूॅ वीरता यदि तल्वारकी वस्तु है तो उसका काल समाप्त हो गया है। रूसकी सफलता और जर्मनीकी हारमें कुछ गम्भीर कारण थे। जर्मनीकी आकांक्षा एक गर्वीली और स्वेच्छाचारी व्यक्तिकी आकांक्षा थी। और रूसकी आकांक्षा देशकी आकाक्षा थी। इसके सिवा रूसकी आकांक्षा अत्यन्त वे-चैन थी, उसके कष्ट वर्तमान थे और असह्य थे। पर जर्मनीकी आकांक्षा दूर थी—भविष्य थी—अनावश्यक

थी—फिरके लिए थी । इसके सिवा और एक बात थी—रूसकी आकाक्षा जर्मनीमें उदय हो गई थी । कैसरका व्यवहार रूसके जारकी ही तरह स्वेच्छा-पूर्ण था और प्रजा धीरे धीरे उससे ऊब रही थी, पर वीरता, अभ्यास और समयने प्रजाको दबा रक्खा था। इस प्रकार कैसर अकेला था, उसकी न चली—वह जीत न सका—केवल ससारको हैरान कर सका ।

आज यह बात मालूम हुई है कि सत्ताओंके विरुद्ध थोड़ी वहुत शिकायत समस्त संसारको न जाने कबसे थी । रूसने इनके विरुद्ध लड़नेका एक निर्भीक मार्ग जनताको दिखा दिया । आज यही कारण है कि इस भयकर विप्लवको जहाँ सत्ताएँ भयभीत होकर देख रही हैं वहाँ समस्त जनता उत्साह और चावसे देख रही है । सत्ताधारी जनोकी मूर्खता अक्षम्य है, यदि वे जनताके इस उत्साह और चावसे सावधान नहीं हो जाते । समस्त यूरोपमें वह चाव बढ रहा है और एशियामे भी जहाँ जहाँ देश देशान्तरोंके समाचारोका यातायात है, चाव बढ़ रहा है ।

भारतका इस सम्बन्धमे चाव और रुचि होना स्वाभाविक था । उसे मानो वही मिल गया जिसे वह ढूँढ रहा था । वह कुचला हुआ—मारा हुआ—ठगा हुआ—धोखा दिया हुआ—अपमानित किया हुआ देश है । यह सब उसने बडी कुलीनताका दावा रख कर सहा है । वह अपने आपको, अपने पूर्व चरित्रको जान कर भी यह सहता रहा है—यह कोई साधारण वात न थी । और यह कोई अचरजकी वात भी न थी कि वह इन मरखने बैलोंसे मारना सीख जाता । पर नहीं, भारतने अपना आर्यत्व दिखाया । भारत लडनेमें अवश्य शरीक हुआ है, क्योंकि लडना अपरिहार्य था—परन्तु यह लडना अद्भुत अलौकिक और भारतके आसनको ऊँचा करनेवाला है ।

सबसे बडी बात इस युद्धमें यह है कि वह अत्याचार, छल, खून-खराबीसे घृणा करता है और स्वयं वह उन उपायोको नहीं काममें लाता, न लायगा । दूसरी बात यह है कि उसके इस युद्धकी नीति यह है कि मारनेकी अपेक्षा मरनेकी योग्यता प्राप्त करनेमें वीरता है । वह मारनेकी शिक्षा नहीं ले रहा है—वह मरनेमें निर्भयताका अभ्यास कर रहा है । कितनी जातियाँ इतिहासमे गिनाई जा सकती हैं कि जिन्हें मरनेका साहस न होनेके कारण अपना अस्तित्व खो देना पडा । भारतने यह साहस खो दिया था—वह मर रहा था । अब उसने फिर साहस किया है । अब वह बड़े भारी अदम्य उत्साहसे शिक्षा और शक्तिका सचार कर रहा है ।

भारत धर्म-प्रधान देश है। भारत किसीके अधिकार छीननेको नहीं लड़ रहा है। वह अपने अधिकार माँगता है। जो खूनी है, जिसके हाथोंमें नंगी तलवार है, जिसके निर्मम होनेका प्रमाण मिल गया है भारत निहत्था उसके सन्मुख, उसकी कुछ परवा न करके अचल अटल अपने अधिकारोंको प्राप्त कर रहा है। यह भारतका व्यक्तित्व है और संसारके रक्त-मय युद्धमें उसका आसन सर्वोच्च है। सबकी अपेक्षा उसकी आकाक्षा—माँग—और युद्ध तक अहिंसात्मक धर्म न्यायपरक है।

नवाँ अध्याय।

असहयोग।

जो सभ्यता शान्ति और प्रेम-पूर्वक अपने पड़ौसीके साथ जीवन भर रहना नहीं सिखा सकती उससे हम सहयोग न करेंगे। जो सभ्यता अधिकारोंकी सत्ताओंको उच्छृखल छोड़ कर आश्रितों पर बलात्कारको स्थान देती है उस सभ्यतासे हम सहयोग न करेंगे। जो सभ्यता मनुष्यको मनुष्य नहीं समझने देती, मनुष्योंमें बन्धुत्व नहीं स्थापन होने देती, मनुष्योंके प्रेमको नहीं खिलने देती, मानव-समाजको नैसर्गिक जीवनसे दूर ले जाती है, जहाँ बदाबदी है, दौड़ है, ईर्ष्या है, आलस्य है, डाह है, घृणा है, रक्त-पात है, स्वार्थ है, चोरी है, व्यभिचार है, हत्या है, उस डायन सभ्यतासे हम सहयोग न करेंगे—कभी न करेंगे।

जहाँ आत्माकी सत्ता नहीं स्वीकारी जाती, मनुष्यकी तात्कालिक सत्ताएँ शक्ति समझी जाती हैं, जहाँ मनुष्यत्वका वध किया जाता है वहाँ, उस देशमें, उस जातिमें—जहाँ वह सभ्यता वास करती है—कोई सज्जन न जायगा। उसकी चमक, रूप, आकर्षण वेश्याके समान त्याज्य है।

जिस सभ्यताने हमारा हिन्दुत्व नष्ट करके हमें विदेशी टुकड़ोंके कुत्ते बनाया, जिस सभ्यताने हमारे शान्त जीवनको सन्तप्त किया, जिस सभ्यताने सरे बाजार हमें मूर्खोंकी औलाद बताया, जिस सभ्यताने हमारे बच्चोंके पवित्र कण्ठको विदेशी भाषाके दुरूह उच्चारणसे अस्तव्यस्त कर दिया, जिस सभ्यताने पिता और पुत्रके जीवनको

छिन्नभिन्न कर दिया, जिस सभ्यताकी कृपामे ब्राह्मण पिताके पुत्र साहब बन गये, साध्वी सतियोंको जिसने लेडी बनाया, जो महिलाएँ वेदमे " असूर्यपश्या " के नामसे प्रख्यात थीं—जिन्हें सूर्य नहीं देख सकते थे—उन महिलाओंको बाजारकी धूल फँकाई, जिसने हिन्दुत्वके पैर शूद्रोंको काट काट कर हमें पागल कुत्तेकी तरह सड़ा सडा कर मार डालनेका इरादा किया, जिसने पवित्र गगाजलके स्थान पर मद्य, शुद्ध दूधकी जगह उच्छिष्ट सोडावाटर, घृतकी जगह मास और आरामकी जगह काम धर दिया, जिसने हमारी शान्त पवित्र कुटियोंमें आग लगा दी, जिसने हमारी छोटीसी सुखी कुटियाको उजाड दिया वह सभ्यता हमारी क्रोध भाजन है, वह हमारी शत्रु है, वह डायन चाहे जैसी सुन्दरी, मायाविनी, लुभाविनी क्यों न हो, हम उसे मार डालेगे, फॉसी देंगे, गला घोट देंगे, नोंच डालेगे, टुकड़े टुकडे कर डालेगे और उससे सहयोग न करेंगे।

वह पवित्र वेदमन्त्रोंकी ध्वनि, वह सुन्दर गायकी धार काढनेका मधुर शब्द, वह आरोग्य और स्वच्छन्दताका ग्राम्य जीवन, वह पडोसियोंका बन्धुत्व व्यवहार, वह सुख, वह मौज कहॉ गई ? हाय ! कहाँ गई ? यही डायन खा गई ! इसीने उसका नाश किया ! इसीने उसे संखिया दिया !

यह वेश्या है, जहॉ वेश्याका राज्य है वहॉ कुल-वधू रहेंगी ? वहॉ शान्ति रहेगी ? वहॉ त्याग रहेगा ? वहॉ सुख रहेगा ? वहॉ तृप्ति रहेगी ? वहॉ जीवन रहेगा ? नहीं । इसी लिये कुछ नहीं रहा, हमारे सिरकी चोटिया उड कर माथेकी मॉगें बढ गई। वीर युवक जनाने हो गये । बढिया धुली कमीज पहन कर, चुनी बारीक धोती लटका कर, सूखे गालोंको तेलसे चिकना करके जनानोकी तरह मॉग निकाल कर, एक पतली सी छडी लेकर निकलते हैं। यही देशके युवक हैं ? यही आर्य-जाति-रूपी वृक्षका बीचका गुद्दा है ? इसीके बल पर वह समारकी ऑधी और तूफानोकी झोंक सहनेकी होस रखता है ?

मिला लो। किसी व्यभिचारी, वेश्यागामी लम्पटमे किसी सभ्य युवकके सब लक्षण मिला लो। न मिले तो मेरा कान पकड लो और पुस्तकको फाड डालो।

यह माँग, यह जनाने फैशनके कपडे, यह नजाकतकी चाल, यह भाव-पूर्ण बातोंके ढंग, यह मग्जमे घुसी हुई ऑखे, यह निस्तेज चेहरा, यह मुर्गा जैसी पतली गर्दन, यह पिचके गाल, आब रहित दाँत, मुर्दे जैसी सूखी छाती और तुली जैसी बाहें

सब वैसी ही हैं ठीक किसी वेश्यागामी जैसी! यह भी तो वेश्या है! यह सभ्यता? हाँ यह सभ्यता पूरी वेश्या है!

ऐ देशके बुजुर्गो! बूढ़ो! बच्चोंके पिताओ! भले आदमियो! सोते हो या मर गये हो? जीते हो, कुछ शक्ति बची है? कुछ गैरत हो तो अपने बच्चोंकी सूरतको देखो! इन्हें क्या झख मारनेको पैदा किया था? कन्याएँ पैदा करते—कन्याके पिता बनते—कन्यादानका महान् पुण्य तब भी नसीब होता। ये जनाने जवान, हिन्दू घरोंमे नहीं सोहते हैं।

इसी हवामें, इसी मिट्टीमें, इसी सूरज-चाँदके प्रकाशमे, इसी आकाशकी छायामे, इसी पुण्य धरती पर अबसे कुछ दिन पहले जो जवान उत्पन्न हुए थे उनका कुछ और ही नकशा था। नाहरकी जैसी छाती, तप्त अंगारे जैसी आँखे, सूर्यके समान मुँह, व्याघ्रके समान घोष और हाथी जैसी चाल थी।

उन दिनों भारत अपने घरका स्वामी था—उसके बच्चोंको पेट भरनेकी चिन्ता नहीं थी। वे पढते थे ज्ञानके लिये, सीखते थे आमोदके लिये, जीते थे मरनेके लिये, वे उनके अपने दिन थे। उन दिनों पापका उदय नहीं हुआ था। सभ्यता डायनने यह घर नहीं देखा था। किस कुघडीमे वह आई? किस कुसमयमे उसने हमारे बच्चो पर नजर लगाई? चूर मूर कर दिया, मसल डाला—मार डाला—सत्यानाश कर डाला। हाय! वही अब भी हमारे घर आदर पावेगी? आज भी उसीकी हमारे घर चलेगी? उसका वही राज्य, वही हुकूमत, वही ठाठ रहेंगे? नहीं, यह नहीं होगा—उसका झोंटा पकड़ कर हम निकाल देंगे—हम उसे न रहने देंगे—न रहने देंगे।

देखो, आँख खोल कर देखो, बच्चोके कलेजेका मांस सूख गया है, पसली निकल आई हैं—वे मरते हैं—सो भी अपमानसे धिक्कारकी मौत मरते हैं। देखो देखो, ऐ देशके बुजुर्गो! देशके पिताओ! माताओ! मालिको! या तो अपने बच्चोंकी इस सभ्यता डायनसे रक्षा करो वरना अपने बच्चोंको त्याग दो—हिन्दुत्वको काला मत करो—हिन्दुत्वको मत लजाओ। संसार कहेगा नीच हैं, बे-गैरत हैं, निर्लज्ज हैं! पानी उतर गया है—पिटैल हैं, पिटनेकी आदत पड गई है—हाय! हाय! कैसे सुनोगे?

निकालो, इस सभ्यताको, इस डायनको, इस वेश्याको, इस भ्रष्टाको, इस हत्यारीको, इस कुटनीको। और अपने बच्चोंकी इससे रक्षा करो।

श्री, लक्ष्मी, सरस्वती, सिद्धि, निधि घरकी सब विभूति चली गई ? अन्नपूर्णा रो रही है, महाकाली मुँह फेर बैठी है, महालक्ष्मी धूलमे पडी रो रही है, सरस्वतीने वीणाके तार तार तोड़ डाले हैं—क्यों न करें ? वेश्याका राज जिस घरमें होगा सती वहाँ सुखी कैसे रहेंगी ? सती वहाँ कैसे जीयेंगी ?

बुलाओ, वे देवियाँ तुम्हारी ओर सापेक्ष दृष्टिसे देख रही हैं, उन्हें बुला कर प्रतिष्ठित करो। भगवानकी दयासे शान्ति सुख मिलेगा। इसका सहयोग त्यागो—त्यागो। कहो तथास्तु।

दसवाँ अध्याय।

हमारा कर्तव्य-पथ।

हमारा कर्तव्य-पथ बड़ा विकट है। वह एक भयंकर तपश्चरण है, किन्तु हमें उससे भयभीत न होना चाहिए। हम सदासे अग्निके पुजारी रहे हैं। सूर्य हमारे उपास्य देव हैं। तपश्चरण हमारे लिये नवीन पथ नहीं है। भारत भूमिका एक एक कण तपस्वियोंके पसीनोंसे भीगा हुआ है। भारतने तपके कारण महत्त्व पाया था। तप त्यागनेसे उसका पतन हुआ—अब फिर तप करके ही वह उठेगा।

वही हमारा आत्मा है—वही हमारे शरीर है—वही हमारे दिनरात हैं—वही गंगा, यमुना, नद-नदी, पर्वत हैं—फिर हम भी वही क्यों न होंगे ? आत्मबोधको भूल कर हम भटक रहे थे। हमें आत्मबोध हुआ है—हम जी गये हैं—हमारा नवीन ध्येय उन्नत मस्तक किये हमारा पथ-प्रदर्शक बना खडा है, केवल हमारी तैयारीकी देर है। सबसे बड़ी खराबी यह है कि हमारे स्नायु-मण्डल अत्यन्त निर्बल पड़ गये हैं—'जानमाल' का खतरा सुनते ही हमारा पिशाब निकल पड़ता है—मालमे हमारी जान अटकी रहती है और जानमे हमारा सर्वस्व लटका रहता है। यह हमारी निर्बलता कारणोंको देखे अयोग्य नहीं कही जा सकती। कौन कौम हजारों वर्ष तक दबाई जाकर, मारी जाकर, लूटी जाकर अपना ओज बनाये रख सकी है ? जिसकी बहू-बेटियों पर बलात्कार किये गये, जिनके

राजछत्र अन्धाधुन्धीसे उलट डाले गये, जिसके धर्म पर घोर बलात्कार किया गया, वह जाति जीवित है यही बहुत है । परन्तु मनुष्य-समाज अब एक नये युगमें पहुँच रहा है। भारतका भाग्य भी बहुत ही ठीक अवसर पर जागा है—उसे अब आत्मत्याग करनेकी जरूरत है—कष्ट सहनेकी और मरनेकी जरूरत है। सबसे प्रथम हमें अपने हृदयोंसे 'जानमाल' के खतरेका भय दूर कर देना चाहिए। उसके पीछे चापलूसी, खुशामद और सुख-लालसाको त्याग देना चाहिए। इसके बाद हमें अभ्यास और बल-पूर्वक मनमेसे कायरी निकाल डालनी चाहिए। और धीरे धीरे वीर बननेकी होस मनमें जागृत करनी चाहिए।

ये हमारी व्यक्तिगत तैयारियाँ हैं जिन्हें मैं बहुत बड़ी दृष्टिसे देखता हूँ। जब तक हमारी व्यक्तियाँ न बनेंगी समाजका सच्चा संगठन कभी न होगा। प्राचीन बुजुर्गोंके इतिहास पर दृष्टि डालिये। उनकी जीवनकी प्रत्येक घटना उनके व्यक्तित्वसे भरी है। वे ही अमर हैं—वे ही यशस्वी हुए हैं जो अपने व्यक्तित्वको बना सके थे। भीष्म पितामह, दुर्योधन, राम और कृष्ण, अर्जुन और भीष्म, प्रताप, दुर्गादास—इनकी व्यक्तियाँ तस्वीरके योग्य थी । हमें कहते लज्जा आती है कि जिस भारतके कारनामेके सारे पृष्ठ केवल वीरताकी कहानियोंसे भरे हैं उस भारतकी वीरता एकदम मर गई! रामायणके कालसे लेकर महाभारत तक और उससे पीछे पृथ्वीराजसे लेकर अन्तिम मुगलोंके शासन-काल तक भारतका वायु-मण्डल वीरतासे ओतप्रोत हो रहा है। स्त्रियोंने स्त्रियोंके रूपमे बालकोंने बालकके रूपमें, क्षत्रियोंने क्षत्रियोंके रूपमे, वैश्योंने वैश्योंके रूपमे, और शूद्रोंने शूद्रोंके रूपमें बराबर वीरताका परिचय दिया । महाराणा प्रताप यदि शत्रुजयी हुए तो क्या वे अकेले? राम यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम बने तो क्या अकेले? पाण्डव यदि विजित हुए तो क्या अकेले? नहीं । उनके सहयोगी जनोंका वीरत्व उनके साथ था और प्रत्येकका व्यक्तित्व अपने स्वामीके ही समान था। आल्हा ऊदलका नाई रूपा ऊदलके बराबरका योद्धा था—प्रत्येक लड़ाईमें पहली चोट वही करता और हजारों सशस्त्र जनोंसे घिरने पर भी अक्षत बच कर आता था—यह उसकी ड्यूटी थी—यह उसकी नौकरी थी—यह उसका धन्धा था। साहबोंके बूटके पास क्लर्कोंकी कुर्सी पर बैठे और गाली खानेवाले क्लर्क, सट्टे बाजारमे गधेकी तरह चिल्लाने वाले अर्थपशु, घमण्डसे बेतमीज हुए शूद्र और व्यभिचारके कीड़े रजपूत और भिखमंगे ब्राह्मणोंमें इस तुच्छ नाईकी ड्यूटी समझनेकी योग्यता नहीं हो सकती है।

परन्तु जब तक हमारे जीवन वैसे ही न बनेंगे, हमारी व्यक्तिगत तैयारियाँ जब तक पूरी पूरी न हो लेगी—'जानमालका खतरा' यह शब्द सुन कर जब तक हमारे होश उड़ते रहेंगे तब तक हम हारेंगे, पिटेंगे, मरेंगे, कुचले जावेंगे।

हमारे शरीरमें बल हो, मनमे धैर्य हो, मस्तकमे शान्ति हो, आत्मामे तेज हो, हृदयमें गैरत हो तो हम निर्भय बनेंगे, हम वीर बनेंगे। हमारी विजय होगी। हम न्याय पावेंगे—हम जीवेंगे। और ऐसा जीवेंगे कि लोग हमें देखेंगे।

उद्धत और घमण्डी यूरोप हमारा आदर्श नहीं है, पर हम अपने पड़ोसी एशियाको बिना देखे नहीं रह सकते। जापानमें इतने शीघ्र परिवर्तन, रूस पर जापान साम्राज्यकी विजय, चीनमें मंचू वंशवालोंका पतन और चीनी प्रजातन्त्रकी स्थापना, ईरानमे सुधारका प्रयत्न तथा उसके मार्गमें रूस और ब्रिटेनकी बढ़ती हुई आकाक्षाके कारण रुकावटोंके साथ ही ब्रिटिश और रूसी प्रभाव क्षेत्रोंकी रचनासे ईरानका अपनी न्याय्य स्वतन्त्रतासे वंचित होना और अन्तमें रूसी क्रान्ति तथा यूरोप और ऐशियामे रूसी प्रजातन्त्रकी स्थापनाकी सम्भावना—यह हमारे लिये पढ़ने योग्य पाठ हैं। हिमालय पहाड़की दूसरी ओर एशिया भरमें स्वतन्त्र राष्ट्र फैले हुए हैं। स्वेच्छाचारी जार और चीनी सम्राट् आज मिट्टीमें मिल गये। यह सब होने हुए भी इस कालमें हम अपनी तुलना—ब्रिटिश शासनके अधीन अपनी अवस्थाकी तुलना—उनकी अधीन जनताकी अवस्थासे करते हैं। कमसे कम १९०५ तक—जब तक दमन और अत्याचारी नीतिके बड़े युगके अमर काण्ड नहीं हुए थे—हमारी तुलनामे ब्रिटिश शासन श्रेष्ठ रहा, परन्तु आज वह दिन है कि जब तक हम पूर्ण स्वराज्य और स्वावलम्बन प्राप्त न कर लेंगे बराबर अपने स्वाधीन पड़ोसियोंको ईर्षाकी दृष्टिसे देखेंगे।

यह अनिवार्य है एशियाके राष्ट्र अपना राज्य लोलुपताको बढ़ावेंगे। तब भारतका क्या होगा? एक बार मि० लेंगने कहा था कि "भारत इंग्लैण्डकी दुधारी गाय है। यदि यही विचार एशियाके उठते हुए राष्ट्रोंमें उत्पन्न हो जायगा तो इस दुधारी गैयाके स्वामित्वके लिये वैसा ही झगड़ा खड़ा होगा जैसा प्राचीन कालमें वशिष्ठ और विश्वामित्रमें हुआ था। इस लिये यह आवश्यक है कि यह दुधारी गया अपने दोनो सांग खूब पैने बना कर तैयार रख ले। इस दुधरी गायको कोई साधारण गायकी तरह हलाल न कर सकेगा। भारतको स्थल और जल दोनो

मार्गोंसे अपनी रक्षाका प्रबन्ध करनेकी योग्यता प्राप्त यथासाध्य शीघ्र ही कर लेनी चाहिए।"

केवल असहयोग करके, या स्वराज्यकी प्राप्ति करके भारतके परिश्रम और कष्टोका अन्त न हो जायगा। बल्के स्वराज्यकी प्राप्ति पर उसका दायित्व इतना अधिक बढ जायगा कि जिसके लिये उसे अबसे हजार लाख गुना अधिक आत्मत्याग और दृढ़ता दिखानी होगी।

एशियामें प्राधान्य, प्रशान्त महासागर पर आधिपत्य और आस्ट्रेलियाके स्वामित्वके लिये भी आग सुलग सकती है। फिर व्यापारिक झगडोका होना अनिवार्य है—फुर्सत पाते ही भारत जापानके व्यापारिक डाकोको नहीं भूल जायगा—वह ठोक ठोक कर एक एकसे बदला लेगा।

इन बडे परिणामोका शान्त चित्तसे सामना करनेके लिये हमें सन्तुष्ट, बलिष्ठ, आत्मावलम्बी और सशस्त्र होनेकी तत्काल जरूरत है। यह बात पुष्टिके साथ कही जा सकती है कि एक मात्र भारतका ही जन-बल इतना है कि वह भली भाँति एशियामे साम्राज्यकी रक्षा कर सकता है। भारतमे अँगरेज अपने स्वार्थोंके सम्बन्धमे इतना हो हल्ला तो मचाते हैं, पर शीघ्र आगे आनेवाले दिनोंमे होनेवाले आक्रमणोसे अपने स्वार्थोंकी रक्षा ये मुट्ठी भर अँगरेज क्या कर सकते हैं?

जो लोग जापानी समस्याओसे कुछ परिचित हैं वे जानते हैं कि युद्धके समय जापानका जर्मनके प्रति क्या भाव रहा है और अब वे दोनों युद्ध-प्रिय और ऐश्वर्य-लोलुप तथा घमडी जातियाँ शीघ्र ही मित्र हो जायँगी। समर समाप्ति पर शान्ति-सभाकी आज्ञा और निर्णयोका जापानके सामारिक बल पर कुछ भी प्रभाव नहीं पडा है, प्रत्युत व्यापार अकण्टक हुआ और बढा है। अँगरेजोको इन बातो पर विचार करनेके पीछे यह सोच लेना चाहिए कि ये आसार रहते हुए भारतका विश्वास, प्रेम भक्ति और सहयोग खो देने पर एशियामे उनकी क्या दशा होगी। और उन्हें यह भी जान लेना चाहिए कि उनका जापानसे वर्तमान मैत्री-सम्बन्ध बालूकी दीवार है।

ग्यारहवाँ अध्याय ।

मृत्युधर्म ।

हम कुचली हुई जातिके आदमी हैं इस लिये मृत्युधर्म हमारे लिये सबसे प्रथम जानने योग्य है ।

जीनेके लिये मनुष्योंने अपनी अपनी शिक्षा और योग्यताके बल पर अनेकों प्रकार निकाल लिये हैं । ज्ञानके साथ रहना, खाना, सोना, रोना, हँसना, पाप करना, पुण्य करना आदि आदि सैकडों बातों पर पुस्तकों, उपदेशकों, व्याख्यानों और पद्धतियोंकी कमी नहीं है, पर विचार कर देखा जाय तो मरनेके लिये भी वही ज्ञान और वही तैयारी प्रत्येक जाति और व्यक्तिको दरकार है ।

जो जाति ज्ञानसे मरना नहीं जानती, जिसने मरनेको धर्ममें नहीं गिना है, जिसके जीमें मरनेके हौंसले नहीं हैं, जो मरनेमें सुन्दरताकी चाहना नहीं करती वह चाहे व्यक्ति हो, चाहे जाति, जीनेकी अधिकारी नहीं है ।

पूर्व पुरुषोंने, मालूम होता है मृत्युधर्मको जीवन-धर्म पर तरजीह दी थी—उन्होंने मृत्युधर्म पर जीवन-धर्मको न्यौछावर किया था, शायद उन्होंने मृत्युधर्मके महत्त्वको पहचाना था, उन्होंने मरनेके बडे ही उज्ज्वल, प्रिय और रोचक नियम निर्माण किये थे । और यही कारण है कि उस मृत्युने उन्हें नष्ट नहीं किया—वे अमर हैं ।

हम पुनर्जन्मवादी जातिके आदमी हैं । हमारा धार्मिक विश्वास है कि मरने पर भी आत्मा अमर रहता है, मरने पर भी हमारे जीवनका अन्त नहीं हो जाता । मरना केवल शरीरको बदलना मात्र है—पुराने शरीरको त्याग कर नया ग्रहण करना है । इस लिये हमें अपने जीवनके कार्योंको इतना सकुचित नहीं करना चाहिए जिनकी हद हमारे शरीरके शान्त होने ही तक हो ।

हमें सदा—प्रलय तक—इसी संसारमें रहना है, काम करना है । उक्त नियन्ता एक सर्वोपरि सत्य है । ऐसी दशामें हमारे किसी भी कार्य या उद्देश्यमें अस्थायीपन आना पूर्ण अविचारकी बात है ।

जिस मुसाफिरको यह विश्वास है कि मुझे केवल एक रात ठहरना है और सवेरे चल देना है वह सरायमे ठहरे या वृक्षके नीचे रात काट दे, केवल दूध पीकर सो रहे या कुछ साधारण खा पीकर रात व्यतीत करे। परन्तु जिसे स्थायी-रूपसे वहीं रहना है वह भी यदि ऐसा करे तो वह मूर्ख है। जब आत्माको बारंबार कर्म-रग होकर जन्म धारण करना है तो उसका जीवन-धर्म यही है कि वह अपने व्यक्तिगत या सामाजिक कोई ऐसे काम न करे जो केवल मृत्युके विचारसे अस्थायी या शिथिल कर दिये हों। इसके साथ ही उसे मृत्युसे डरनेकी भी कुछ आवश्यकता नही है। जैसे बच्चा नये वस्त्रोंको देख कर प्रसन्नता-पूर्वक पहनता है उसी तरह मनस्वी मृत्युको हुलस कर स्वीकार करता है और वह उसे नवजीवनका चिह्न समझता है। मैं अपने उन बुजुर्गोंके प्रति अपने क्रोधको नहीं रोक सकता हूँ जिन्होंने जीवनको अनित्य कह कर ससारको क्षणभंगुर मान लिया और जगतकी लडाईमें भारतको अकर्मण्य वना कर मार्गमे ही बैठा दिया।

आश्चर्य है जिन्होने एक तरफ मृत्युधर्मको अध्ययन किया है—उपनिषद् दर्शन-शास्त्रमें आत्माके अमरत्वका तत्त्व पढा है—उन्होने कैसी भ्रान्ति-वश हो मनुष्योंको अकर्मण्य होनेका उपदेश दिया होगा।

जिन्हें मरना नहीं आता वे जीना नहीं जानते। जिन्हें मरनेमें चाव नहीं है उनका जीवन निर्भय नहीं हो सकता। जिन्होने मरनेके उत्तम अवसर नहीं चुन लिये हैं वे जीवनमें कभी न सुखी होंगे। जो मरनेमें मूर्ख हैं वे कभी न विजयी होंगे।

मृत्यु ध्रुव है। डरनेवाला भी उससे नहीं वच सकता है। जिस तरह मैले लोग मलिनताके अभ्यस्त होने पर स्नान करती वार रोते हैं उसी प्रकार कायर पुराने शरीर-को छोडती वार रोता और त्रस्त होता है। प्लेगमे, इन्फ्लुएन्ज़ामे, अकालमें तडफ तडफ कर लाखों नर-नारी मर रहे हैं—मरनेस डरनेवाले सवसे प्रथम मर रहे हैं—हम केवल उन पर लाचारी दिखा कर रो देते हैं! हाय! हमारी शक्तियाँ इतनी पतन हो गईं।

पितामह-भीष्मने पाण्डवोंको वडे चाव और प्यारसे अपने मरनेका मार्ग वताया था। और वे वडे ही धैर्य और तेजके साथ मरे भी। दधीच ऋषिने जीवित शरीर पर नमक लगा कर गौसे मास तक चटा दिया! शिविराजाने कवूतरकी रक्षाके लिये अपने जीवित शरीरका मास दिया। दिलीपने गौकी रक्षाके लिये सिंहके आगे

अपनेको डाल दिया। क्या किसीको मालूम है कि इन घटनाओंको कितने दिन हो गये हैं ? मैं समझता हूँ कोई गिन कर नहीं बता सकता। इतिहासके कालमे बहुत प्रथम कालमें हमारे पूर्वज ठाठदार मृत्यु बडे चावसे हुलस कर मरे हैं—और वे विना ही इतिहासकी सहायताके जीवित हैं ! क्या कभी किसीने इस गम्भीरता पर विचार किया है ?

राजपूत मृत्युके व्यवसायी थे। क्षणभरमे वे मृत्युको तैयार हो जाते थे और मर जाते थे। जवान पुत्रोकी माता उनके मरने पर कभी न रोई । नवौढा स्त्रियोंने आसूँ गिराना अपसुगन समझा। उन्होने शृंगार करके हुलस कर मृत पतिकी चिता पर सहगमन किया ! माताओंने दुधमुँहे वच्चोंके हाथमे तलवार देकर उन्हें लोहेकी मारमें भेजा। स्त्रियोंने हारे हुए पति पर कुपित हो किलेका दर्वाजा वन्द कर लिया था। विवाहकी ही रात्रिको कितनी स्त्रियोंने अपने पतिको उकसा कर मृत्युधर्मके पालनको भेजा था।

कहॉ गये वे जीवनके दिन ? किधर खो गई वह मृत्युकी शान ? जब लोग पैदा हो गये है तो मरते ही तो हैं, लेकिन आज मरोंके लिये करुणक्रन्दन—कुहराम—मचा रहता है। छाती फटती है, देखा नहीं जाता। एक वे दिन थे जब मरना उत्सव था—मरना हर्ष था—मरना जीवन था—मरना धर्म था—मरना एक कर्तव्य था।

वही राजपूत बच्चे अब भी उसी राजपूतानेमें है। पर उनकी तलवारकी धार थोथरी पड गई है—राजपूतोकी कलाईमे उसे धारणकी शक्ति नहीं रही है—उनके नाजुक हाथोंमें सोनेके मूठकी हीरा जडी लपलपाती बेत सुशोभित हो रही है। प्रत्येक राजा जनानिया है या व्यभिचारी है—शराबी न होना तो असभ्यता है। दरिद्र प्रजाके पसीनेके पैसोंको इकट्ठा करके ये रत्न-जडित वस्त्र पहनते हैं। सतीत्वकी लाश पर व्यभिचार करते हैं। जुआ, हठ, मूर्खता, चोरी, डकैती, व्यभिचार, नशा, सट्टा, क्रूरता, हत्या—ये राजाओंके नित्य कर्तव्य है। किसीको प्रमाण पूछनेका साहस हो तो खम ठोक कर मेरे सामने आवे मैं प्रत्येक अक्षरको प्रमाणित करूँगा।

टकेके गुलाम, व्यभिचारके कीडे, मूर्खताके टीम, अज्ञानके पुतले और तुच्छताके अवतार ये राजा लोग उन्हीं धुरन्धर राजपूतोके वीर्य-विन्दु हैं जिन्होंके पवित्र

रक्तका रंग अब भी राजपूतानेके मुखको लाल बनाये है! उनका यहाँ तक पतन हुआ है कि मैं श्रेष्ठ कुलके बडे प्रख्यात राजाको वेश्याके घरमे इन्फ्लुएंझा होते और रेलमें मरते हुएका दृष्टान्त दे सकता हूँ। पर मैं विश्वास करता हूँ कि मुझसे दृष्टान्त माँगनेका साहस किसीको न होगा?

कुछ राजा लोग विलायत जाते हैं। उनका देशमें आदर भी होता है। लोग समझते हैं देशके लिये उन्नतिका सामान खरीदने बिचारे विलायत यात्रा करते हैं, पर मैं ईश्वरकी सौगन्ध खाकर कह सकता हूँ कि वे पैरिसमें व्यभिचार विष्ठा खाने यूरोपको बार बार दौडते है।

यही न मृत्यु व्यवसायियोंकी सन्तान है! इन्होंने न समस्त देशके कल्याणका ठेका लिया था! कहाँ गया इनका कर्तव्य? मृत्युकी कितनी होस इन्हें है। कितनी मृत्युकी तैयारियाँ इनकी हैं? देशके किसी आदमीको इनसे यह पूछनेका साहस नहीं होता, राजपूतानेका वीर वीर्य इतना मर गया कि अपनी बहू-बेटी पर अत्याचार देख कर भी वे इन निरंकुश बछडोके गलेमे रस्सा नहीं डालते। ये सब प्रश्न गैरतके हैं—ये सब प्रश्न निर्भय जीवनके हैं। जिन अभागोंको अपनी जानके लाले पडे हैं उनमें साहस, वीरता, आत्मतेज कहाँसे आयगा! हायरे भारतकी तकदीर।

जिस समय क्रूर वीर कैसरकी भीषण मार छबीले पैरिस पर पडी और जनाने फ्रेंच उसके सिरसे राजधानीपनेका मुकुट उचक कर तावडतोड भागे और अँगरेज बहादुर लोग शक्तिशाली लण्डनके समस्त प्रकाशको बन्द करके चूहेकी तरह घरोंमे छिप कर चूँ चूँ करने लगे उस समय पंजाबके सिंहोने अपनी संगीनोंकी नोकसे फ्रांसकी नाक बचाई, पैरिसकी लुटती लाजकी रक्षा की, एक एक इञ्च पर खून नहाया—मरे, पर हटे नहीं, शत्रुओंकी छातियोंको सगीनोसे छेद दिया, उनके सामने बम, दमघोट्ट गैस, मेशीनगनकी पेश न चली—जर्मनीके हठी वीर हठ कर भागे—उन्हीं पजाबके सिंहोंके भाई-बन्द अपने घरके द्वार पर हत्यारे डायरके हाथसे कुत्तेकी तरह मरे? भागते हुए, रोते हुए, जान बचाते हुए? हाय! पंजाब डूब न गया? उसने मरियाा न खा लिया। यदि वह मार न सकता तो कोई कहनेकी बात न थी—मारने-का समय उसका नहीं था—मारनेके साधन उसके पास न थे, वे छीन लिये गये थे, पर वह मर सकता था। शानदार मृत्युका, वीरता-पूर्ण मृत्युका, इतिहासमें

गाई जाने योग मृत्युका सुयोग लगा था । पंजावी उस तरह न मर सके—वे गीदडकी तरह मरे—गायकी तरह डकराये और जनानियोंकी तरह गालियाँ बकने लगे ? छिः छि ।

जिस राजाने तत्काल महा शक्तिशाली शत्रुको विजय किया था, जिसे अपने प्रताप और शासन पर गर्व था उसे कब यह दुर्बुद्धि सूझती कि निरीह हथियार-हीन प्रजा पर गोली चलावे ? वही उसने किया—अपने प्रतापको भूल कर, अपने उत्तरदायित्वको भूल कर, अपने गौरव और नामको भूल कर उसने वहाँ काय-रीका क्रूर कर्म किया। पर हाय ! उस दिन यदि पंजावी कायरी न करते, खडे खड़े मरते, लाशोंके ढेरसे व्याख्यान जारी रहता, तो उसी दिन हम आसुरी वलको विजय कर चुके होते—उसी दिन सत्याग्रहकी विजय हो जाती ।

मृत्युधर्मका वर्णन करती वार मैं मसीही वीरोंको नहीं भूल सकता । सत्याग्रह-के नमूनोंमें मैंने इन अमर देवोंका वर्णन किया है । मैं समझता हूँ कि इनसे उत्तम मृत्युधर्म कोई नहीं पालन कर सका ।

जिस समय शाहजहाँकी आज्ञासे राठौर केसरी अमरसिंहकी लाश चील और कौवोंको खिलानेके लिये किलेके वुर्ज पर नंगी डाल दी गई उस समय आगरेके गुलाम राजपूतोंका खून भी उवलने लगा । पर किसीको साहस न हुआ कि वह मरेके अपमानकी रक्षा करनेकी वीरता दिखावे—मरनेसे सव डरते थे ।

मृत अमरसिंहकी विधवाने अपने परिचित और सम्बन्धी जनोंको सहायताके लिये वुलाया । उनमे अमरसिंहके एक चचा भी थे जो वाँदीके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण जातिमें अपमानित होकर रुष्ट होकर आगरे वादशाहकी सेवामें आ रहे थे । उन्होंने समाचार पाकर दूतसे कहा—"हम कवसे उनके चचा हुए? वे शुद्ध रजपूत हैं और हम गुलाम दासीपुत्र हैं ? विवाह-शादीके समय जव हम कोई न थे तव अव रिश्तेदारी कैसी? रानीसे कह दो कि वूँदीसे अपने भाई या पिताको वुला भेजे' । नौकर हताश उत्तर असहाय अवलाके पास ले आया । पतिका यह उत्तर उन्होंने रानीने सुन लिया—वह लोहूका घूट पी वैठी। उसने वाँदीको वुला कर कहा—आज महाराज जव भोजन जीमने आवें तो रसोईमे सव वर्तन लोहेके रखना। इस पर यदि वे या मैं नाराज होऊँ तो तू चुपचाप भाग जाना ।

यही व्यवस्था की गई । महाराज कॉसमें लोहेके वर्तन देख कर आगबबूला हो गये । बॉदीसे लाल होकर बोले—वे सोने-चॉदीके बर्तन क्या हुए जो लोहेके बर्तन लाकर रक्खे हैं ?

रानीने आकर कहा—"क्या है ?" वर्तनोंको देख कर उन्होंने भी कुपित होकर बॉदीसे कहा—मूर्खा ! तुझे यह नहीं मालूम है कि महाराज लोहेसे डरते हैं। यह किसी राजपूतका चौका नहीं है—बनियेका चौका है—यहॉ सोने-चॉदीको छोड कर लोहेसे क्या मतलब ? महाराजने रानीकी ओर भौंहे तरेर कर कहा—"क्या कहा ? मैं लोहेसे डरता हूॅ। स्त्री होकर तुम्हें मेरे सामने यह कहनेका साहस हुआ ?"

साध्वी पतिव्रता क्षत्रियाने अग्निमय नेत्रोंसे पतिको घूर कर कहा—"तुम यदि लोहेसे न डरते होते तो तुम्हारे भतीजेकी लाशको कौंवे चील नोंच कर खाते और तुम षट्रस व्यंजन करने चौकेमें पधारते ! तुम अपने आपको बॉदी-पुत्र कहनेमें बिगडते हो—मैं कहती हूॅ कि तुम बॉदी-पुत्र हो, हजार बार बॉदी-पुत्र हो—राजपूत होते तो विधवा बहूकी असहाय पुकार सुन कर भी तुम रसोई जीमने आते—धिक्कार है तुम पर !"

क्या हुआ ? मृत्युधर्मका ज्ञान हुआ । महाराजने बिना ही भोजन किये कूच किया, किले पर कठिन लोहा बजाया और टुकडे टुकडे होकर भूमि पर गिर गये । और उनकी रानी अमरसिंहकी रानीसे प्रथम ही सती हुई ।

यह जीवन-धर्म था या मृत्युधर्म । यहॉ इसका विवेचन करना कठिन है ।

विज्ञ पाठकोंको प्रख्यात अमेरिकन जहाज टिटानिककी घटना स्मरण होगी जो बडा सुन्दर और अनोखा जहाज था और जिस पर केवल शौकके लिये अमेरिकाके प्रख्यात धनिकोंने यात्रा की थी। जिसके विषयमे उसके कप्तानकी राय थी कि वह डूब ही नहीं सकता है । पर सध्या समय जब सब सुखसे भोजनके आसन पर बैठे थे, मधुर प्यानो बज रहा था, नाच-रंगमें सब मस्त थे जहाज एक चट्टानसेसे टकराया और शीघ्र ही जहाज बच नहीं सकता—यह विज्ञप्ति यात्रियोंको दे दी गई । यात्रियोने मरनेकी तैयारी की । गम्भीर मुख-मण्डलों पर स्वर्गीय ज्योति चमकी। बाइबिले खुल गईं। जहाज धीरे धीरे नीचे धसकने लगा और प्रत्येक यात्री धर्मग्रन्थका पाठ करते करते मृत्युके मुखमें धैर्यसे चला । जब समस्त जहाजमे पानी भर रहा था तब भी उसमे डेन्टमें धर्मगीत गाया जा रहा था ! ! !

और एक घटना अखवारोंमें पढी थी । कोई जहाज भारत आ रहा था । दुर्घटना वश डूबने लगा । ज्यादा तर उस पर पंजावी भाई थे । वह रोना पीटना, होहल्ला मचा—वह कोहराम और कातर क्रन्दन मचा—कि समुद्र भी तो थर्रा गया—लोग झपट झपट कर नावों पर टूटे और अधिकारियोको गोली चलानी पडी ।

मै पूछता हूँ—क्या वे बच गये ? क्या इनके कातर क्रन्दन पर समुद्रको दया आई ? ईसाई और मुसलमान बच्चे—जिन्हें यह विश्वास है कि मरनेके बाद ही उनका संसारसे नाता टूट जाता है, प्रलय तक अपने पुण्य पापके फल भोगनेकी प्रतीक्षामें पडे रहते हैं, वे—तो मरनेमें इतनी वीरता दिखावे और हिन्दू सन्तान—जो आत्माको अमर, मृत्युको शरीर बदलौवल और पुनर्जन्मको अटल मानती है वह—मरनेमें इतनी भीरु, इतनी दब्बू, इतनी कायर ? छि छि !

मृत्यु हमारा धर्म है—मृत्यु हमारा जीवन-पथ है—मृत्यु हमारा निवास-गृह है—मृत्यु हमारा भविष्य है—मृत्यु हमारा उद्धार है—हमारा तेज है ।

प्रत्येक योग्यता और अधिकारके मनुष्य मृत्युके सम्मानको वरण करते है । सिपाही फाँसीके दण्डकी व्यवस्था होने पर गोलीसे मार देनेकी याचना करेगा । सिपाहीका फाँसी पर मरना अपमान है । सती स्त्रियाँ पतिसे प्रथम या पतिके साथ मृत्युकी कामना करती हैं—यशस्वी यशके साथ मृत्युकी कामना करते है ।

जो देश गुलाम है, तिरस्कृत है, पतित है, दीन है, भूखा है, नंगा है, रोता है, रोगी है, उस देशके जवानोंको मृत्युका वरण नहीं करना चाहिए ? उन्हें यदि भूखो रह कर न्यूमोनियासे या प्लेगमें मरना पडे—हैजा और महामारीमें मरना पडे—तो उन पर धिक्कार है । वे यदि अत्याचार करके मरे तो उन पर धिक्कार है । वे अत्याचार सह कर मरें तो वे धन्य हैं । वे मरनेमें वीरता दिखावें तो वे धन्य है। वही वीरोकी मृत्यु है । वही वीर है ।

राजपूत जब केसरिया धारण करते थे तो वे पवित्र मृत्युधर्ममें अभिषिक्त होते थे । और समय—जब वे कुसूमल लाल पगडी बाँध कर समर-क्षेत्रमे चलते थे तव—वे क्षत्रिय धर्मका पालन करते थे, पर केसरिया मृत्युधर्मका पालन था । उसी केसरियाने हारने पर भी राजपूतोकी वीरता पर धब्बा नहीं लगने दिया, उसी केसरियाने मरने पर भी राजपूतोको अमर किया । आमेरके कछवाहे, जोधपुरके राठौड और बूँदीके हाडा कर्मवीर न थे ? सभी विक्रम-केसरी राजपूत थे । पर

उदयपुरके सीसोदियोंका इतना उत्कर्ष क्यों हुआ? वे ही क्यों राजपूतानेके मुकुटमणि कहलाये? इसी लिये कि और सबने लाल क्षात्रधर्मका अनुसरण किया—यह उनका कर्तव्य था, पर सीसोदियोंने पवित्र केसरिया पहन कर उत्कट मृत्युधर्मका बारंबार पालन किया, वे धन्य हुए, वे अमर हुए, वे बड़े हुए—उन्होने जो पाया वह भारतके इन अधम दिनोंमें किसीने न पाया—किसीने न पाया

मृत्युधर्म निर्मलताका धर्म है, मृत्युधर्म अनासक्तिका धर्म है, मृत्युधर्म कर्तव्यका धर्म है, मृत्युधर्म पवित्रताका धर्म है और मृत्युधर्म प्राणीका अनिवार्य धर्म है।

हम भगवान्से प्रार्थना करेंगे। हे प्रभु! हमें सौभाग्यकी मृत्यु दे। हे स्वामी हमें सम्मानकी मृत्यु दे।

बारहवाँ अध्याय।

असहयोग-सिद्धिके उपाय।

पहला उपाय—आचार।

हमारे प्राचीन ऋषियोका कथन है कि आचार सबसे प्रथम धर्म है। लोग कहते हैं कि संसारमे सबसे बहुमूल्य और सम्माननीय वस्तु विद्या है जिसके सामने संसारका सिर झुकता है। पर मैं कहता हूँ कि एक ऐसी वस्तु और है जिसके सामने विद्याका सिर झुक जाता है। जहाँ विद्या नाक रगडती है, जहां विद्या अपहार्य हो जाती है। वह वस्तु है आचार।

कुछ परवा नहीं यदि आप विद्वान् नहीं है या नहीं हो सकते है। यदि आप सदाचारी है या हो सकते है तो आप हजार विद्वान्के बराबर शक्ति अकेले ही उत्पन्न कर सकते है। संसारके महान् पुरुषोंने कभी केवल विद्याके बल पर उच्च जीवन नहीं बनाया है। उनकी ख्याति आचारके कारण हुई है। आज दिन लोग

विद्वान् बननेकी हौंस रखते हैं सदाचारी बननेकी तरफ उनका ध्यान नहीं है। परिणाम यह होता है कि विद्वान् बनने पर भी उनके जीवन कुछ विशेष मूल्यके नहीं प्रमाणित होते हैं। रावणके विषयमें कहा जाता है कि वह बडा भारी राज-नीतिज्ञ, वेदोंका ज्ञाता ऋषि और धुरन्धर वीर पुरुष था। उसके-सी सम्पदा शक्ति, योग्यता, क्षमता और पद पानेको त्रिलोकके प्राणी ललचाते रहते थे, पर उसमे एक कमी थी—वह सदाचारी नहीं था—इसीसे उसकी शक्ति, विद्या, योग्यता सब मिट्टीमे मिल गई। रोमका प्रख्यात बादशाह नैरो प्रकाण्ड तत्त्ववेत्ता और जबर-दस्त पण्डित था। पर आचार-हीनताके कारण आज प्रलय तक वह रावणहीकी तरह तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने योग्य हो गया है। ऋषि दयानन्द कोई ऐसे भारी विद्वान् न थे जो लोकोत्तर कहे जायँ। यह असम्भव नहीं है कि उनके कालमें उनकी समताके या उनसे अधिक अनेक विद्वान् हो—और यह और भी सम्भव है कि उनसे अधिक विद्यावान् पुरुष आगे चल कर उत्पन्न हो सकें। उनकी इस सफल-ताका कारण उनकी विद्वत्ता नहीं थी—सफलताका कारण था उनका आचार। ब्रह्मचर्यका उपदेश उनके मुँहसे सजता था क्योंकि उनका रोम रोम ब्रह्मचर्यके तेजसे प्रदीप्त था। वाणी उनकी उनके भावोंको प्रकट करनेकी एक तुच्छ साधन थी—उनके भावोंको प्रकट करनेकी प्रधान वस्तु थी उनका आचार—उसीको देख कर लोगों पर प्रभाव पडता था।

लोकमान्य तिलक और महापुरुष गान्धी, ऋषिकल्प टाल्सटाय और वीरवर मेक-स्विनी कभी अपनी विद्याके कारण जगतमें इतने पूज्य नहीं माने गये हैं। उनकी विद्याके सामने ससारने सिर नहीं झुकाया है—ससारने उनके आचारका लोहा माना है—ससार उनके आचारकी पूजा करता है।

लोकमान्य बी० ए० एल० एल० बी थे, महापुरुष गान्धी बेरिष्टर है, टाल्स्टाय काउन्ट हैं—इत्यादि बातोके कारण किसीने उन्हे आदर नहीं किया। कितने बी०ए०, बैरिष्टर, काउन्ट जूतिया चटखाते टुकडे खाते फिरते है, कोन उन्हें पूछता है? प्रत्युत ऐसा हुआ कि ज्यो ही इन महापुरुषोका चरित्र स्फुटित हुआ त्यो ही डिग्रियाँ खो गई। आचारको देखते ही गर्वीली विद्याने अपना प्रधान पद छोड दिया, वह मुँह छिपा कर भाग गई। आज लोकमान्यके नामके आगे या गान्धीके नामके आगे उनकी डिग्री जोडना उनका अपमान करना है। विद्याने उन्हें जो पद दिया था आचारने उनसे अधिक उन्हें दिया।

वे पुरुष धन्य हैं जिन्हें आचारका ध्यान है—जो सदाचारी हैं। वे पुरुष पूज्य हैं जो आचारमे आदर्श हैं। वे पुरुष देशके पिता हैं जो आचारके आदर्श है। सन्त तुकाराम, भक्त नरसिंह महता, समर्थ रामदास, पवित्रात्मा तुलसीदास, भक्तराज सूरदास, आत्मज्ञानी कबीर, नानक, सदन कसाई, चेता चमार—आदि केवल अपने आचारके कारण ही पूज्य और सम्माननीय हुए हैं।

कल्पना कीजिये कोई व्यक्ति महा पण्डित, विद्वान्, तार्किक है, पर शराबी, वेश्यागामी, झूठा और स्वार्थी है—क्या वह लोगोंका प्रिय बन सकेगा? कदापि नहीं। इसके विरुद्ध कोई आदमी जातिसे नीच और मूर्ख है, परन्तु सबको प्रेम करनेवाला, सत्यवक्ता, धैर्यवान् और छल रहित है—क्या उसका आदर न होगा? इसी लिये मैं कहता हूँ कि आचारके सामने विद्या झुक जाती है—आचारके सामने विद्या कोई वस्तु नहीं है।

यदि आप अविद्वान् हैं तो निस्सन्देह आपका विद्वान् बनना कठिन है, बल्के असम्भव है। परन्तु आपका सदाचारी बनना सरल है। किसी भी भाषाका व्याकरण सीखनेको वर्षों परिश्रम करनेको चाहिए, पर सत्य बोलनेकी इच्छा करते ही आप सत्यवादी हरिश्चन्द्र बन सकते हैं। काव्य-कोश पढ़ना और याद रखना बडे पित्ते मारनेका काम है, परन्तु हृदयमें अपार दया और प्रेम उत्पन्न करके प्राणी मात्रके पिता बननेमें कुछ भी कठिनाई नहीं है।

रुकावट अवश्य है। वह है स्वार्थकी। यदि आप अपने अन्दरसे अहम्मन्यताको दूर कर दें, आत्मामें परोपकारकी वृत्ति भर लें, पराये कष्टको अपने हृदयमें अपने कष्टके समान अनुभव करें, सब प्राणियोंमें आत्मवत् समझे, काम क्रोध लोभ मोहको त्यागनेके व्रतका अभ्यास करें, इन्द्रियोंको वशमें करें, तो आप सदाचारी बन सकेंगे। आप अपना और अपनी आत्माका एक बडा भारी दोष तो दूर कर ही देंगे—साथ ही आप अपनी शक्तियोंको हजार गुना बढा देंगे।

याद रखनेकी बात है कि कोई भी महान् कार्य सदाचारी हुए बिना पूरा सफल नहीं हो सकता। असहयोग महायज्ञ जैसा असाधारण तपश्चरण बिना आचारकी शिक्षा पाये आप कभी पूर्ण नहीं कर सकेंगे। पूर्वकालमें महायज्ञोंके प्रारम्भमे बडे बडे आयोजन होते थे—भारी भारी बलिदान दिये जाते थे। वे यज्ञ इतने

व्यापक नहीं होते थे जितना कि हमारा आजका असहयोग महायज्ञ है। इस यज्ञमें देशका प्रत्येक बच्चा, प्रत्येक स्त्री, प्रत्येक पुरुष—चाहे वह दरिद्र हो या धनी बालक, बूढ़ा, जवान—सब तरह अपने सर्वस्वको लिये व्रती होना चाहिए। यह आत्माकी खेती है—इसमे प्रथम आत्मशुद्धि करना चाहिए।

सदाचारी होनेके लिये सबसे प्रथम हमें अनावश्यक आहार विहार त्याग देने चाहिए। चाय, काफी, कहवा, सोडावाटर, बर्फ, पान, तमाखू, बीडी—आदि वस्तु अनावश्यक आहार हैं। एक समयमें अनेकों प्रकारके शाक, मिठाइयॉ, अचार, मुरब्बे खाना अनावश्यक आहार हैं। हम दुखिया हैं—हमारी पगडी अपमानित है—हमारे पूर्व पुरुषोंने जो इज्जत और मान कमाया था उसे हमने खो दिया है। हमारे पूर्वज स्वर्गसे क्रोध और ऑसू भरे नेत्रोंसे हमारा पतन देख रहे हैं। हम मर रहे हैं—पिट रहे हैं—मनुष्यकी तरह अपने घर तकमे नहीं रहने दिये जाते हैं—ऐसी दशामे अनेकों स्वादिष्ट पदार्थ खाना, तरह तरहकी ऐयाशी करना क्या हमें शोभा देता है। आप अपनी कन्याका विवाह करते हैं तो व्रत रखते हैं—निराहार रहते हैं। आप सत्यनारायणकी कथा कराते है तो निर्जल व्रत रखते हैं। क्यो ? इस लिये कि ये पुण्य कार्य हैं—इनमें स्वार्थत्यागके भाव हैं। स्वार्थत्याग पुण्य है, पुण्यके कार्य कभी व्रत विना नहीं किये जाते। परन्तु असहयोग महायज्ञ सर्वोपम पुण्यकार्य है। इसे आप क्या सूट बूट पहन कर, चाय और बीडी सिगरेट पीते पीते कर डालेगे। यदि आप हिन्दू है—हिन्दुओका आपके शरीरमें रक्त है—आत्मामें तेज है तो आप ऐसे पवित्र यज्ञके समय इन अशुद्ध और व्यर्थ वस्तुओंका घृणा-पूर्वक अवश्य त्याग करेंगे।

आप और हम साधारण व्यक्ति हैं। महाराणा प्रतापने जब देशोद्धारका व्रत लिया था तब पलंग पर सोना, सोनेके पात्रोंमे भोजन करना—आदि सब ऐश-आराम त्यागे थे। एक दिनके लिये नहीं, पूरे २५ वर्ष तक उन्होंने व्रत पाला—इसी व्रतमे वे मरे। क्या हम महाराणा प्रतापसे भी अधिक शक्तिशाली और योग्य है कि सिगरेट, चाय और तरह तरहके तरमाल उडाते हुए देशोद्धार चुटकी बजाते बजाते कर डालेंगे, अँगरेजोंके अत्याचारको पतगकी तरह आनन फाननमें काट डालेगे। कदापि नहीं।

हमें कष्ट भोगना होगा—हमें व्रती बनना पडेगा—वरना हम इस यज्ञकी वेदी पर चढनेके अधिकारी ही नही बन सक्ते हैं। जब तक हम सादाजावो, कष्ट-

सहिष्णु न बनेंगे तब तक हम कष्टोंसे डरते रहेंगे । हम कष्ट नहीं उठा सकते । महाकवि रहीमने कहा था—

जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ ।
हो बौरी ढूँढ़न गई रही किनारे बैठ ॥

सच बात है—किनारों पर मोती नहीं मिलते, कौडियाँ समुद्र पर तैरती है । जिन्हें मोती लेना है उन्हें गम्भीर समुद्र-गर्भमें डुबकी लगानी ही पडेगी ।

अनावश्यक विहार में इन्हें गिनता हूँ । व्यर्थ रेल, मोटर, ट्राम आदिमें यात्रा करना—जैसे किसी मित्रसे मिलना है, मिजाज पूछना है । इसी तरह दर्जनों कपडे तैयार रखना, तरह तरहके बहुतसे वस्त्र पहनना—जैसे कालर, बनियान, कमीज, वास्कट, कोट, ओवरकोट अटर पटर आदि । टैनिस, क्रिकेट, क्लब आदिमें जाना जहाँ प्रत्येक शब्दमें झूठी दुनियादारी और बनावटी व्यवहार दिखाने पडते हैं । इसी प्रकारकी और भी बहुतसी बातें कही जा सकती हैं । इस समयको अध्ययनमे लगाना या एकान्त शान्त स्थानमे बैठना, मौन धारण करना, पशु-पक्षियोंसे या बच्चोंसे खेलना, गायन या चित्र बनाना—इन कामोंमें लगाना चाहिए । व्याख्यान सुनना और सुनाना चाहिए ।

जल और मनमें वैज्ञानिक सम्बन्ध है । मन सोमात्मक द्रव्य है और जल भी सोम है । जलको देखनेसे मनकी चिन्ता नाश होती है और मन शान्त होता है । हृदयमें पवित्र भाव आते हैं । जलके किनारे सन्ध्यावन्दन करनेसे जीवनमे बहुत शान्ति और धैर्य उत्पन्न हो जाता है ।

मौन बडा भारी तप है । यही मौन बडा भारी उपदेश है । जीभ एक नहर है जिसके द्वारा हृदयके विचारोंका पानी समय कुसमय व्यर्थ बह जाता है । जिन्हें मौन रहनेका अवसर नहीं मिलता वे अवश्य चिडचिड और झूठे हो जाते हैं । प्रत्येक पुरुषको दृढता-पूर्वक नित्य दो चार घंटे मौन रहना चाहिए । खास कर स्नान करती बार, मलमूत्रके समय, भोजनके समय, सन्ध्यावन्दनके समय और भ्रमणके समय । भ्रमण एकान्तमे एकाकी करना चाहिए । यार-दोस्तोंकी चण्डालचौकडी-में नहीं । कुछ परवा नहीं लोग आपको मनहूस या रोवनी-सूरत कह कर आपकी हँसी उडावें । आप एकान्त भ्रमण करिए । अनावश्यक हँसिए मत, बोलिये मत, सुनिये मत और समझिये मत । आप देखेंगे कि आपके हृदयमें विकास हो रहा

है--भीतर ही भीतर मानो आप जीवित, बलिष्ठ और योग्य बन रहे हैं। और तब लोग देखेंगे कि एकाएक वे आपसे छोटे और आप उनसे बडे बन गये हैं। वे आपके अधीन होंगे।

स्पर्श बडा भयकर रोग है। खेद है कि लोग इस बातकी परवा नहीं करते—व्यर्थ एक दूसरेका सघर्षण करते रहते हैं। शरीरमें एक बिजलीकी शक्ति होती है जो स्पर्श होनेसे क्षीण हो जाती है। परस्पर हाथ मिलाना, सटकर बैठना, चिपट कर सोना या झूठा खाना आदि कारणोंसे वह शक्ति नष्ट हो जाती है। वह शक्ति ऐसी होती है जिससे मनुष्यका व्यक्तिगत ओज बना रहता है। और वह दूसरों पर प्रभाव रख सकता है। दूसरेके छूते ही उसमे मलिनता आ जाती है। जैसे दो बोतलोका भिन्न भिन्न रगका पानी एक दूसरेसे मिलते ही बदरंग बन जाता है वही दशा इसकी भी होती है। क्योंकि प्रत्येक मनुष्यकी प्रकृति अलग अलग है। और प्रत्येकमे कोई न कोई भाव निराले होते हैं—प्रत्येक व्यक्तिमें किसी एक बातमें स्पेशलिष्ट होनेकी योग्यता बीज रूपमे रहती है। यदि वह उसका ध्यान रक्खे—उसका विकास होने दे—किसीका स्पर्श न करे तो वह अवश्य अपने मज-मूनका खास आदमी बन जायगा। स्पर्शसे शक्ति क्षीण हो जाती है। दूसरोका प्रभाव हो जाता है—अपना व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है।

दूसरे नम्बर पर मादक द्रव्योंका त्याग है। शराब, अफीम, भंग, चरस गांजा—आदि छोटे और बडे सभी नशे गन्दे, कुत्सित और निन्दनीय हैं। इनमें सबसे बडा दोष तो यह है कि ये मनुष्यको पशु बना देते है। दूसरा दोष है कि फजूलखर्ची सिखाते हैं। तीसरा दोष है—अपने मन और इन्द्रियोको आपेसे बाहर कर देते हैं। मादक द्रव्योंका सेवन करना भयकर वनमें घुसनेके समान है जहाँ अनगिनत हिंस्र पशु वास करते हों। या एक ऐसी कोठरीमे सोनेके समान है जहाँ हजारो साप, बिच्छू आदि जन्तुओंने घर कर रक्खा हो। शराबियोको नालियोंमे पडा देखता हूं अफीमचियोंको जवानीमें कुत्तेकी मोत मरते देखता हूं, चरस भंगके अभ्यासियोंको मलिन, रोगी, पशुके समान निर्बुद्धि देखता हूँ—और हाय करता हू। भगवान इन्हे सुबुद्धि नहीं देता। लखपतियोंने यों जायदाद फूँक दी, गरीब अपनी दिन भरकी पसीनेकी कमाई इस गन्दी और घृणित वस्तुको पीनेमें फूकते हैं। उनके बच्चे सर्दीमें नगे, उघाडे, ठिठुरते, कॉपते, भूखे-प्यासे मर जाते है। भगवान् इनको सुबुद्धि दे। भगवान् इनकी रक्षा करे।

शराब नालीके पानीसे भी घृणित वस्तु है। ठण्डे देशोमें इसका प्रचार ज्यादा है, पर अब वहाँ कम हो रहा है। अमेरिकाने वीरता-पूर्वक उसका बहिष्कार करके ससारको लज्जित कर दिया है। अफीमने चीनको जगतमें बदनाम कर दिया था और उन्हें कहींका न छोडा था। अब चीनने प्रवल आत्मतेज दिखा कर उसे त्याग दिया है। असभ्य जगली जातियाँ दुर्गुणको त्याग कर सद्गुण सीख रही हैं। पर हाय! हम क्या सभीसे पिछड़ और अयोग्य ठहरेंगे? हम धर्मके जीव, धर्मसे डरनेवाले, धर्मके जीवी क्या इन घृणित वस्तुओंसे अपना निस्तार नहीं पा सकेंगे? यह भयकर अजगर जो हमारी हड्डियोंको तोडे डालता है, क्या सचमुच हमे मार ही डालेगा। नहीं। हम जीएँगे, हम फले फूलेगे। हम अपनी मनोकामना पूर्ण करेंगे। हम मूत्रके ठीकरेकी तरह शराबके पात्रको फैंक देंगे। हम विष्ठाकी तरह अफीम, गाँजा, चरसको स्पर्श न करेंगे। हम पवित्र बनेंगे, शुद्ध बनेंगे, मनुष्य बनेंगे। हम देशके उद्धारमे व्रती होंगे। हम असहयोग यज्ञकी वेदी पर चढनेकी योग्यता प्राप्त करेंगे। भगवान् हमें बल दे।

व्यभिचारका जिक्र करती बार मैं काँपता हूँ। क्योंकि मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि यह दोष बहुतसे उन माननीय पुरुषोंमें भी है जो दूसरे गुणोंके कारण देशकी बडी सेवा कर रहे हैं। और देश जिनका आदर करता है। जिस प्रकार भयकर विस्फोटक चारो ओरसे फूट निकलती है और शरीरको सत्यानाश कर डालती है उसी प्रकार यह व्यभिचार भी हमारे चरित्रमें धुँआधार फूट निकला है और आत्माको इसने नष्ट कर डाला है। प्राय प्रत्येक सद्गृहस्थको धर्मपत्नी प्राप्त है, पर हजारोंमें एकाध ही ऐसे मिलेगे जिन्होंने सयमसे काम लिया है—प्रायः सभीकी दम्पत्ति-शैया व्यभिचारके कीचडमें लिप्त है। इसके सिवा गुप्त व्यभिचार, परस्त्री-गमन, वेश्या-गमनके स्वरूप भयंकर पाप और अक्षम्य अपराध-पूर्ण हैं। जहाँ मनुष्यताका स्वरूप ही विगड जाता है, जहाँ मानव जीवनका उद्देश्य ही मिट्टीमे मिल जाता है, जहाँ आत्माका सारा तेज जल-भुन कर खाक हो जाता है। रावणका व्यभिचारने पतन किया और इतिहासके वीरोके चरित्र भेरी वातकी पुष्टि करेंगे। व्यभिचारके जालसे कोई वीर, कोई कर्मयोगी, कोई महापुरुष फँस कर उद्धार नहीं पा सका। साधारण पुरुष वेचारेकी क्या हैसियत है। वेश्याओंको देख कर मैं रोता हूँ। हमारी न सही किसी अभागे भाईकी वे वहन, बेटी, मा होगी ही। भगवान् कब हमारे हृदयोंमें इतने उच्च भाव पैदा करेंगे कि हम समस्त

स्त्रियोको अपनी वहन, वेटी, माता समझेंगे। व्यभिचारी पुरुष पूर्ण निर्घृण, पूर्ण वेगैरत, पूर्ण पापी होता है । अकेला व्यभिचार समस्त भयंकर पाप और अनाचारकी जड है।

व्रह्मचर्य जीवन है—व्रह्मचर्यमे शरीर और आत्माका तेज है। व्यभिचारने उसी व्रह्मचर्यको मिट्टीमें मिलाया है। वल, वर्ण, आयु, आरोग्य, शक्ति सव व्यभिचारने नष्ट कर दी है।

पुराने आर्ष ग्रन्थोके कानूनको आप देखेगे तो व्यभिचारको पूर्ण अक्षम्य दोष माना है। चोरको, यहॉ तक कि हत्यारे तकको उतने कठोर दण्ड नहीं विधान किये गये जितने व्यभिचारीको किये गये । चोरको अंग भग, हत्यारेको आजन्म कारागार या देश-निकाला, पर व्यभिचारीको तप्त लोहेकी शैया पर सुलाना, व्यभिचारिणीको नग्न करके आधा शरीर धरतीमें गाड कर और उस पर दही डाल कर कुत्तोसे नुचवानेका विधान है। इतने कठिन दण्ड देनेका फल यह था कि व्यभिचारका इतना अमल नहीं था । और यह दण्ड चाहे क्रूर कहा जाय पर उचित था, क्योंकि पूर्वज मनस्वी यह जान गये थे कि चोर, डाकू, हत्यारा सुधर कर महान् पुरुष वन सकता है, पर व्यभिचारी किसी कामका नहीं वन सकता। व्यभिचारमें जो गिरा वह सड गया, गल गया, नष्ट हो गया—उसका शरीर, मन, आत्मा, तेज, पुण्य सव नष्ट हो गया।

व्रह्मचारी वन कर रहनेसे आत्मिक वल वढता है। आत्मा वलिष्ठ होनेसे मनोवृत्ति गन्दी नहीं होने पाती, वैसा होनेसे शारीरिक वल जो कुचेष्टाओं द्वारा खण्डित होता, संरक्षित होता है। हम सवका समुदाय ही समाज है सो जव हमारा आत्मा और शरीर वली है तो समाज भी वली है। व्रह्मचर्यके भक्त प्राचीन आर्यगण अपने वलका अखण्ड प्रताप जगतके सामने रख गये हैं। व्रह्मचर्य-भ्रष्ट हमारा भी वल जगतके सामने है। जो है सो सव जानते हैं, कहना सुनना ही क्या है ?

सच तो यों है हमारी आरोग्यता, आयु, सौन्दर्य, ऐश्वर्य और हमारी सारी भावी कामनाओका मूल व्रह्मचर्य है। एक मात्र इसीके अनुष्ठान करनेसे हमारी धार्मिक और नैतिक सारी मनोकामनाएँ पूरी होगी। व्रह्मचारी ही आदर्श सन्तान पैदा करके उन्हें योग्य पुत्र वना सकता है। उत्तम सन्तानकी कामना करनेवालेको उचित है वह व्रह्मचारी वने और पूर्ण व्रह्मचारी वने।

हमारे सामने जीवनका, सुख-दुःखका, लाभ-हानिका, साहस, वीरता और परोपकारका जो वृहत् भवन खडा हो सकता है ब्रह्मचर्य ही उसकी नींव है। यह जो हमारे सामने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष-रूप चतुर्वर्ग प्राप्तिका महान् वृक्ष है ब्रह्मचर्य ही उसका मूल है। अगर हम चाहते हैं कि हमारा भवन दृढ़ बने, अगर हम चाहते हैं कि हमारा उद्देश्य-वृक्ष बड़े बडे ऑधीके झोंकोंसे भी न उखडे तो हमें चाहिए कि पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन करके ही कृतकृत्य हो जायँ। भीष्म, कृष्ण, राम, लक्ष्मण आदि महानुभाव और शुक, व्यास, कपिल आदि देवगण इसके उत्कृष्ट प्रमाण हैं। इन सबमे ब्रह्मचर्यका बल था। उसीसे वे दुर्जय योद्धा और अन्तर्दृष्टि हो गये थे।

कोई ब्रह्मचर्य-भ्रष्ट वैसी कामना करे तो कैसे हो सकता है।

जब द्वापरका युद्ध हुआ तब जरासन्ध, कालयवन, कंस, शिशुपाल आदि अधर्मियोंके अत्याचारके दौरदोरोंका बाजार इतना गर्म हो गया था कि प्रजामें हाहाकार मच गया था। पर उनके उत्कृष्ट बल और प्रभावको देख कर किसीको भी उनके आगे सिर उठानेकी हिम्मत नहीं हुई। पर कृष्णदेवने १२ ही वर्षकी अवस्थासे उनके आगे सिर उठाया, उनके गर्वको तोडा और निरन्तर परिश्रम करके यत्न, युक्ति और बलसे उनका मूलोच्छेद करके धर्म-राज्यकी नींव स्थापित की। इतना करते भी किसीने उन्हें घबराते या उदास नहीं देखा। वे सदा आनन्दकन्द रहे। दुःख मानों जगत्में उनके लिये था ही नहीं।

ब्रह्मचर्यके ही प्रभावसे उनकी अन्तर्दृष्टि बिलकुल स्थिर थी। द्वारिकामे इधर शल्यके साथ उनका घोर युद्ध हो रहा है। ऐसी आपत्ति कालमें भी कृष्ण द्यूत-सभामें, द्रौपदीके वस्त्राहरणमें, द्रौपदीकी रक्षा करना नहीं भूले।

कुरुक्षेत्रमें युद्धकी अग्नि भडकना चाहती है, खूनके प्यासे योद्धा जान पर खेल कर समर-भूमि पर डटे हैं, एक भीषण दृश्य सन्मुख है जिसके ध्यानसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं, बाप, बेटे, भाई, बाबा सब अपने ही आत्मीयोंके रक्तसे हाथ रंगनेको पागल हो रहे हैं, सभी हतचेत हैं, सभी उन्मत्त हैं। हिंसा और स्वार्थकी अग्नि सभीके हृदयमें प्रचण्ड वेगसे धधक रही है। उन सबको देख कर अर्जुन धनुष पटक देता है, कहता है, दुःखमे भर कर कहता है—महाराज! मेरे हाथमे धनुष खिसका पडता है, चमडी जली जाती है, मनमें चक्कर आ रहे हैं, मै खडा भी नहीं रह सकता, अपने स्वजनोंको मार कर अपना श्रेय नहीं चाहता, जिनके लिये हम राज्

धन चाहते हैं वे ही प्राणोंका मोह छोड कर मरने पर डटे हैं ! ये गुरु हैं, ये चाचा हैं, ये भतीजे हैं, ये भाई हैं, ये पितामह हैं, ये सम्बन्धी हैं, ये सब हमें मारनेको तुले हुए हैं यह सब जान कर भी हे मधुसूदन! इनको मार कर हम त्रिलोकीका राज्य भी नहीं चाहते। अर्जुनकी ऐसी मोह-बुद्धि देख कर कृष्ण मन ही मन हँसे। उनका मन तब भी पूर्ण शान्त था, स्तब्ध था, और इसी कारण ऐसे गडबडके समयमे भी कृष्णने बडे शान्तभावसे गीताका महोपदेश अर्जुनको दिया। यह क्या साधारण बात है ? बिना ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठाके ऐसा धैर्य, ऐसी अन्तर्दृष्टि, ऐसी स्थिरता आ सकती है क्या ? कभी नहीं।

और चलो, मर्य्यादा पुरुषोत्तमके ऊपर भी एक दृष्टि दो, उनका धैर्य और शान्ति, त्याग और दृढता विचारते ही हृदय आनन्दसे गद्‌गद् हो जाता है।

कैसा चित्र है। एक ओर प्रबल पराक्रमी दुर्जेय रावण खडा है, लंका-सा कोट, समुद्र-सी खाई, बडे बडे शूरवीर जिनके रक्षक, जिनका काम ही हिंसा और कुटि-लता है। कुम्भकर्ण जैसा भाई, इन्द्रजीत जैसा पुत्र सहायक है। दूसरी ओर क्या है ? अकेले राम हैं, नंगा सिर है, नंगे पैर हैं, केवल हाथमें विशाल धनुष-बाण हैं, किन्तु हृदयमें अपूर्व साहस और आत्मिक बल है, बस विजयकी यह उपयुक्त सामग्री है। ऐसा मारा कि रावणका नाम लेवा और पानी देवा भी न बचा। सच है ब्रह्मचर्यकी बडी महिमा है।

जिस समय मदोन्मत्त क्षत्रिय उन्मत्त होकर धर्मकी मर्य्यादाको उल्लङ्घन कर चले थे उन्हें अपने प्रबल प्रतापसे नाथनेवाले परशुराम और हिरण्यकश्यपुको केवल नाखूनोंसे चीर फैंकनेवाले नृसिंहदेव ये सब पूर्ण ब्रह्मचर्यके ही प्रतापसे अपना अटल आतङ्क संसार-पट पर चढा गये हैं।

जिस भीष्मने एक बार तो श्रीकृष्णको भी प्रतिज्ञा भगं करा कर क्षुद्र कर दिया था कौन नहीं जानता कि वे आदर्श ब्रह्मचारी थे।

रावणके पुत्र मेघनाथका जिसने हनन किया उस केशरीका नाम कौन नहीं जानता ? सुलोचना बडी पतिव्रता स्त्री थी। उसीके पातिव्रत धर्मके बलसे मेघनाथ अजेय हो गया था। उसके पास खबर पहुँची कि मेघनाथ मारा गया तो उसने एकदम विश्वास करनेसे इन्कार कर दिया। उसने कहा—राममे क्या शक्ति है कि मेरे पतिको पराजित करे। जो बारह वर्ष नींद मार कर अखण्ड ब्रह्मचारी रहेगा वही

कहीं उन्हें पराजित कर सकेगा। नहीं तो मेरे पतिका बाल बाँका करनेवाला किसीने नहीं जन्मा है। उसकी प्रचण्ड मूर्ति, तीक्ष्ण वाणीको देख सुन कर दास दासी भयसे थर थर काँपने लगे। उसका क्रोध सीमासे बाहर हो गया। उसे अपने पतिकी मृत्यु पर बिल्कुल विश्वास नहीं था। तब एक दासीने हाथ बाँध कर कहा—देवी! सत्य ही लक्ष्मणने आज उनका वध कर डाला है। बस लक्ष्मणके नाममें ही बिजलीका प्रभाव था। उसे सुनते ही सुलोचनाका लाल मुख पीला पड़ गया, आँखोंका प्रकाश बुझ कर अँधेरा छा गया, उद्दण्ड मुख नीचे झुक गया। "हॉ तब तो मैं निश्चय विधवा हुई" यही उसके मुखसे निकला और मूर्च्छित हो वह धरती पर गिर गई। उसे लक्ष्मणके ब्रह्मचर्य पर उतना ही विश्वास था जितना अपने पतिव्रत धर्म पर।

और क्यों न हो, लक्ष्मण यति थे भी इसी प्रशंसाके योग्य। जिस समय राम सीताकी तलाशमें ऋष्यमूक पर्वत पर आते हैं उस समय सुग्रीव कुछ आभूषण पहचाननेको देता है। जिन्हें राम लक्ष्मणको दिखा कर पहचाननेको कहते हैं, पर लक्ष्मण क्या उत्तर देते हैं, सुनो—

केयूरं नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम्।
नूपुराण्यैव जानामि नित्यं पादानि वन्दनात्।

इन भुजबन्दोंको नहीं जानता, क्योंकि कभी उनको नहीं देखे और न इस कुण्डलको ही पहचानता हूँ, हॉ उन बिछवोंको जानता ही हूँ, क्योंकि नित्य चरण-बन्दना करती बार देखा करता था।

यह लक्ष्मण यतिके वाक्य हैं जो भाभीके लिये उन्होंने कहे थे। ऐसे वीरके लिये मेघनाथ क्या वस्तु है, वे समस्त विश्वको विजय कर सकते थे। सच है ब्रह्मचारीको क्या दुर्लभ है।

बाल्यावस्थाहीसे जिनको बड़े बड़े सिद्ध मुनियोंमें उच्चासन मिलता था ऐसे प्रबल दिव्य ब्रह्मचारी व्यास-पुत्र शुकदेवका नाम सभी हिन्दू जानते होंगे। जिस समय वे पिताके आश्रममेंसे निकल कर विरक्त होकर वनको चले, मार्गहीमें गंगा पार करनी पड़ी। वहॉ कितनी ही नग्न नहाती स्त्रियोंने उन्हें देखा और वे नहाती रहीं। पर जब व्यास वहाँ उन्हें ढूँढते ढूँढते पहुँचे तो उन्होंने एकदम पर्दा कर लिया। व्यास बड़े अचम्भित हुए। पुत्र-शोकको तो भूल गये और कहा—देवियो! यह क्या बात? पुत्र शुकदेव तुम्हारे बीचसे निकल गया, पर तुमने पर्दा नहीं किया और मैं वृद्ध हूँ, तुम सब मेरी पुत्री हो फिर मुझसे क्या पर्दा? स्त्रियोंने मुस्कुरा कर भक्ति-पूर्वक ब्याम-

देवको प्रणाम किया और कहा—देव! ऐसा कौन है जो परन्तप व्यासको न जानता हो ? ऐसे तत्त्वदर्शीके दर्शनोंसे सच्ची शान्ति मिलती है। परन्तु हे शान्तिधाम मुने! शुकदेव युवा हैं तो क्या हुआ—वह जानता ही नहीं कि हम स्त्रियाँ हैं और किस काममें लाई जाती हैं और आप सब कुछ होने पर भी हमें जानते हैं, हमारा उपयोग भी जानते हैं, इसीसे हमने आपसे पर्दा किया है, आप क्षमा करें।

अहा! ऐसे ब्रह्मचारी युवाकी ऋषि पूजा न करें तो किसकी करेंगे ? ऋषि क्या वह ब्रह्मचारी त्रैलोक्य-पूज्य है। हा! कब उनका पदरज भारतके मास्तिष्क पर नसीब होगा।

पूज्यपाद शंकराचार्यने अखण्डित ब्रह्मचर्यका असाधारण प्रभाव जगत्को दिखा दिया है। उनकी अगम्य बुद्धि-वैलक्षणका पता उपनिषद्, व्याससूत्र, गीता आदि गहन पुस्तकों पर भाष्य देख कर लगता है जिनमें किसीसे भी खण्डन न किये जानेवाले अद्वैत सिद्धान्तका प्रतिपादन किया गया है।

जिस समय समस्त जगतमें वेद-विरोधी जनोंका प्रबल राज्य था और संसारका सिर जिसके लिये उस समय झुक गया था उसी समय इस धुरंधर विद्वान् तेजस्वी ब्रह्मचारीने उनके बलको तोड मरोड कर ऐसा दलित किया कि आज तक कोई उसे न जोड सका, कहना नहीं होगा यह सब ब्रह्मचर्यके बलहीसे था।

दूर कहाँ जायँ, जिस समय समस्त भारतमें घोर खलबली मची थी, वैदिक धर्मका तेल-रहित दीपक टिमटिमा रहा था, ढेरके ढेर हिन्दू धडाधड मुसलमान ईसाई हो रहे थे और हिन्दुओंकी शिखा-सूत्र पर घोर आपत्ति आनेको थी, अविद्याका अन्धकार प्रबल था, ठीक उसी समय एक प्रभावशाली व्यक्तिने उस बहते हुए प्रवाहमे एक ऐसी ठोकर लगाई कि सारा संसार चकित हो गया। वह वीर "कार्य्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि" कह कर कर्म-क्षेत्रमें कूद पडा। गतिका प्रवाह एक दम फिर गया। मरी हिन्दू जाति जी उठी, जी ही न उठी बरन्च इस योग्य हो गई कि शत्रुओंका मुँह-तोड मुकाबिला कर सके। इस यतिका नाम दयानन्द स्वामी था। उन्नीसवीं सदीका सारा ससार एक स्वरसे हमारी हाँमे हाँ मिला कर इस ब्रह्मचारीके प्रबल प्रतापी धक्केको स्वीकार करेगा।

ब्रह्मचारियोंकी हमने इतनी महिमा गाई है। इसका अन्त कहीं नहीं है। हमें यही कहना है कि इन सबके हमारे जैसे ही हाथ-पैर, मुख, बुद्धि थे। अन्तर था

तो इतना ही कि वे सब ब्रह्मचर्य व्रत पर आरूढ थे और हम व्रतभंग पर हैं। इस लिये संसारमें वे अमर हो गये और हम कौवों कुत्तोकी मौत मर रहे हैं ।

ऐसी आवश्यक प्रथाका हेय होना किसको न अखरेगा । जिसे जातित्वका अभिमान है, जिसमे वंश-मर्य्यादाकी प्रतिष्ठा है, जिसके मनमें पूर्वजोंके अनुकरण करनेके होसले हैं उनका कर्तव्य है कि वे हठ-पूर्वक ब्रह्मचर्यके व्रती वनें ।

चौथा प्रश्न मांसाहारका है और मैं मासाहारको अवश्य अनाचार कहूँगा । वल्के मैं इसे मनुष्य-जातिकी वीरता पर कलंक और उसके मनुष्यत्व पर एक आरोप कहता हूँ। मैं गौओकी फर्याद नहीं करता, क्योंकि इसका अर्थ यह है कि अपने स्वार्थकी दृष्टिसे इस प्रश्नको देखता हूँ। न मैं दयाधर्मकी दुहाई दूँगा । क्यों· कि मैं हत्या करनेको (सब अवस्थाओंमें) पाप नहीं समझता । जज अपराधीको फाँसीसे हत्या करता है, सिपाही युद्धमें शत्रुकी हत्या करता है—पर ये पापी नहीं हैं, पाप और वस्तु है—और वह अन्तरात्माकी आज्ञासे तत्काल ज्ञात हो जाती है । मैं इस प्रश्नको वीरता अर्थात् मर्दानगीके नाम पर उठाता हूँ ।

गरीव वकरा, मुर्गा या गाय, बैल जिसके हाथ-पाँव वँधे हैं, जो भयसे काँप रहा है, जिसकी आँखोंसे आँसू वह रहे हैं, जो वेदनासे डकरा रहा है, जिसकी जीभ प्यासके मारे ऐंठ गई है ऐसे वेवस गरीव प्राणीको मारनेवाला वीर है या वचानेवाला ? मैं उस पुरुषको कायर, वल्के नामर्द कहूँगा जिसे ऐसे दीन पशु पर छुरी चलाने· का साहस होता है। निर्दय, आत्महीन, कायर मुर्गियोके पेटके नीचेसे अडे ले आते हैं। वे घन्टों छटपटाती फिरती हैं। मछलियोंको जालमे फाँस लेते हैं। वे वडे कष्टसे साँस लेकर छटपटा कर मरती हैं। क्या मनुष्य-जवान इतनी वड़ी है कि उसके स्वादके लिये ऐसी कारता-पूर्ण हत्याएँ की जायँ। हत्यारोका नाम कसाई उपयुक्त ही है। हिन्दूघरोंमें स्त्रियाँ क्रोधमें आकर भयंकर गालीके तौर पर इस नाम· को प्रयोग करती हैं। मैं नहीं समझता इस नामका और क्या अपमान इससे अधिक हो सकता है । और वे लोग जिन्होने इन अभागे घृणित व्यवसाइयोको उत्पन्न किया है—जो उनका मांस खरीदते खाते हैं उनके लिए उस अपमानका वरावर भाग भगवानने अपने धर्मशास्त्रमे किया है । मनु आठ कसाई मानते हैं । १ पशु वेचनेवाला, २ सलाह देनेवाला, ३ काटनेवाला, ४ मास वेचनेवाला, ५ खरीदनेवाला ६ पकानेवाला, ७ खानेवाला ।

मांस कैसी घृणित् वस्तु है, वैद्यक शास्त्र और संसारके बडे बडे डाक्टरोंने उसके सम्बन्धमें स्वास्थ्य नष्ट करनेवाले कैसे कैसे भयंकर दोषोंका पता लगाया है, और पशुओंका ऐसा निर्दय भयंकर वध अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे कितना निन्दनीय है ये सब बातें विद्वानोंने बहुत लिख दी हैं और प्रत्येक मनस्वी इस बातको जानता और समझता है। परन्तु खेद है कि मासाहारमें कुछ भी कमी नहीं होती।

मासाहारसे सम्बन्ध रखनेवाली एक और बात बडी मार्केकी है जो केवल असहयोग महायज्ञके कारण उत्पन्न हो गई है। कुछ मांस ऐसे हैं कि जिन्हें हिन्दू मुसलमान धार्मिक जिदके कारण घृणा करते या सेवन करते हैं। जैसे हिन्दू सूअरको खाते हैं, मुसलमान घृणा करते हैं। मुसलमान गो-मास खाते हैं, हिन्दू उस सम्बन्धमे विचार भी कर नहीं सकते। ऐसे मौके जिन पर केवल इसी कारण भारी भारी दुर्घटनाऍं हो गई हैं, अनगिनत हैं। और बराबर ये दुखदाई प्रसंग होते रहते हैं। क्या यह असम्भव है कि इस महान पवित्र यज्ञके नाम पर यह अपवित्र, झगडे और वैमनस्यकी जड़, कायरताका रूप मासाहार जडमूलसे सत्यानाश कर दिया जाय? हिन्दू धर्ममें प्राचीन प्रथा है कि कोई तीर्थ करके या पूर्ण कार्य करके कोई फल छोडा जाता है। क्या मेरी यह आशा करना अनुचित होगा कि समस्त हिन्दू-मुसलमान भाई सदाके लिये मासाहार छोड कर गरीब बेकस पशुओंका असीस लेंगे? जो कि उन्हें धार्मिक, नैतिक और आर्थिक दृष्टिसे भविष्यके लिये अतिशय उपयोगी है। मैं आँचल पसार कर इस त्यागकी भीख प्रत्येक मांसाहारी भाईसे मॉंगता हूँ।

अब मैं अत्याचारके अन्तिम अशके सम्बन्धमे दो शब्द और लिख कर इस अध्यायको समाप्त करता हूँ। वह है सत्य और अक्रोध। सत्य एक पवित्र और निर्भय भावना है। सत्य एक प्रामाणिक लोकप्रिय और आदरणीय आदत है। जो सत्यवक्ता प्रसिद्ध हैं वे संसारमें प्राणाणिक हैं। कहा है—'सॉंच बरोबर तप नहीं झूठ बरोबर पाप।' बात वास्तवमें सच है। एक कहावत है कि कोई धनी युवक कुसंगतिमें पड कर अनेक कुटेवोंका शिकार हो गया था। शराब, वेश्यागमन, चोरी, नशा, जुआ आदि अनेक दोष उसमें थे। जब उसके माता पिता समझा कर हार गये तो एक महात्माकी शरण गये। महात्माने बडे प्यारसे उसे समझाया और कहा कि तू सब काम कर, मेरे कहनेसे केवल एक बात छोड दे कि झूठ मत बोल, सत्य बोला कर। लड़केने देखा—इसमे कोई हर्ज नहीं, अपनी मौजमें कोई कमी नहीं आनेकी है। उसने कसम खाकर

स्वर, चिड़चिडा स्वभाव और हताश पुरुषार्थ यह प्राय: सभीका जीवन स्वरूप है। रहनेको स्वच्छ हवादार मकान नहीं। मैं २५०) महीना किराया देता हूॅ। केवल तीन कोठरी हैं, चारों तरफ ऊॅची ऊॅची दीवार, ॲधेरा, दुर्गन्ध, खट-मल, मच्छर-पिस्सू हैं, हवाका नाम नहीं। जो छोटी आयके पुरुष हैं उनके मकानोंके कष्टको आप इसीसे अनुमान कर लें। सब वस्तु मॅहगी है। हरामकी कमाई खाने-वालोंने मिट्टीकी तरह पैसा फैंक सब चीजें मॅहगी कर दी हैं। सबके मुॅह खून लग गया है। सट्टेवाज, व्यापारी, ठेकेदार, मिलोंके स्वामी वेअन्दाज कमाते हैं और पढे लिखे, मजूर, कारीगर आदि बॅधा हुआ ही कमा सकते हैं—वे इनका खर्चेमें कहॉ तक मुकाविला करे। पर तवियत और मन तो सभी लोगोंको है। यदि लोग सुख नहीं पा सकते तो सुखकी हिर्स अवश्य कर सकते हैं। खानगी वेश्याओके घृणित द्वार पर जो सभी उम्रके गरीव भाइयोंका मैं इतना जमाव देखता हूॅ तो मुझे उन पर रत्ती भर घृणा नहीं होती। मैं जानता हूॅ, वे व्यभिचारी या लम्पट नहीं हैं। शरीरका जो धर्म है, शरीरकी जो प्यास है—ये गरीव, भूखे, दलित लोग उसे दवा रखनेकी—उसे जीतने योग्य—आत्मशक्ति कहॉ पावेंगे ? वे वहीं गिरते हैं।

यही दशा शरावके विषयमें भी कही जा सकती है। गॉवके जवान लोग सीधे साधे वम्बईमें रोजी ढूॅढने आते हैं उस वक्त वे शरीरसे पुष्ट, मनके साफ, प्रफुल्ल चित्त, उत्साही और मर्द होते हैं। पर वम्बईसे दो वर्ष पीछे जव वे लौट कर जाते हैं तव उनके गाल पिचके हुए, रोगी, वाहरसे शौकीन, घमण्डी, छलिया और छैल होते हैं, पर भीतर गर्मी, सुजाक, क्षय और सैकडों रोग शरीरमें भर कर ले जाते हैं और अपनी निरपराधनी स्त्रियोके पवित्र स्वच्छ शरीरमें उस घृणित रोग समूहके वीजको वो देते हैं। यही नागरिकता है ? यही संगठन है ? यही तुम्हारी सभ्यताका प्रसाद है ? मैं इस पर थूकता हूॅ, लाख वार थूकता हूॅ। देहातके गॅवारु और असभ्य जीवनसे इस सभ्य जीवनका मुकाविला करिये। प्रत्येक आदमी किसान, मजूर, कारीगर स्वावलम्वी है। उनकी सीधी ईश्वरसे जान पहचान है। वे वातचीतमें, कसम खानेमें, दु:खमें, दर्दमें केवल भगवानको याद करते हैं। आस्तिकताकी विजली उनकी रग रगमे है। संसारके लोग उनके मालिक नहीं है। जमींदार और सरकारी लोगोंसे वे डरते जरूर हैं पर उनमें श्रद्धा नहीं रखते। छोटे छोटे उनके घर, खलिहान उनके क्रीडा-क्षेत्र, खेत उनके व्यापार और परिश्रम उनका काम है। प्रकृतिमे रहते हैं, प्रकृतिमे सम्बन्ध रखते

हैं। कोई अतिथि किसी जातिका आवे वे अपने समान ही भोजन उसे देंगे। मोलभावकी कोई बात नहीं। व्यभिचार, पाखण्ड, फजूलखर्ची वहाँ नहीं है। तमाम गाँव एक परिवारकी तरह रहता है। भंगी चमारसे लेकर ब्राह्मण तकमे आचार और शिष्टाचार है। गाँवकी ब्राह्मण-वधू गाँवकी बूढी भंगिनको दण्डवत करके वृद्ध सुहागनका असीस लेती है। आयुका वहाँ पूरा आदर है। चमार, कुर्मी और दूसरे नीच जतिके बूढोंको ऊँची जतिके युवाजन काका, चाचा कह कर पुकारते हैं। गाँवमें एक घरमें रंज या खुशी होती है तो तमाम गाँव उसमे शरीक होता है। क्या यह असभ्यता है? क्या यह असामाजिकता है? क्या यह पतित और पिछड़ा हुआ जीवन है?

कैसी लोगोकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है—कैसे लोग अभागे हो गये हैं—कैसा लोगोंको शहरोंमें रहनेका दुर्व्यसन सवार हुआ है। भगवान् ही इनकी बुद्धिको ठिकाने लगायगा।

बनारस तकके लोग बम्बईमें २५) ३०) की नौकरी करने आते हैं कानपुर तकके कहार १५) २०) की तनख्वामें यहाँ झूठे बासन माँजते हैं। राजपूतानेके कुम्हार अपना शुद्ध व्यवसाय छोड कर १५) २०) रुपयेमे झूठे वासन माँजनेकी नौकरी करने आते हैं। मारवाड़के बनियोंके पुत्र छोटी छोटी मुनीमी गुमास्तगीरी करनेके लिये लम्बी यात्रा करते हैं और स्त्री बच्चोसे दूर यहाँ रहते है। इन सब लोगोको सूअर और कुत्तोंके रहने योग्य मकान मिलता है और गोबरके समान खानेको कदन्न मिलता है। तिस पर गर्मी, सुजाक, क्षय और क्षीणताकी बीमारी पल्ले बँधती है। साल भरमे कठिनतासे १००) २००) बचाते हैं, उसे लेकर देश जाते और दो महीनेमें फूँक कर फिर हाथ हिलाते यहीं भाग आते हैं। पहले जब वे देशमें रहते थे तब सीधे साधे थे, अब देसावरी आदमी बन कर कोट बूट पहन कर जाते हैं। यहाँ चाहे रसोइया ही बन कर रहे हो, पर वहाँ नाई कहारोंको बखसीस बाँटते हैं। और चलती वार रेलकिराया जिस तिससे माँग कर फिर लौटते हैं। मजा यह कि देसावरी बननेमें यद्यपि वे ठसक पूरी दिखाते हैं फिर भी उनकी साख उधरसे हट जाती है। पहले उनको चार पैसे उधार भी मिल जाते थे। लोग समझते थे जायगा कहाँ, यहीं है, देगा। पर अब समझते हैं—मर्द परदेशी हो गये, जाने कब वसूल हो, क्या ठिकाना है?

यह हुई छोटे लोगोंकी बात। अब बडे लोगोंकी सुनिये। बम्बईका ही उदाहरण देता हूं। मारवाडी प्रायः सभी सट्टेबाज हैं। और अधिकांशमें भोंदू हैं। इधर वे बडे भारी अर्थ-लोलुप और बे-इज्जत समझे जाते हैं। मारवाड़ी पगड़ीकी कोई इज्जत नहीं है। साधारण गाड़ीवाला जहाँ गुजराती, महाराष्ट्र आदिको सेठिया कह कर पुकारेगा वहाँ बड़ेसे बड़े मारवाड़ीको "ओ मारवाड़ी" कह कर पुकारेगा। इन भाइयोंको अपनी आबरूकी कोई परवाह नहीं है—पैसेकी धुनमे मस्त हैं। और कुछ भी करने की योग्यता नहीं। सट्टेमें लिप्त रहते हैं। तार लिखने पढ़ने तकका योग्यता नहीं, इनके महल्लोंमे इनके तार लिखनेवालोंकी आमदनी ५००) से हजार रुपये महीने तक की है। सिपाईको देख कर धोती बिगड़ती है, पर करोडोंका सट्टा करते हैं। हँसीकी बात यह है कि इसे वह व्यापारके नामसे पुकारते हैं। मैंने देखा है कि इन करोडोंकी कमाईमें करोडपति होनेका मजा नहीं है—आदर नहीं है—तृप्ति नहीं है—शान्ति नहीं है—बडप्पन नहीं है। यह कमाई नहीं है—पाप है, जुआ है, छल-ठगी है। आगे चल कर मैं व्यापारके विषयका वर्णन करती वार बताऊँगा कि इस तरह धुँआधार अन्यायसे धनी बननेसे अन्तमें क्या भयकर परिणाम होगा। परन्तु अभी मैं यह कह रहा हूँ कि लाखों रुपये पैदा करने पर भी कोई यहाँकी कमाईको देश नहीं ले गया। यही बात सच भी है—यही लोग कहते भी हैं। मैंने करोडपतियोंको एक दिनमें भिखारी होते देखा है।

तुच्छ मनुष्य किस लिये इतनी मायामें पडा है? क्यो धोबीका कुत्ता हो रहा है? क्यों अपने जीवनका सुख, आत्माकी शान्ति और स्वर्गका अधिकार खो रहा है? क्या मनुष्यत्वकी अकूल मारी गई है या उसका पूर्ण दुर्भाग्य उदय हुआ है? मैं इस पर जितना ही विचार करता हूँ उतना ही दुखी होता हूँ।

गुजराती और भाटिये सज्जन इधर विशेष सम्पन्न हैं। इनके अनेकों कारबार हैं—बडी बडी मिले हैं। और उनका शेअरोंके सट्टेका एक बडा भयंकर बाजार है। कुछ लोग अत्यन्त गम्भीर छल करके अपनी पूँजी केवल एक कम्पनी खड़ी करके प्राय उसके आधे शेअर स्वयं खरीद लेते हैं—और ऐसा ढोंग रचते हैं कि मानो इस कम्पनीके शेअरोंकी बडी खपत है। मूर्ख लोग जो यह भी नहीं जानते कि शेअर जिस कम्पनीके हैं वह किसकी है और उसके कारभारी कौन हैं, खरीदने बेचने लगते हैं। भाव चढता है और मौका देख कर धूर्त कर्ता धरता अपने सब शेअर बेच कर दो ही चार मासमें दस बीस लाख कमा लेते हैं

और अलग होते हैं। बड़े बडे सट्टेबाजोंका कहना है कि बाजारमे जो हमको यह रुपया मिलता है वह कहीं आस्मानसे नहीं आता, सब छुटभैयोंका है—वे बराबर हारते हैं और पूँजीवाले जीतते हैं।

मुझे हँसी आती है। कारखानेके मजूर फटे चिथडे पहने सूखे टुकड़े खाकर कुत्तेकी तरह दिन काटते हैं और शेअरके दलाल लाखोंकी कमाई करते हैं। वाहरी सभ्यता? वाहरी नागरिकता? वाहरी बीसवीं शताब्दी? वाहरी चतुरा वेश्या? तूने खूब मर्दोंको उल्लू बनाया है—खूब समाजको नाको चने चबाये हैं—खूब मनुष्यताको जूते लगाये है। चण्डिका देवी तुझे नमस्कार है—तुझे दण्डवत है। पापिष्ठा! तेरे आगे हम कलम-वीर नाक रगडते हैं।

यदि ये सभी बडे बडे लोग, प्रत्येक व्यापारी, विद्वान् देहातोमें बस जायँ, बम्बई जैसे नगरोंमें आग लगा दें तो क्या उनका जीवन-क्रम न चले? क्या उन्हें शान्ति न मिले? उनके पास इतना रुपया है कि वे सात जन्म खायँ, और दीन दुखियोंको खिलावे। पर वे कोल्हूके बैल बननेके अभ्यस्त हैं—आज खोया कल कमाया, इस तरह बराबर बने रहते हैं। उत्तरके पहाडोंमें अनेको वन्य पदार्थ पैदा होते हैं। वहाँ कुछ धनी लोग जाकर अपने धनकी सहायतासे अनेको चीजोको बहुतायतसे देश भरमें भेज सकते हैं। राजपूतानेमे कई स्थलोमें बहुतसे खनिज पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। धनी पुरुष और विद्वान् पुरुषोंके वहाँ रहनेकी जरूरत है। धनी लोगोंकी खोने और पानेकी हुडक आराम हो जाय। और विद्वान् लोग थोडी गैरत प्राप्त कर सकें जिससे उनके मनसे चाकरीकी चाह मिट जाय। मैं समझता हूँ कि देहातमें वे बिखर कर बसें तो आज ही १२ आना स्वावलम्ब, शान्ति, तृप्ति, स्वास्थ्य और दीर्घायु तथा धर्मकी प्राप्ति हो जाय।

इसके सिवा देशके बहुसंख्यक हट्टे कट्टे कद्दावर जवान किसानोमें जो दोष हैं वे निकल जायँ। वे डरपोक हैं, दब्बू हैं, साहस-हीन हैं, अशिक्षित हैं, उत्तरदायित्व हीन हैं, आत्मचिन्ता-शून्य हैं और अधिकारोसे अपरिचित हैं। वे स्वस्थ हैं, प्रेमी हैं, वीर हैं, सरल हैं, मधुरभाषी हैं, दयालु हैं, आस्तिक हैं, बातके धनी हैं और परिश्रमी हैं। इसके साथ ही उपर्युक्त दोष दूर हो कर उनमें उपर्युक्त गुण आजायँ तो देशका सौभाग्य चमक उठे। देश वासो ऊपर चढ जाय। धनी जन और शिक्षित जन उनके पडोसमे रहें, अपनी श्रेष्टताका गर्व त्याग कर

गुण सीखें और उन्हें अपनी शक्तियोंमें भाग दें—उन्हें बराबरका भाई बनावें—इसकी जरूरत है।

असहयोगका युद्ध विना नागरिकता नाश किये कभी सफल न होगा। जिस सभ्यता और उसकी संरक्षक अँगरेजी सरकारसे हम असहयोग कर रहे हैं नगरमें रह कर ऐसा करना सागरमे रह कर मगरमच्छसे वैर करनेके समान है। सभ्यताने हमें फाँस लिया है। ऐयाशीमें रह कर हम कभी योद्धा नहीं बन सकते, मोटरमें बैठ कर हम कभी कष्ट नहीं सह सकते, बिजलीके पंखेके नीचे बैठ कर हम कभी मरनेकी दृढ़ता नहीं पा सकते। ऐसा करके भी यदि हम ऐसी इच्छा करते हैं तो हम बड़े मूर्ख हैं। संसारको हम पर हँसना चाहिए।

रोशनी, हवा, पानी, घरद्वार, कारबार, रुपया-पैसा सभी उस शक्तिके हाथमें है जिससे हम असहयोग कर रहे हैं। एक तरफ हम असहयोगी कहा रहे हैं, दूसरी तरफ दिन भर पचासों तार भेज रहे हैं। रेलमें माल लदा आ रहा है। डाकमें चिट्ठियोंके ढेर आ रहे हैं। सरकारके नोटोंके बंडल तिजोरीमें पधरा रहे हैं। सरकारी स्टाम्प खरीद रहे हैं। वसूल न होने पर सरकारी अदालतोंमें जूतियाँ चटखा रहे हैं। बिजलीका बिल चुका रहे हैं। नलोंके पानीसे ठाकुरजीको स्नान करा रहे हैं। सैकन्डक्लासकी सीट रिज़र्व करा रहे हैं—क्या यही हमारा असहयोग-युद्ध है? अरे मित्रो! हम मूर्ख बनाये जा रहे हैं—हम भटक रहे हैं—इस युद्धमें हमारी जय न होगी। चार आनेकी गान्धी कैप (?) पहन कर और सस्ती खद्दरका कोट पहन कर ही हम असहयोगी नहीं बन सकते हैं। जिस कामसे सरकारका सम्बन्ध है—जिस काममें सरकारका जरा भी हाथ है—जब तक हम उसकी ओर देखना भी बन्द न कर देंगे तब तक हमारी सफलता असम्भव है, बिलकुल असम्भव है।

आप कहेंगे कि रेल, तार, नगर, नल, बिजली, डाक कैसे छोडी जा सकती है। यह असम्भव है। मैं कहूँगा—यह बहुत सरल है। आप नागरिकताका नाश कीजिये। डाक सरकारी महकमा है उससे बिल्कुल काम मत लीजिये—उसके टिकिट न खरीदिये। इससे आपको इतनी असुविधा होगी कि विदेश गये मित्रों और बान्धवोंके समाचार न मिलेंगे और कारबार न चलेगा। मैं कहता हूँ न चले। कारबार बन्द कर दीजिये। मित्रों और बान्धवोंको विदेशसे बुला कर अपने जन्म गाँवमे इकट्ठे होकर रहिये। वहीं छोटासा कारबार कीजिये। शान्ति और

आस्तिकतासे दिन काटिये। कलकत्तेमे मेरा कोई नहीं है—वहाँकी डाक, तार, रेल सबमे आग लग जाय तो मेरा क्या हर्ज है ?

मैं आपको गत महायुद्धका हवाला देकर समझाऊँगा। यद्यपि वह रक्तपातका युद्ध था, पर युद्धकी साधारण नीति थी कि शत्रुकी सब सहायताओंके द्वार बन्द कर दिये जायँ। और वैसा किया गया—जर्मनी और अँगरेज दोनोंने ऐसा किया। अँगरेजोका रसूख जर्मनीकी अपेक्षा बाहर अधिक था—वे सफल हुए—जर्मनी दम घोट कर मार डाला गया।

यह बात अस्वीकार करना व्यर्थ है कि अँगरेज सरकार हमारी मित्र नहीं है और हम उससे विरुद्ध होकर युद्ध कर रहे हैं और अँगरेज सरकारकी सत्ता भी हमसे छिपी नहीं है और उसकी राजनीति भी हम पर प्रकट हो गई है—ऐसी दशामे यह बात अच्छी तरह समझी जा सकती है कि वह नागरिकताके जालमें फँसा कर हमारे घरू जीवनो तकको बुरी तरह पर-वश और बद्ध बना रही है। एक छोटीसी बात लीजिये। गर्मीके दिनोंमें नलमे कभी पानी नहीं आता। मैं बुरी तरह बिना स्नान सब कामधन्धे छोड उसकी प्रतीक्षा करता हूँ। न कुआँ है न पानीका और कुछ उपाय। मुझे अपने बचपनके वे दिन याद आते हैं जब हम सब लँगोटियोंकी मण्डली सन्ध्याको कुँए पर नंगी होकर पलौथी मार कर बैठती थी। एक डोल खींचता था और सब पर उलीचता था। उसके थकने पर दूसरा, तीसरा। वह कसरत, वह किलोल, वह सुख, वह जीवन कहाँ मर गया? कितनी भूख लगती थी ? सामने आया सो सफाचट किया ? आज खा नहीं सकते हैं—भूख मर गई है ? यदि हमें स्वाधीन बनना है, यदि हमें अपने विपक्षीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना है, यदि हमें सच्चा असहयोग करना है तो हमें नागरिकताका नाश करना होगा—देहातमें बसना पडेगा। देहातके प्रति अवज्ञाके भाव त्यागने पडेंगे। मेरी इस राय-को जो बावलेकी बड बड कहेगे यदि वे असहयोग पर एक भी कदम चलेगे तो मैं उन्हें सन्निपातका रोगी कहूँगा।

तीसरा उपाय—कौन्सिलका त्याग।

यह समय हमारी सामाजिकता पर घोर संकटका है। इस समय यह नितान्त आवश्यक है कि हम अपनी व्यक्तिगत इच्छा और शक्तियोंको नियन्त्रि-[illegible] सच्चे सिपाहीकी तरह आबद्ध होकर मोर्चेबन्दी पर टट जायँ। यदि [illegible]

नैतिक आकाक्षाओ और अँगरेजोंके राजनैतिक छल-पूर्ण स्वेच्छाचारिताओंकी परवा नहीं की जाय तो भी पंजाबके कमीने, घृणित, रोमाञ्चकारी, अत्याचारो और मर्म-स्पर्शी अपमानोंको हमें नहीं भूल जाना चाहिए। और जिस सरकारने इस कलक-पूर्ण हत्याकाण्डको उपेक्षा, तुच्छता, पक्षपात और स्वीकृतिकी दृष्टिसे देखा है उसरे प्रत्येक मनुष्यको जो मनुष्यत्वका अभिमान रखता है, घृणा-पूर्वक सहयोग त्याग देना चाहिए।

यह वह काल है जब स्वावलम्बन और स्वाभिमानकी वायु हू हू करके पृथ्वी पर ब रही है। यह वह शताब्दी है जहाँ अत्याचारी बादशाहोंके राजमुकुट धूलमें मिल गये हैं और स्वेच्छाचारी राजाओके गर्वित मस्तक प्रजाके पैरोंमें रोंदें गये हैं। जहे राजवंशके चिह्न मिटा दिये गये हैं, जहाँ छोटे छोटे बच्चे, रोगिणी रानी औ भयभीता राजकुमारियोंको निर्दयता-पूर्वक गोली मार दी गई है। यह अत्याचा और स्वेच्छाचारिताके विध्वंसका काल है। जिसमें हम जालिम सर ओडायर, खूर जनरल डायर और वैसे ही अनेक हत्यारोको अपनी सरकारकी अभय छत्रछायामे मूँछे मरोडते अब भी देख रहे हैं। कलेजा झुलस रहा है—आत्मामें आग सुलग रही है। मैं नहीं समझता आपका हृदय कैसा है और उसकी गर्मी यों ठण्ड पड़ गई है।

जिस सरकारके राज्यमे मासूम बच्चोकी हत्या होती है, स्त्रियोंकी इज्जत खाकमें मिलती है, नागरिकोंको नंगा करके हंटरोंसे चूतडोंकी खाल उडाई जाती है औ बेतोंकी गिनती पूरी होनेसे प्रथम ही दण्डनीय यदि चोटकी असह्य वेदनासे मर जाय तो बाकी बेत उसकी लाश पर मार कर गिनती पूरी की जाती है सद्गृहस्थ घृणित कीडोंकी तरह धरती पर रेंग कर चलाये जाते हैं। और ये कुकर्म अधिकारी कोई दण्ड नहीं पाते? उस सरकारका सहयोग कोई देश, कॉंग्रेस, गान्धी तककी उपेक्षा करके करनेको तैयार हो तो मजबूरी है, करे। पर मैं यह समझता हूँ—जो मर्द है, जिसकी छातीमे बाल है, जिसके तनमे गर्मी है, जो इन्सानपनेको पसन्द करता है और जिसके मनमे गैरत है वह कभी कभी ऐसी सरकारसे सहयोग न करेगा।

धन्य है वह शूर शंकरन् नैयर जो हममें सबसे पहले असहयोगी हैं। जिन्हें लोग शायद जातिका शूद्र समझते हैं, पर जिनके रगोंमें ऋषियोंके पवित्र रक्तका

तेजस्वी रक्त है। उन्होने उच्च पद, मान-मर्यादा, धन, आय सब पर पेशाव कर दिया, और तत्काल अत्याचारका समर्थन करनेवाली सरकारसे अलग हो गये।

भले ही मुझे कोई कटुवादी कहे या मानहानिका केस चला दे, पर मैं ऊँची आवाजमें डंकेकी चोट यह कहनेका साहस करता हूँ कि ५ रुपयेके चपरासीसे लेकर कौन्सिलके माननीय सदस्यों तक प्रत्येक आदमी जो पंजाबके हत्याकाण्डके समय सरकारके सहयोगी थे, सब बराबर उस जातीय खूनके मुजरिम हैं। और जो उस काण्डके अन्तमें उस पर सरकारी कार्रवाई देख चुकने पर सरकारी सहयोगमें बने रहे हैं वे आत्माभिमान-शून्य हैं। और अब जब कि असहयोगको देश और काँग्रेसने स्वीकार कर लिया है, उसकी पद्धति और प्रकार निर्णय हो गया है और वह नियम-पूर्वक फोर्समें आ रहा है यदि कोई सरकारके सहयोगकी आकाक्षा करता है तो वह खुदपरस्त और देशका अशुभचिन्तक है। वह देशकी असफलताका जिम्मेदार है और देशके मार्गमे काँटा है। देश उस पर प्रेम, सम्मान और विश्वास बनाये नहीं रह सकेगा।

यह बात अब सन्देहमें नहीं रही है कि देशको ॲगरेजोंकी श्रेष्ठता और ॲगरेजी कानूनकी न्याय्यता पर विश्वास नहीं रहा है। वह ॲगरेजी शासनकी स्वेच्छाचारिता सहनेसे इन्कार करता है। वह ॲगरेजोंकी सहायता लिये विना अपने पैरो स्वयं खडा होना चाहता है। और यदि वह सहायता लेना भी चाहता है तो अपनी इच्छानुकूल चाहता है। हमको डूब मरना चाहिए यदि हम अपनेको ॲगरेजोंके बराबर नहीं अनुभव कर सकें। यह हमारे लिये लज्जाकी बात है कि १ लाख गोरे ३१ करोड हम पर पूर्ण स्वेच्छाचारिता और राजनैतिक छल-पूर्ण शासन कर रहे हैं। और यह घोर निन्दाकी बात है कि उन्हें अपनी प्रत्येक तजवीजोको स्वच्छन्दतासे प्रयोग करते रहने पर भी वे-रोक हमारा सहयोग मिलता रहा है। देश यह चाहता है कि ॲगरेजोकी पाशविक शक्ति नष्ट कर दी जाय। और यह दिखा दिया जाय कि पाशविक शक्तिके बल पर भारतमे एक क्षण भी शासन नहीं हो सकता। सरकारी शासनके तराजूके दो पलडे हैं। एक है कौन्सिल और दूसरा पलडा विस्तृत साम्राज्यका फैला हुआ कारभार है। कौन्सिलमे शासनकी पद्धतियाँ निर्माण की जाती हैं और नीति पसन्द की जाती है। उसमे यदि हमारा नामको भी सहयोग होगा तो उस पद्धति और नीतिके मानने समस्त साम्राज्यके

सिर झुकाना होगा और हम कुछ न कर सकेंगे। परन्तु यदि हम उससे असहयोग करें तो उसकी शपथका भार हमारी गर्दनसे हट जायगा और उसके विरोध करनेके लिये हमें पूर्ण शक्ति, विस्तृत क्षेत्र और भारी बल मिलेगा। मेरा यह विश्वास है कि कौन्सिलमें बैठ कर किसी भी बुराईको रोकनेके लिये हम जितनी बुद्धि, मनन-शक्ति, प्रतिभा तत्परता, सहिष्णुता और वीरताका परिचय देते हैं उतना कौन्सिलसे बाहर उसी सगठित रूपसे करें तो निस्सन्देह हम कौन्सिलको भयभीत और नियन्त्रित कर सकते हैं। इसमें सबसे बडी भारी बात तो यह होगी कि यदि हमारी चेष्टा न भी सफल हुई तो हम पर उस अत्याचारमें सहयोगी होनेका उत्तर-दायित्व तो न रहेगा। अलबत्ता इतना जरूर है कि कौन्सिलमें अपमान है और कौन्सिलसे बाहर खतरा है। पर मैं समझता हूँ अपमानसे खतरा अच्छा है।

कौन्सिलमें जानेके लिये अब एक ही बात कहनेको रह जाती है वह यह कि जब तक अँगरेजी साम्राज्य है तब तक उसमें जानेसे कुछ न कुछ तो हम धींगामुस्ती करते ही रहे हैं—हमारे असहयोगसे फिर तो अत्याचारका एकछत्र राज्य होगा। इसका उत्तर यह है कि वे अपनी नीतिको स्वेच्छाचारसे तैयार करें और हम उसके विरोधको स्वेच्छाचारसे बाहर तैयार होंगे। हमारे कौन्सिलमे रहनेसे जितना वे हमसे दबते हैं उसका कई गुना हम दब जाते हैं। क्योंकि हम जानते हैं और उन्हें यह कहनेका अवसर मिलता है कि कौन्सिलमे हमारे ही भाई हैं।

मेरा अभिप्राय यह है कि देशकी जो प्यास और आकांक्षाएँ हैं वे न्याय्य और उचित हैं। हम सिर्फ उनकी सुध रक्खे, बाकी दुनिया अपनी सुध आप रख लेगी। बाधक और घातक जो बाधा आवेंगी देश अपनी शक्ति, योग्यता और संगठनके सहारे उनका प्रतीकार करेगा।

अन्तमें मैं इतना अवश्य कहता हूँ कि यदि असहयोग असफल हुआ—भीतर फूट पड गई—और हम लोग अलग अलग ढाई चावलकी खिचडी पकाने लगे तो शीघ्र एक विकट समस्या सामने आ जायगी अर्थात् देश तलवार पकडेगा। और उसका परिणाम पतन होगा। क्योंकि आसुरी बलमें हम असुरोंसे बढ नहीं सकते। तब देशके पतनकी जवाबदेही उन व्यक्तियों पर होगी जिन्होंने अपनी व्यक्तिगत इच्छाओंके सामने संघशक्तिका अनादर किया था और जिन्होंने अवलम्ब-रज्जुमे गाँठें डाल दी थीं।

चौथा उपाय—शिक्षाका नाश।

एक बार मैं अपने एक मित्रके साथ जंगलकी हवा खाने गया। सुन्दर हरी पहाड़ियोंके बीचमें एक हरियाले मैदान पर स्वच्छ जलकी कुदरती छोटीसी झील थी। सोनेकी तरह दोपहरकी सूर्य-किरणोंमे उसका जल चमक रहा था। उस झीलमें एक ठेक बीचों बीच पानीसे ऊपर निकल आई थी। उस पर बहुत ही सुन्दर सफेद रंगके कई जलपक्षी बडी सुन्दर पंक्तिमें बैठे चहक रहे थे। उन्हें देख कर मेरे बुजुर्ग मित्रने कहा—" अहा! देखो ये सुन्दर पक्षी एक पॉतिमें इकट्ठे बैठे कैसे सुन्दर मालूम देते हैं। मैंने उन पर एक चाहकी दृष्टि डाली और फिर मित्रकी तरफ तीव्र दृष्टिसे देख कर कहा—

" यह इनका सौभाग्य है कि ये ॲगरेजी पढे-लिखे नहीं हैं, नहीं तो आज इनमें यह एकत्र होनेकी सुन्दरता न होती। इनमेंसे एक उस पहाडीकी टेकरी पर बैठा चोंच रगडता होता, दूसरा उस वृक्षके ठूठ पर झख मारता, तीसरा वहॉ जंगलमें भटकता, चौथा इधर उधर सिर्फ पेट भरनेको फिरता होता। ये लोग अपने अपने बैठनेकी जगहमें हद बनाते। उनके लिये लडते, मरते, इज्जतका खयाल करते, अदब काय-देसे बैठते। "

मेरे मित्र मेरी बात पर हॅसने लगे। वे सैर करने आये थे, बहस करने नहीं। पर उन पक्षियोंकी वह सुन्दरता मेरी नजरसे नहीं उतरती है। मैं अकसर जब पढ़े-लिखे युवकोको पीला गात, सूखा निस्तेज मुँह, गढेमें धॅसीं ऑंखें, पिचके गाल, गद्गद् वाणी, कॉंपते हाथोंसे जिस तिसके दर्वाजे पर अपनी योग्यताकी खुर्चनका चण्डल जेबमें भरे भटकते देखता हूॅ, फटकार खाते और निकम्मे अनावश्यक और नालायक बन कर धक्का खाते देखता हूॅं तो वे पक्षी मेरी ऑंखोंमें तस्वीर बन जाते हैं। क्या मनुष्यके लालोंके ही भाग्य फूटनेको थे? क्या यह अपमान—तिर-स्कार और कड़वे जीवनका शाप मनुष्यके बच्चों पर ही पडनेको था? मेरी छाती जल जाती है—मैं बेचैन हो जाता हूॅ।

एक दिन मेरे पूज्य पिताजी कहने लगे—न जाने संसार किस तरफ जा रहा है और इसका क्या होना है, प्रत्येक पीढीकी नस्ल गिर रही है। अबसे ५०–६० वर्ष प्रथम ही प्रत्येक पुरुष पूरा कद्दावर, पुष्ट, नीरोग और परिश्रमी था। प्रत्येकके चार चार छः छः लक्कड़के समान ठोस जवान बेटे होते थे—कोई निपूता

था । एक जवान जब लकड़ी पकड़ता था तब पचासोंकी मण्डलीको भारी हो जाता था । दिन पर दिन लोग बिना सन्तानके हो रहे हैं । सन्तान होती भी हैं तो मरी, गिरी, रोगी, दुर्बल, अपाहज और बेदम । उन्हें वे स्कूलके मुर्गीखानेमें पिटने और गालियाँ खानेको भेज देते हैं । बेचारे फूलसे बच्चे आँसू पीते हैं, गम खाते हैं, थर थर काँप कर दिन काटते हैं ऐसी भी क्या आफत है । यह पढाई क्या कुलका उद्धार करेगी ? हमने तो इसमें वही मसल देखी कि "सारी रात रोये और एक ही मरा ।"

अनेकों बार अपने बचपनमें मैंने पिताजीकी जबानी इस तरहकी बातें सुनी हैं जो वे सदा अपने मित्रोंसे कहा करते थे । धीरे धीरे मैं उनका सार जान रहा हूँ । मैं अपनी आयुके और उनसे पीछेके जवानोंको देखता हूँ तो थक कर रह जाता हूँ । मानो मर्दानगी इनसे रुठ गई है, उत्फुल्लता मर गई है, उठाव मसल डाला गया है । मुर्दे, कमजोर, रोगी और टूटे हुए ये नौजवान घर घरमें पड़े टुकडे तोड़ रहे हैं ।

स्कूल जाना और अँगरेजी शिक्षा पाना इनके लिये जरूरी है । माता पिताका कर्तव्य इसीमे पूर्ण हो जाता है । जो माता पिता बच्चोंको अँगरेजी स्कूलोंमे भेज देते हैं मानो वे आदर्श माता पिता हैं । पर वहाँ स्कूलमें होता क्या है ? दुर्बल बच्चे, मन मारे, डरसे थर थर काँपते, तख्तेकी बेंचों पर, सीलभरे कमरेमे अर्थहीन और अनावश्यक बातोंसे परिपूर्ण गन्दी किताबो पर हठ-पूर्वक दृष्टि जमाये बैठे रहते हैं । सामने दुर्भाग्यके अवतार, क्रोधके भैरव, पूरे मूर्ख, टूटी लियाकतकी खुर्चन लिये, लपलपाती बेत हाथमे लिये मास्टरीकी नौकरी (?) बजाते हैं ।

उनके श्रीमुखसे अलाय बलाय, शुद्ध अशुद्ध जो निकले वह यदि लड़कोंकी तत्काल अकलमें जम कर न बैठ जाय तो फिर तड-तड-तड पीठ पर बेत पड़ती है—गरीबकी कोमल खाल उपड जाती है—कमर दूहर हो जाती है, पर वह कसाई इस पर भी सन्तुष्ट न हो उन्हें मुर्गी बनाता है । गाली तो मानो गिनतीकी वस्तु ही नहीं है ।

छोटे लड़के पिटनेके डरसे और बडे लडके इम्तिहानमें फेल होनेके डरसे शुरूसे आखिर तक पढ़ते हैं । और चाहे वे कुछ न सीखें, पर प्रेमकी गन्दी कविता, आशिकी मजमूनके खत लिखना, माँग निकालना, बड़े कालरकी कमीज

पहनना, बूट और पतलून पहनना अवश्य सीख लेते हैं। वह लड़का यदि किसी कारीगर या श्रमी पिताका पुत्र हुआ तो अपने पैत्रिक कार्यमें पिताका सहारा देना उसकी परम मानहानिकी बात है। पिता कोई कामको कहते हैं तो तत्काल जवाब मिलता है—वाह मुझे तो खेलमें जाना है, वरना जुर्माना हो जायगा। और सचमुच जुर्माना हो भी जाता है। ज्यों ज्यों कक्षा ऊँची चढ़ती है पुस्तकोंकी तादाद बढ़ती जाती है—गधेकी तरह लद करके स्कूल जाते हैं और पागलकी तरह दिन-रात आँखे फोड़ा करते हैं।

एफ० ए० तककी शिक्षा इतनी है जिसमे उन्हें अँगरेजी भाषाके भावोंको किसी तरह समझनेकी योग्यता आ जाती है। करीब १२ वर्षके पूरे परिश्रमसे बच्चा यहाँ तक पहुँचता है। परन्तु यहाँ तक पहुँचते पहुँचते उसकी विचार और भावनाकी शक्ति कुछ भी काम न आनेके कारण मुरझा जाती है—उसका विकास नष्ट हो जाता है—विदेशी पुस्तकोंकी भाषा यदि वह बल-पूर्वक रट रट कर सीख भी ले तो भी भाव उसकी समझमें नहीं आ सकते। हमेशा भावोंको हृदयंगम करनेके लिये स्मृतिके उदय होनेकी जरूरत है। हम राम, कृष्ण, भीम आदिका आख्यान जब पढ़ते हैं तो बराबर हमारे हृदयोंमें एक स्मृति उदय होती है, हमें उसमे कुछ स्वाद मिलता है। मगर एक भारतीय बच्चा मई महीनेकी तपती लूओंमें बैठ कर किसी अँगरेजी कविके इंग्लैण्डके मईकी ऋतु-सौन्दर्यका वर्णन पढ़ता है तो उसे कुछ मजा नहीं आता—कुछ भी भावना उसके हृदयमें उदय नहीं होती—वह केवल शब्दोंके अर्थ समझ लेता है और मास्टरसे चोजकी बात नोट करके याद कर लेता है।

बी० ए० की श्रेणीमें आकर एकदम भावनाकी जरूरत होती है, पर अब तक अविकसित रह कर जो भावना मुरझा गई थी वह अब कहाँसे आवेगी। निदान वह अभागा वहाँ भी नोट याद करके ही लेखकोंका मतलब समझता है।

और एक भयंकर बात अँगरेजी उच्च शिक्षाने हमारे युवकोंके हृदयोंमें पैदा कर दी है। वे बराबर शुरूसे अखीर तक जीवनके वे दृश्य दृष्टिमे और हृदयोंमें खचित करते हैं जो वास्तवमें उनके जीवन और परिस्थितिसे प्रतिकूल हैं। शेक्सपियरके नाटक और अन्य कवियोंके ग्रन्थ जैसी नायिकाकी एक तस्वीर उनके मनमें खींच देते हैं वैसी नायिका सचमुच उन्हें नहीं मिलती। जब ऐसे शिक्षितका ब्याह गाँवकी एक

उन्हें साहबी पोशाक बना दी, आपने बर्तन बेचे उन्हें किताब खरीद दी। और बडे चावसे, उत्साहसे देखने लगे—बेटा पढ़ कर कैसा बन जायगा? कुलदीपक बनेगा! पर जब वह शिक्षित होकर आया तब क्या देखा गया? इस शिक्षा डायनने उसकी छातीका खून चूस लिया है, उसकी आँखोंकी जोति मारडाली है, उसकी जवानीका रस पी लिया है, उसे अधमरा बना दिया है। वह किसी कामका नहीं रहा—वह धोबीका कुत्ता हो गया है।

इस शिक्षाको अब भी हम जीती छोड़ देंगे? यह पूतना अब भी हमारे बच्चोंको प्यार करनेका बहाना करती रहेगी? इतना जानने पर भी हम इसका गला नहीं घोटेंगे तो हम कर ही क्या सकते हैं? हम केवल जूतियाँ खा सकते हैं। हमें पगडी उतार कर फैंक देनी चाहिए और सिर नंगा कर रखना चाहिए।

जिनके जवान बेटे जनाने हो गये, जिनके जवान बेटे पराई गुलामी करे, जिनके जवान बेटे पराये कपडे पहने, पराई भाषा बोलें, पराया काम करें, पराये ढंगसे रहें उन मा-बापोंको—यदि उनमे गैरत है तो—संखिया खा लेना चाहिए। उन्हें अपनी लाज बचानेकी और क्या आशा है।

पाँचवाँ उपाय—व्यापारका नाश।

आजके दिन जैसा व्यावहारिक जीवन बन रहा है उसे देखते मैं यह बिना संकोचके कह सकता हूँ कि सरकारके स्वार्थों और प्रजाके स्वार्थोंमें जितना अन्तर है उतना ही अन्तर व्यापारियोंके स्वार्थों और प्रजाके स्वार्थोंमें हैं। और अपने स्वार्थकी रक्षाके लिए जब प्रजाने सरकारसे लडना शुरु कर दिया है तो यह सम्भव नहीं है कि वह व्यापारियोंको छोड दे। मुझे ऐसा दीखता है कि सरकारको पछाडनेके पीछे प्रजा हाथ धोकर व्यापारियोंके पीछे पडेगी और उनकी हड्डी पसली तोड कर अच्छी तरह मरम्मत कर देगी।

प्रजाकी गरीबी छिपी नहीं है। ऐसे लोगोंकी गिनती नहीं हो सकती जिन्हे पेट भरना तो एक ओर रहा आधारके लिये भी मुट्ठी भर भोजन मिल सके। सर्दीके दिनोंमे लोग पेटमें घुटने लगा कर और आगके चारों ओर बैठ कर रात काट देते हैं, ऐसा मैंने स्वयं देखा है। उनमें कितने लोग, न्यूमोनियाके शिकार होते हैं जिनके पुट्ठों और फेफड़ोंको सर्दी मार जाती है। इन्फ्लुएन्जाकी भयंकर मृत्युसंख्याके कारणों पर बडे बडे विद्वानोंने अपनी भिन्न भिन्न सम्मति

हैसियतसे और इन्फ्लुएन्जामें वरावर काम करनेके अनुभवसे मैं साहस-पूर्वक यह कह सकता हूँ कि उस विषैली ठण्डी हवासे पुट्ठो और छातीकी रक्षाके लिये जिनके पास काफी रुईके वस्त्र न थे वे उस भयंकर महामारीके चंगुलमें फँस गये और चूहोंकी तरह मर गये।

खानेकी सामग्री और रुई यदि सस्ती हो जाय तो देशके प्राण लौटें। लोगोको नवजीवन प्राप्त हो। अभी हालमें कुछ ऐसा हुआ कि गेहूँ, घी, रुई कुछ सस्ती हुई। उस सस्तेपनको देख कर गरीव प्रजा पूरी तरह मुस्कराई भी न थी कि व्यापारियोंने सिर धुन डाला, उनके पेट फट गये। उन्होंने होहल्ला मचा दिया कि मर गये, लुट गये। मानों उनके घरके सभी मर गये। और उन्होने वस्तुकी महगाई वनाये रखनेके लिये सद् और असद् सभी उपायोंका अवलम्ब लेना शुरू कर दिया। यह देख कर मुझे यह धारणा हुई कि व्यापारी देश-भाई नहीं हैं—देशके साथ उनकी सहानुभूतिका सम्बन्ध नहीं है। देशके दु खके साथ उनका दु:ख और सुखके साथ सुख नहीं है। वे पूर्ण-रूपसे विदेशी सरकारकी तरह अपने तस्मे (चमडेकी पटरी) के लिये पड़ोसीकी भेस हलाल करनेवाले निर्दय स्वार्थी हैं। और उनका स्वार्थ देशसे भिन्न ही नहीं वल्के देशके स्वार्थसे विपरीत भी है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि जव देश सरकारकी स्वार्थान्धताको भी नहीं स्वीकार करता, उसके सव तरहके त्रासकी भी परवा न करके युद्ध करनेको वरावर वढ रहा है तव वह क्या इन पतली दाल खानेवाले व्यापारियोंको यों ही छोड देगा? जिनका मामला ऐसा है कि "आधेमें जमधर आधेमे सव घर"। मैं निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि देश सरकारको पछाडनेके पीछे सवसे पहले इन घरेलू चूहोंका इन्तजाम करेगा जो स्वयं क्षुद्र होने पर भी सिर्फ कुतर कुतर कर अनगिनत हानि कर रहे हैं।

ये व्यापारी केवल वडे वडे दान करके देशके भाई नहीं वन सकते। इन लोगोंके लाखों रुपयोंके वडे वडे दानोंको मैं आदरकी दृष्टिसे नहीं देख सकता हूँ। यह पापकी कमाई है जो सट्टा, सूद, हरामीपने और गरीवोंके पसीनेसे निचोड़ी हुई है। मैं इसे पिछले राजशाही जमानेकी उस रिश्वतसे मिसाल देता हूँ जो कि रजवाड़ेके डाकू लोग राजाको दिया करते थे। और वह रकम पाकर राजा लोग उनके कुकर्मकी तरफसे आँख मींच लेते थे। इस धनके देनेवाले तो पापिष्ठ हैं हीं स्वीकार करनेवालोंको भी मैं पापी समझता हूँ। धर्मशास्त्रोंमे यह विवेचन अच्छी

आधा ही शरीर भीगा उतना ही स्वर्णका हो गया। अब शेष आधेके स्वर्णके होनेकी कोई आशा नहीं है। आधा शरीर चर्मका लेकर ही मरना होगा।

क्षुद्र जन्तुकी यह गर्वीली कथा सुन कर युधिष्ठिरकी गर्दन झुक गई। और अपने तामसिक कर्म तथा गर्व पर लज्जा आई।

मैं असहयोगके दिनोंसे बहुत प्रथमसे व्यापार और व्यापारियोंका घोर द्वेषी हूँ। मेरी धारणा है कि सारे पाप, अशान्ति, बेईमानी, महामारी और लोहू और लोहेकी जड यह व्यापार है। यह अनावश्यक महकमा है—यह कारीगरीके पेटमें ताप-तिल्लीकी बीमारी है। यह मजूरोंकी छातीका क्षयरोग है। इसका जितनी जल्दी नाश हो उतना ही अच्छा। असहयोगका चाहे जो कुछ हो, चाहे हमें स्वराज्य मिले या हम पशुबलसे कुचल दिये जायँ, परन्तु यदि मैं जीवित रहा तो जन्मभर व्यापारसे लडूँगा—व्यापारकी हत्याके लिये तीव्रसे तीव्र विष तैयार करनेमे मैं अपनी नई जवानीके समस्त उत्साह और योग्यताको जो एक गरीब पिताके पुत्रको प्राप्त हो सकती है, खर्च कर रहा हूँ।

व्यापारी-मण्डलको इस भावी विपत्तिका खयाल करके और देशकी परिस्थितिका खयाल करके देशका साथ देना चाहिए।

कुछ व्यापारी—मिलके मालिक और फर्मोके स्वामी—अपने नौकरोंको थोड़ी तरक्की और स्वाधीनता देकर ही गंगा नहा आते हैं। मैं यह कहूँगा कि यह उनकी भूल है। अबसे दश वर्ष प्रथम जिस बच्चेको जो चाह थी उसे उसका पिता आज पूरी करे तो यह सर्वथा असंगत है। प्रजा जब अपने अधिकारोंको जान गई है और वह उनके योग्य भी है तब राजसत्ता या उसके गुलाम व्यापारी उसे दबा कर नहीं रख सकते हैं।

भारतकी परिस्थिति और भी गम्भीर है। भारतके व्यापारी एक प्रकारके दलाल या जुआचोर कहे जा सकते हैं। या तो वह जापान, अमेरिका और इंग्लेण्डके मालको यहाँ बेचते और कौड़ियाँ कमाते हैं या इधरका उधर कराके दलालीके पैसे वसूल करते हैं। न उनमें स्वावलम्ब ही है, न बल, उनकी भित्ती बालके ऊपर है—वह बहुत ही कच्ची है।

यह कचाई और बढ़ जाती है जब आज दिन देशकी चाल पर दृष्टि डाली जाती है। देशमें असहयोगका युद्ध चल रहा है और वह बहुत दूर आ गया है।

उसके नियमके अनुसार जिस सत्तासे युद्ध हो रहा है उससे सम्बन्ध मन-वचन-कर्मसे त्याग देना अनिवार्य है। जो व्यापारी ऐसा न करेगा वह देशद्रोही है—देशके मार्गमें रोडा है—देशका विघ्न है—देशका उस पर क्रोध होगा।

क्रोधके पिछले कारण ही यथेष्ट हैं। यह नया कारण उत्पन्न करना व्यापारियोंके लिये कभी हितकर न होगा; खास कर इस दशामे कि वे अपनी आत्म-रक्षामे सर्वथा असमर्थ और अपने कारवारमें सर्वथा पराधीन हैं। जब तक विलायतका माल आता जाता रहेगा तव तक डाक, तार, रेल, जहाज और सरकारी मुँहताजी वरावर हमारे ऊपर वनी रहेगी। यह याद रखनेकी वात है कि हमारी सरकारकी जान व्यापारमें है। गत योरूपीय महायुद्ध भी व्यापारका महायुद्ध था। मित्र-पक्ष वरावर व्यापार करते रहे। जर्मनीने उनके हजार रास्ते बन्द किये और अपने खोलने चाहे, मगर सफलता न हुई। उसके मित्रोंकी कमी थी—उसे अपने ही वल पर भरोसा था—उसने मित्र नहीं पैदा किये थे। उसका व्यापार अगर जिन्दा रहता तो कदापि वह परास्त न होता और अँगरेजोंका व्यापार जिन्दा रहेगा तो हम भी उन्हें न हरा सकेंगे। वे वरावर हमारे प्रहारोकी उपेक्षा करेंगे।

ये कारण हैं कि व्यापारियोंको असहयोगके नाम पर, देशके नाम पर, जाति और आनके नाम पर अपने अपने व्यापार नष्ट कर देने चाहिए। देशके मनस्वी विद्वान् और पूज्य पुरुष जव देशके नाम जेल जाने और भीषण कष्ट उठानेको तैयार हैं तो धनी व्यापारियोंको इतना अवश्य करना चाहिए। ईश्वरकी दयासे उन्हें खानेकी कमी नहीं है। उन्हें सव धन्धे छोड कर चुपचाप देहातोमे शान्तिसे वैठना चाहिए। देहातोंमें जाकर वे वहाँके गँवार भाइयोंको साहसी और आत्मतेज-युक्त वनानेकी चेष्टा करें यह उनका कर्तव्य है, इसीमें उनका श्रेय है। और खयालसे नहीं तो अपने भविष्यको विचार कर वे ऐसा अवश्य करें। इससे सवसे महत्त्वका लाभ यह होगा कि नागरिकताका नाश हो जायगा। और एक एक व्यापारीके नगर छोडते ही हजारो गरीवोको मिलोंकी जेलसे छुट्टी मिल जायगी। वे देहातमें स्वच्छ और सस्ते जीवनमें कुछ दिन अघा कर सॉस लेंगे।

एक वडा गहरा प्रश्न यहाँ यह उठ सकता है कि ये धनी लोग तो देहातोंमे जाकर और अपने अपने धन्धे छोड कर कुछ दिन चुपचाप वैठ कर भी काट

सकते है, पर गरीब मजूर लोग जो नित्य कुँआ खोदने और नित्य पानी पीते हैं, क्या करेंगे ?

निस्सन्देह बात विचारणीय है, पर मेरा ऐसा खयाल है—व्यापारी और मिलोंके स्वामी जो जनताको वस्त्र आदि देते थे, उनका कारबार बन्द हो जाने पर वही वस्तु छोटी छोटी दूकानों पर देहातमें ये लोग तैयार करके सबको दें। इससे यह मैं अवश्य आशा करता हूँ कि मजूरोंसे ये अच्छे रहेंगे। वहाँ उन्हींकी तो कमाईसे कपड़े आदि बनते थे, वे ही यहाँ बनावें। जो धन्धा जिस पर आता है करे। इसमें इतना अन्तर होगा कि उस समय वे कारीगर और दूकानदार कहलाएँगे। तब उनकी कमाईमें मालिक शरीक था, अब पूरी उन्हें मिलेगी। धनी लोगोंको निस्वार्थ भावसे इन्हें सब तरहकी सहायता और उत्तेजना देना आवश्यक है।

छठा उपाय—धर्म और पापके धनका बलिदान।

भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है और मनुष्य पापका चोर है इस लिये धर्म और पापकी बिना सहायता लिये मैं माननेवाला आदमी नहीं हूँ। मैं अपनी अन्तरात्मामें भली भाँति जानता हूँ कि पाप और धर्म दोनों खातोंमें भरपूर धन है और उसका कुछ भी सदुपयोग नहीं हो रहा है।

पहले मैं धर्मादाओंकी बात कहूँगा। मन्दिरों, मसजिदों और मकबरोंकी करोड़ों रुपयोंकी आमदनी है। काशी, वृन्दावन, नाथद्वाराके प्रख्यात मन्दिर, गोकुलिया सम्प्रदायके महन्त, अजमेरके ख्वाजाकी दरगाह और हजारों संस्थाएँ हैं जहाँ भावुक भक्तोंके सोनेका मेह बरसता है। बहुतेरे मन्दिरोंके पीछे जागीरें हैं, गाँव हैं। उस अतुल सम्पत्तिके स्वामी उनके महन्त और पुजारी हैं। इन सबके सिवा गया, प्रयाग आदि तीर्थोंके भारी भारी दान भी कुछ कम श्रेणीकी वस्तु नहीं है। अच्छा मैं यह पूछता हूँ कि यह धर्मका धन किसी एक व्यक्तिके विलासकी वस्तु होनेके योग्य है ? यह बात छिपी नहीं है कि अनेक महन्त आदिकोंके चरित्र राजाओंकी तरह निकम्मे और भ्रष्ट हैं। मैं इनके प्रमाण दे सकता हूँ। फिर यह न भी हो तो यह धर्मका पैसा धर्ममें लगे। सबसे बड़ा धर्म क्या है—यह सोच लेना चाहिए।

सर्व-साधारण सम्प्रदायोंको धर्मके नामसे पुकारते हैं। भारत धर्म-प्रधान देश है। चिरकालसे यहाँ धर्मका आदर होता आया है—बड़ी-सी बड़ी शक्तियाँ भी धर्मके आगे सिर झुकाती चली आई हैं। यह एक साधारण बात है कि जिस

वस्तुकी ज्यादा खपत होती है उसकी दूकानें भी बहुतसी खुल जाती हैं। और यह भी स्वाभाविक है कि नकली चीजे बहुत बनने लगती हैं। भारतमें धर्मकी भी वही दशा है। मन्दिरोमें, सड़कों पर टके सेर धर्म मिलता है। घरके धनी महाशय जब भोजन नाक तक डाट चुकते हैं और थालीमे जो जूठन दाल-भात बच रहता है तब कहा जाता है यह किसी भूखेको दे दो, धर्म होगा। कपड़े पहनते पहनते जब नौकरोंके भी कामके नहीं रहते तब कहा जाता है किसी नंगेको दो, धर्म होगा। इसी भारत वर्षके जब दिन थे और भारतवर्षमें बड़प्पन था तब इसी धर्मके नाम पर राजाओंने राज्य त्याग कर चाण्डालकी सेवा की थी, अपना मास काट कर कबूतरको खिलाया था, अपने पुत्रके सिर पर आरा चलाया था। वही महादुर्लभ और दुर्धर्ष धर्म इस कलि-युगमें इतना सस्ता हो गया कि वह झूठे टुकड़ो और फटे चिथड़ोके ऐवज चाहे जो उसे मोल ले सकता है। इससे अधिक उपहास और लज्जाकी बात क्या होगी?

धर्मका प्रश्न बहुत भ्रान्त है। श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—धर्म क्या है और क्या नहीं है इस विषय पर अच्छों अच्छोंकी अक्ल चकरा जाती है। लोग धर्म करने काशी प्रयाग जाते हैं। कोई गयामें सिर मुँडाता है। कोई व्रत उपवास करता है। कोई पशु-बलि देता है। कोई धर्मशाला मन्दिर बनाता है। कोई पूजा-पाठ, जप-तप, करता है। अनेकों प्रकार हैं, पर मैं यह कहता हूं कि यह सब धर्म नहीं हैं।

भूखोंको अन्न, प्यासोंको जल, नंगोंको वस्त्र, रोगीको औषध, असहायको सहाय देना—यह हमारे मनुष्य-योनिका साधारण कर्तव्य है, यह हम पर सामाजिक कृपा है और उसे अपनी शक्ति भर पालन करके हम किसी पर कुछ अहसान नहीं कर रहे हैं, न वह धर्म ही है।

अच्छा कल्पना कीजिये कि आपने गर्मीमें प्याऊ लगवाई है। आप कहते हैं कि वह धर्म है। अब उस प्याऊ पर कोई प्रतिष्ठित पुरुष आकर पानी पीता है तो क्या वह तुम्हारा धर्मादा खाता है? जरा उसके मुँह पर कह देखिये तो मजा आ जाय। मैंने देखा है गर्मीके दिनोंमे यू० पी० के उत्साही सज्जन युवक शीतल पानीसे भरे घड़े कन्धे पर धर स्टेशन पर फिर रहे थे और नम्रता और प्रेम भरे शब्दोंमें सब यात्रियोंको जल पीनेको अनुरोध कर रहे थे। क्या यह धर्म था? तब जिसने वह पानी पीया धर्मादाका पीया यह समझना चाहिए।

तब धर्म क्या है? मनुस्मृति कहती है कि धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, अक्रोध, सत्य ये दस धर्मके लक्षण हैं । मैं कहूँगा कि ये भी धर्मके लक्षण नहीं हैं । ये मनुष्यत्वके चिह्न हैं अथवा इन्हें धर्मकी ओर लेजानेवाले मार्ग कह सकते हैं—यह वास्तवमें धर्मकी सच्ची तारीफ नहीं हुई ।

क्या सर्वत्र अहिंसा धर्म है ? यदि यही बात है तब मेरे एक प्रश्नका कोई उत्तर दे कि एक सिपाही युद्धमें हजारों मनुष्योंको मार कर भी हत्यारा तथा अधर्मी नहीं कहाता और मैं चींटी मार देने पर भी हत्यारा और पापी कहा जाऊँगा, यह क्यों

फिर तो अपराधीको फाँसी देनेवाला जज आदि सभी पापी हो जावेंगे । परन्तु नहीं, कारण और अर्थ देखने पर कभी हत्या भी धर्म है और कभी अधर्म ।

उसी प्रकार सत्यकी बात लीजिये । कल्पना कीजिये कि रातको एक चोर आपकी छाती पर चढ बैठा । उसने कहा कि रख दो जो पासमें है, आपके पास जाहिरा दो हजार रुपये थे, पर गुप्त १० हजार रक्खे थे । चूँकि आपको सत्य बोलना था, आपने वे दश हजार भी चोरको बता दिये । अब विचारिये कि एक तो वह झूठ था जिसमे असली मालिकको लाभ और चोरको हानि थी और एक वह सत्य है जिसमें चोरको लाभ और मालिकको हानि है । ऐसी दशामें मैं यह पूछता हूँ कि धर्म क्या है ? सत्य या झूठ ? यदि सत्य धर्म है तो वह धर्म नहीं है जो पापियोंको लाभ पहुँचावे और सज्जनोंको नाश करे । धर्मके विषयमें तो यही कहा गया है कि धर्म सदा पापीका नाश और धर्मात्माओंकी रक्षा करता है । ऐसी दशामे झूठ भी धर्म है ।

तब धर्मकी तारीफ क्या हुई। धर्म किसे कह सकते हैं यह भी सोचना चाहिए । इसका उत्तर दर्शन शास्त्रोंमे है । गौतम ऋषि कहते हैं—' यतोऽभ्युदयनिश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः ' । जिस कामके करनेसे अभ्युदय और निश्रेयसकी सिद्धि हो वह धर्म है । अब यह देखना है कि अभ्युदय और निश्रेयसके क्या अर्थ हैं ।

अभ्युदयका संक्षिप्त किन्तु सच्चा अर्थ है ऐहिलौकिक सर्वोच्च सुख । और वह सुख यही हो सकता है कि मनुष्यत्वके सामाजिक और व्यक्तिगत अधिकारोंकी स्वाधीनता और क्षमताकी प्राप्ति । निश्रेयसका अर्थ है मोक्ष अर्थात् पार-लौकिक सर्वोच्च आनन्द । जो कि अभ्युदयकी पूर्ण प्राप्ति कर जीवनके निर्बन्ध होनेके कारण होवेहीगा ।

जो पुरुष अभ्युदय और निश्रेयस दोनोंकी समान भागसे प्राप्ति करेगा वही धर्मात्मा कहावेगा।

यहाँ एक बात ध्यानमें रखनेकी है। संसारमें बडे बडे ऋषि हुए, परन्तु किसीने अपनेको धर्म-संस्थापक कहनेका साहस नहीं किया। वे सत्यवक्ता, धैर्यवान्, मनस्वी, दमनशील आदि सब कुछ थे। किन्तु कृष्णने अपनेको निस्संकोच भावसे धर्म-संस्थापक कह कर घोषणा की है। किस लिये? लोग कहते हैं कि वे ईश्वर थे। मैं कहता हूं नहीं। इसमें ईश्वरत्वकी कोई बात नहीं है। वे वास्तवमें धर्मात्मा थे और धर्मको उन्होंने ठीक समझा था। एक तरफ अभ्युदयमें वे इतने आदर्श थे कि महाभारत जैसे अमर युद्धके नेता और जबर्दस्त राष्ट्र-निर्माता, साथ ही इतने मस्त और मौजी कि आनन्दकन्दकी अमर पदवी उन्होंने प्राप्त की। दूसरी तरफ ऐसे भारी योगी कि जिनको योगियोंने ध्येय बनाया। यही पुरुष थे जिन्होंने अभ्युदय और निश्रेयस दोनोंकी प्राप्ति की थी। इसीसे ये धर्म-संस्थापक स्वीकार किये गये। वैरागी ऋषि लोग पूरे पूरे धर्मात्मा नहीं हैं, क्योंकि उनमें इतनी क्षमता न थी कि ऐहिक लौकिक सर्वोच्च सुखोंको भोगते भोगते कृष्णकी तरह निश्रेयस सिद्धि करते। उन्हें विरक्त होना पडा। साथ ही वे लोग भी धर्मात्मा नहीं हैं जो संसारके सुखोंमें डूब कर परलोकका चिन्तन नहीं करते हैं।

धर्मात्मा वे हैं जो संसारमें रह कर, संसारकी यातनाओंको नाश करके, संसारके लिये सुख, कल्याण, शान्ति और आनन्दके मार्ग निर्माण करते हुए साथ ही अपनी आत्माके कल्याणके लिये मुक्तिके साधन भी ढूँढ लेते हैं। यही सच्चा धर्म है जो बहुत गहन, बडा दुर्धर्ष और अत्यधिक विषम है।

हम ईश्वरका भय करें, पापसे बचें, स्वार्थको त्यागें, दया, प्रेम, वीरता और आत्मशक्तिका अभ्यास करें और तब लोक-सुखकी चाहना करें यही सत्य धर्म है।

यह धनका काल है। यहाँ तक धनका महात्म्य बढ गया है कि प्राचीन कालमें जो राज्य-शासन तलवार पर होता था आज धन पर है। कालीदासने दिलीपकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उसकी सेना आदि तो दिखानेकी चीजें थीं। वास्तवमें राज्य-संचालनके योग्य तो उसके पास दो वस्तु थीं—चढा हुआ धनुष और दूसरी तीव्र बुद्धि। आज चढा हुआ धनुष कुछ काम का नहीं है, तीव्र बुद्धि अब भी दरकार है, किन्तु चढ़े हुए धनुषके स्थान पर भरा हुआ खजाना चाहिए।

यह वात तो स्पष्ट ही है कि असहयोगका युद्ध वर्तमान शासन-पद्धतिको नाश करनेके लिये है। कल्पना करिये कि यह पद्धति नाश कर दी गई तव कोई दूसरी पद्धति वनाई जावेगी और वह एक प्रकारसे भारतकी शासन-पद्धति कहावेगी और वह उसी दलके हाथमें रहेगी जो असहयोगी है। तब शासन चलानेके लिये कमसे कम इतना रुपया उसके पास अवश्य होना चाहिए जितना गवर्नमेन्टके पास है, वरना सव व्यर्थ होगा। उसकी शिकायत है कि ॲगरेजी शासनमे खाद्य पदार्थोंकी भयकर मँहगाई है और यह उसका प्रधान कर्तव्य होगा कि वह इस मँहगाईका नाश करे। इसके लिये खाद्य पदार्थोंका विदेश गमन रोकना, उसका सट्टेका व्यापार वन्द करना और उसकी पैदावार वढ़ाना इत्यादि कार्योंमे भयकर रुपये खर्च करनेकी आवश्यकता पड़ेगी। यहाँ तक सम्भव है कि उसे अपना भाव चलानेके लिये निजू दूकाने खुलवानी पड़ें।

दूसरी वात शिल्प और कपड़ोंकी है जिसके विना भारत एक दिन भी अव जी नहीं सकता और शासक मण्डलको उसे पुनर्जीवित करने और आवश्यकताओंको पूरा करनेको असंख्य रुपये चाहिए।

तीसरी वात किसानोंके उद्धारकी है। इस समय किसानोंका ऋण कई करोड़ रुपये हैं जो तत्काल चुका देना चाहिए। क्योंकि वह उनके लिये भयंकर घातक विषके समान है।

इसके पीछे शिक्षाकी वात है जिसके विषयमे गोखलेने जन्मभर दॉत निकाल कर ॲगरेजी सरकारसे भिक्षा मॉगी, पर न मिली। यह भी करोडोंके खर्चेकी वात है।

फिर स्त्रियोंकी दशा और नवीन उद्योग-धन्धोंकी योजनाका प्रश्न है जिनके विना देशके लुच्चे-लफंगे, निठल्ले किसी तरह धन्धोंसे नहीं लग सकते हैं।

सवके वाद शासनकी व्यवस्था है। अदालतें वनाना, न्याय करना, शान्ति स्थापन करना आदि आदि। अव पाठक अनुमान करें कि कितना रुपया चाहिए और वह विना मिले तमाम मरना खपना व्यर्थ है।

यह स्वराज्य-सिद्धिका प्रश्न है, खिलौना नहीं है। चार आनेकी गॉधी टोपी पहन लेनेसे देशका उद्धार नहीं होगा। जो जितने महत्त्वका प्रश्न है उसे उसी दृष्टिसे देखना और उसकी ठीक ठीक व्यवस्था करना यह हमारा गम्भीर उत्तरदायित्व-पूर्ण कर्तव्य है जिसे न पालने पर हमारा सर्वनाश होगा।

मैं यह कहूँगा जिसमें परोपकार हो वह धर्म है । देश-सेवा सबसे बड़ा परोपकार है । मनुष्य अपने दारिद्रकी परवा न कर उसकी भेटमे शक्ति भर दे रहे हैं तब धर्मका पैसा तो वास्तवमें उसीकी सम्पत्ति है यह उसे पाई पाई मिलना ही चाहिए ।

बडे बडे मन्दिरोंमें लाखों करोडोंकी सम्पत्ति और आमदनी है। बडी बडी दरगाहोंके महन्त राजाओंकी तरह रहते हैं । मैं यह पूछनेका साहस करता हूँ कि धर्मकी कमाईके ये लोग स्वाधीन स्वामी बननेका क्या अधिकार रखते हैं । ये देवताके सेवक वीतराग पुरुष होने चाहिए। परन्तु अतुल सम्पत्तिके स्वामी होनेके कारण इनमें बहुत करके भयकर दोप उत्पन्न हो गये हैं। जिनका वर्णन मैं नहीं करना चाहता हूँ। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इनकी रत्ती रत्ती सम्पत्ति और आय इस समय देशके समर्पण होनी चाहिए—ये लोग केवल देवताके भोगका उच्छिष्ट खानेका ही अधिकार रखते हैं।

मन्दिरों और दर्गाहोंमें जाकर उनमें लोगोंकी भक्ति, अन्ध विश्वास, प्रेम और त्याग देखता हूँ तो मेरी छाती फट जाती है । मैं यह सोचा करता हूँ—ये महन्तगण यदि हमारे हाथ आ जायँ, गान्धीके हृदयके रक्तकी एक बूँद भी यदि इनके हृदयमे प्रवेश कर जाय तो उसी दिन फतह है—अरबों रुपयेके ढेरके साथ साथ तीस करोड हृदय एक क्षणभरमें मन-वचन-कर्मसे देशके चरणोंमें झुक जायँ। पर मैं देखता हूँ कि अधिकाशमे ये लोग विलासी, मूर्ख, अनाचारी, पाखण्डी और स्वार्थी हैं। पर प्रत्येक मनुष्यका धर्म है कि इनके कब्जेमें गई सम्पत्तिको जो वास्तवमें धर्मकी सम्पत्ति है, धर्मके ऊपर लगानी चाहिए और वह धर्म देश-सेवा है ।

इसके साथ ही मैं पाप-कमाईको भी जोड़ता हूँ। मेरा मतलब ठग, चोर, सट्टेबाज, सूदखोर और वेश्याओंसे है । इन भाई-बहनोंको यह अधर्मोपार्जित धन रत्ती रत्ती करके देशके चरणोमें देकर अनुताप करके अपनी आत्माका बोझ इसी मनुष्य जन्ममें उतार देना चाहिए ।

संसार क्षणभगुर है और मनुष्य अनाचारसे कभी सुखी नहीं हुआ । परोपकारके लिये शरीरकी बोटियाँ कटानेमें जो मजा आता है वह मजा स्वार्थके लिये किसी भी भोगको भोगनेमें नहीं आता है ।

वीर प्रतापके मन्त्री वैश्य भामाशाहने ऐसी ही आपत्तिके समय अपनी समस्त सम्पत्ति प्रतापके चरणोंमे रख दी थी। और उसीसे मेवाडका उद्धार हुआ। नाम अमर रहा। न प्रताप रहे, न भामाशाह, न वह सम्पत्ति।

महाप्रभु बुद्ध भगवानके जीवनमे एक पवित्र किन्तु तेजोमयी घटनाका वर्णन है। "गौतम वैशालीमें आये जो कि गंगाके उत्तर प्रवल लिच्छवि लोगोंकी राजधानी है। वे अम्वपाली नामक एक वेश्याकी आमकी वाडीमें ठहरे। जव उस वेश्याको मालूम हुआ तो वह उनकी सेवामें गई और उन्हे भोजनके लिये निमन्त्रित किया। गौतमने उसका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

"अव वैशालीके लिच्छवि लोगोंने सुना कि बुद्ध वैशालीमें आये हैं और अम्व-पालीकी वाडीमें ठहरे हैं। उन लोगोंने वहुतसी सुन्दर गाडियॉ तैयार कराई और उन पर वैठ कर वे वहॉ गये। उनमे कुछ काले रंगके कुछ सफेद रंगके उज्ज्वल वस्त्र पहने हुए थे। कुछ लोग लाल थे और लाल रंगके वस्त्र तथा आभूषण पहने हुए थे

"और अम्वपाली युवा लिच्छवियोंके वरावर, उनके पहियेके वरावर अपना पहिया और उनके धुरेके वरावर अपना धुरा और उनके जोतेके वरावर अपना जोता किये हुए रथ हॉक रही थी। लिच्छवि लोगोंने अम्वपाली वेश्यासे पूछा कि अम्वपाली! यह क्या बात है कि तू हम लोगोंके वरावर रथ हॉक रही है?

उसने उत्तर दिया—" मेरे प्रभु! मैंने बुद्ध और उसके साथियोको कल भोजनके लिये निमन्त्रित किया है। "

उन लोगोंने कहा—" हे अम्वपाली! हम लोगोंसे एक लाख रुपया ले ले और यह भोजन हमें कराने दे। "

वेश्याने कहा—" मेरे प्रभु! यदि आप मुझे सव वैशाली तथा उसके अधीनका राज्य दे दें तव भी मैं ऐसा कीर्तिका जेवनार नहीं वेचूँगी। " तव लिच्छवि लोगोंने यह कह कर हाथ पटके कि हम लोग इस अम्वपालीसे हरा दिये गये—यह हमसे वढ गई। और यह कह कर वे वाडी तक गये।

" वहाँ उन लोगोंने गौतमको देखा और कलके लिये निमन्त्रण दिया। परन्तु बुद्धने उत्तर दिया कि "हे लिच्छवियो, मैंने कलको अम्वपालीका भोजन स्वीकार कर लिया है। " अम्वपालीने उन्हें और उनके साथियोको मीठे चावल, चपातियाँ आदि खिलाई और सेवामें खडी रही। यहॉ तक कि भगवानने कहा—" वस अव नहीं

खा सकते। और तव उसको शिक्षा और उपदेश किया। अम्बपालीने कहा—हे प्रभु! मैं यह महल और सम्पत्ति भिक्षुओके लिये देती हूँ जिसका कि नायक वुद्ध है।" और वह दान स्वीकार किया गया।

इस पवित्र कथाको मैंने जव जव पढा तभी तव रो दिया। वेचारी अभागिनी अवलाएँ जन्मसे लाचार करके पुरुष-पशुओंकी लोलुप लालसाको तृप्त करनेको पतनके मार्गमें ढकेल दी जाती हैं और समाजकी सवसे अधिक घृणाकी वस्तु होती हैं। महाप्रभु वुद्धके इस आचारसे अधिक धार्मिक और उदाहरण मैं क्या दूँ? मैं केवल उन भाइयोसे जिनका दुर्भाग्यसे वेश्याओंसे सम्वन्ध है, यह अपील करता हूँ कि वे जैसे वने उन्हें अम्वपालीके अनुकरण करनेको तैयार करें। इससे अव तकके समस्त पापोका उत्तम प्रायश्चित्त हो जायगा।

अन्तमें मैं माफ साफ यह कह देता हूँ कि इस अध्यायमें दानके लिये जिनसे विनती की गई है वे अपने सर्वस्वके सिवा अपनी कमाईका कुछ अंश दें और अपनी पाप-कमाई जारी रक्खें अथवा धर्मादावाले सर्वस्व न दें तो उस दानका देनेवाला और लेनेवाला दोनो पापी हैं।

सातवाँ उपाय—स्त्रियोंका उत्सर्ग।

शास्त्रोंमें लिखा है कि कोई भी महायज्ञ विना स्त्रीके सम्पूर्ण नहीं होता है। ब्राह्मण ग्रन्थोंको देखनेसे यह भी प्रतीत होता है कि जितने महायज्ञ होते थे वे किसी व्यक्तिगत स्वार्थकी कामनासे नहीं होते थे। वर्तमान असहयोग महायज्ञ भी विना स्त्रियोंकी सहायताके पूर्ण नहीं हो सकता है।

भारतकी स्त्रियाँ उत्सर्गके नाम पर सदा ससारमे अग्रसर रही हैं। हँसते हँसते विश्वध्वंसिनी ज्वालाको आलिंगन करनेसे वढकर कोई भी उत्सर्ग देखनेको नहीं मिला। जव राजपूतानेकी आन पर आ वनी थी और राजपूत वच्चोको अपनी तल्वारके जौहर दिखानेके अवसर आये थे उस समय स्त्रियोने न केवल पति-पुत्रोको सहर्ष विसर्जन किया था प्रत्युत वही यशस्वी तलवार लेकर वीर नरोका अनुसरण भी किया था। क्या भारतसे स्त्रियोका वह गौरव नष्ट हो गया है? ऐसी हमें आशा नहीं है। ईश्वर न करे कि ऐसा हो।

यह मैं मानता हूँ कि वीरत्वको फाँसी लग गई। तलवारकी धारमें जग लग गया। साथ ही स्त्रियाँ भी विलासकी सामग्री, पैरकी जूती, मोलकी वाँदी, व्यभिचारकी माध्यम और वच्चे (सन्तान नहीं) वनानेकी मशीन वना दी गई हैं।

और यह भी सच है कि बाल-विवाह, वैधव्य, अशिक्षा, आदर्श-हीन जीवन और पराधीनताने उनकी नस्लका विध्वस कर दिया है, पर यह मुझे भरोसा नहीं होता कि इतनी जलदी उनके हृदयका तेज—मनका साहस—आत्माकी स्वच्छता भी नष्ट हो गई होगी। इसी लिये मैं यह कामना करता हूँ कि स्त्रियोंको वीरता तथा धैर्य-पूर्वक इस महायज्ञमें भाग लेना चाहिए। और इस विशाल अश्वमेधका जो सबसे प्रथम घोड़ा—स्वदेशी आन्दोलन—छोड़ा गया है और जिसके पीछे चर्खेका चक्र रक्षा करनेको नियत कर दिया है उसमें वे पूरी पूरी सहायता करें और पुण्य तथा अखण्ड नाम प्राप्त करें।

मुझे यह मालूम है कि कुछ जैन्टिलमैन बैरिष्टर बनने विलायत गये थे। वहाँ उनका रहन-सहन, बातचीत-व्यवहार सब अँगरेजीका था; यहाँ तक कि वे अपने पिता-मित्र आदिको भी अँगरेजीमें ही पत्र लिखते थे। परन्तु एक शक्ति थी जो उन्हें बारंबार अपनी जातीयताका परिचय देती थी। वह थी उनकी स्त्री जिन्हें उनको पवित्र हिन्दीमें ही पत्र लिखना पड़ता था।

स्त्रियोंमे इतना बल और योग्यता है कि कोई भी पुरुष उनके सामने झुकेगा। विलायतमें बैठे साहबको हिन्दी लिखनेको जो स्त्री मजबूर कर सकती है उसने हिन्दी-साहित्य पर मूर्ख होने पर भी क्या कुछ अहसान न किये।

मुझे यह देख कर खेद होता है कि पुरुषोंने गाढ़ा पहनना शुरू कर दिया है। रंग-विरंगे मैलखोरे वस्त्रोंके स्थान पर उनके शरीर पर धवल यशकी तरह स्वच्छ गाढा सुशोभित है, पर उनकी स्त्रियाँ वही अपवित्र विदेशी वस्त्र पहन रही हैं। पुरुष बहुतसे बहुत बढिया पोशाक १००) रु० में तैयार करा सकता है, परन्तु स्त्रियोकी एक एक पौशाकमे हजारों लगते हैं। ऐसी दशामें स्त्रियाँ यदि बराबर विदेशी वस्त्र खरीदती गईं तो पुरुषोका गाढा पहनना व्यर्थ ही है।

यह मै स्वीकार करूँगा कि वह भद्दा और असुविधा-जनक होगा। परन्तु यहाँ प्रश्न एक तो आदर्शका है—यदि बडे घरकी बहू-बेटियाँ स्वच्छ गाढा पहनेंगी तो उनको आदर्श मान कर सैकडो छोटी श्रेणीकी स्त्रियाँ वही वस्त्र पहनेंगी। क्या इसका पुण्य उन्हें न मिलेगा?

दूसरे जब तक विदेशी मालकी बिक्री एकदम न बन्द हो जायगी तब तक यूरोपका गर्व असुर कभी नम्र न पडेगा।

में ऐसी स्त्रियोंको जानता हूँ कि जो वडी श्रीमन्त थीं, पर जिन्होने वीरता-पूर्वक अपने हीरेके जेवर और बहुमूल्य वस्त्र नष्ट कर दिये और वे गाढा पहनती हैं।

यह एक वहुत ही साधारण वात है जिसे प्रत्येक स्त्री सरलतासे पालन कर सकती है। परन्तु इससे अधिक कार्य उन्हें करना है जिसके लिये मैं उनसे विनय-पूर्वक अनुरोध करूँगा। मैं यह चाहता हूँ कि जिनके पति विदेशी वस्त्र पहनें, सरकारी उपाधि रक्खें या और कोई ऐसा कार्य करें जो उन्हें असहयोगके खयालसे नहीं करना चाहिए तो प्रत्येक स्त्रीका कर्तव्य है कि वह अपने पतिसे असहयोग करे, वैसा ही जैसा प्राय मायके जानेको या जेवर साडी लानेको अथवा छोटेसे वेटेका व्याह करनेको किया जाता है। पहले मौन कोप करे, स्मरण रहे यह सबसे वडा उपदेश, सबसे वडा वल और सबसे वडा अस्त्र है। इसके वाद घरके कुल काम करनेसे इन्कार कर दे। और आवश्यकता होने पर अन्न-जलका त्याग करे; चाहे प्राणान्त हो जाय, कुछ परवा नहीं।

पीछे किसी अध्यायमे मैं जोधपुरकी तेजस्वी रानीका तथा और कई उदाहरण दे आया हूँ कि उन्होंने अपने अपने पतियोंको अपकीर्तिसे वचानेके लिये कितना तीव्र उपाय उपलब्ध किया था।

कोई भी स्त्री पुरुषकी गुलाम नहीं है कि वह उसकी आज्ञा, इच्छा तथा अत्याचार-को चुपचाप स्वीकार करे। और न कोई धर्मपत्नी जिसने वेदमन्त्रोंकी साक्षीसे पवित्र वैवाहिक वन्धन जोडा है, अपने पतिकी वेश्या ही है कि वह दिन-रात शृंगार किये उसके भोगकी सामग्री वनी रहे।

प्रत्येक स्त्री गृहणी है, घरकी स्वामिनी है। जिस पुरुषने वेद और ईश्वरको साक्षी देकर उसका हाथ पकडा है—उसे अर्द्धाङ्गिनी वनाया है—उसके सर्वस्वमे वह वरावरकी अधिकारिणी है। वे स्त्रियाँ अवश्य निन्दाके योग्य हैं जो चुपचाप पतिका अत्याचार और तिरस्कार सहती है। कसाइयोंका कसूर नहीं है, कसूर गायोंका है कि उन्होंने अपने सिर पर लम्वे लम्वे सींग रख कर भी गर्दन छुरीके नीचे झुका दी। कोई ऐसा कसाई नहीं पैदा हुआ जिसने सिंहका शिकार किया हो, क्योंकि वह वीरता-पूर्वक गर्दन ऊँची करके युद्धके लिये तैयार रहता है। गाय, वकरियोंने गर्दन झुका झुका कर कसाई पैदा किये हैं। स्त्रियोंने भी पुरुषोंके अत्याचार सहना धर्म मान कर अपना सर्वनाश किया है। यद्यपि सत्याग्रह और

असहयोग यह कहता है कि अत्याचार सहना चाहिए, परन्तु इसमे विचारनेकी बात यह है कि यह समझना चाहिए कि यह अत्याचार अन्याय है और उसे नहीं करना चाहिए था। ऐसी दशा स्त्रियोंकी नहीं है, वे अत्याचार सहती हैं। आप मुँह बाँध कर बंद रहती हैं और समझती हैं हमें ऐसा ही रहना चाहिए। पुरुष अनेकों ब्याह तो करते ही हैं साथ ही व्यभिचार भी करते हैं। स्त्रियाँ कहती हैं ऐसा तो होता ही है, पुरुष यह सब कर सकता है। विधवा आजन्म ब्रह्मचारिणी और वैरागिनी रहे, स्त्री समझती है ऐसा होना ही चाहिए। गरज स्त्रियाँ अपने ऊपर किये गये अत्याचारोंको अनीति न मान कर नीति मान कर सहती हैं और वह वास्तवमें निन्दनीय है। और यही कारण है कि पुरुष स्त्रियो पर अत्याचार करनेका साहसी हो गया है।

वरना यह अखण्डनीय है कि अत्याचारको अत्याचार अनीति समझ कर और अत्याचारीको बारबार इसकी चेतावनी देकर यदि अत्याचार सहा जायगा तो वह अत्याचारको नाश करेगा। मैं वैसे ही युद्ध या असहयोगके लिये प्रत्येक बहनसे अनुरोध करता हूँ।

इसके साथ ही उन्हें अपनी सभा बनानी चाहिए। कांग्रेसमे अपना भाग लेना चाहिए और आगे आनेवाली भयकर विपदमे जो प्रत्येक देशके सच्चे पूत पर आनेवाली है, सती स्त्रियोंकी तरह पतिका साथ देनेको तैयार और सज्जित हो जाना चाहिए। और अपना अचल सौभाग्य माता वसुन्धराके चरणोंमे विसर्जन कर देना चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय।

सफलताका रहस्य।

साधारण दृष्टि और बुद्धिवाला पुरुष हमारे इस अद्भुत युद्धकी सफलता पर विश्वास नहीं कर सकता। परन्तु हम निश्चय सफलता प्राप्त करेंगे ऐसा हमें विश्वास है। इस सफलतामें एक रहस्य है—एक गुरुमन्त्र है, या यों कहना चाहिए कि एक कुंजी है जिसके बिना विजय असम्भव है। इस अध्यायमें हम उसी कुंजीका जिक्र करेंगे जो बहुत ध्यानसे समझनेकी वस्तु है।

हमारा युद्ध सरकारसे है। प्रत्येक अच्छे योद्धाको यह वात सोच लेना परमावस्यक है कि अपना और शत्रुका वलावल क्या है। यह एक नीतिकी मर्यादा है। शत्रुके वलावलको देखनेके लिये—उनकी कितनी सेना है, कितनी युद्ध सामग्री है, कितना आयोजन और तैयारियाँ हैं यह सव जाननेको—नीतिज्ञ लोग गुप्त दूत रखने तककी आज्ञा देते हैं। परन्तु हम जिस शक्तिसे लड़ रहे हैं उसका वल हम पर प्रकट है। हमें इसके लिये गुप्त अनुसन्धानकी जरूरत नहीं है। हमें केवल अपने वलसे शत्रुके वलका मुकाविला करना है। हमें यह देखना है कि शत्रुकी कौनसी चाल और चोट हमें गिरा सकती है और हम उसका क्या निराकरण कर सकते हैं और हम शत्रुको किस चालसे हरा सकते हैं। अव वलावलका विचार ऐसा है।

हम इस प्रकार हमला कर सकते हैं—

१—उसकी शिक्षा त्याग दें।

२—उसकी कौन्सिल और सम्मान त्याग दें।

३—उसे टैक्स न दें।

४—उसके अन्याय-मूलक कानून न मानें।

५—जिन व्यापारोंसे उसका स्वार्थ है उसे नष्ट कर दें।

६—उसका न्याय छोड दें।

७—पंचायत वनावें।

८—स्वदेशी वस्तु ग्रहण करें।

९— अपने जीवनोंको ऐसा वनावें कि सरकारकी सहायताकी मुँहताजी न वनी रहे।

सरकारके पास इतने शस्त्र हैं—

१—जेल,

२—राजनैतिक छल-पूर्ण कानून,

३—तलवार।

अव इसमें एक वात विचारनेकी है कि सरकार कोई प्रकट स्वेच्छाचार करनेवाली संस्था नहीं है। अपने शस्त्रोंको हाथमें रहते हुए भी अनियममें प्रयोग नहीं कर सकती। यही हमारे लिये सफलताका रहस्य है और इसी लिये हम अन्तमें जीतेंगे भी। १।२।३।८। और ९ नम्वरके हमारे कार्य ऐसे हैं कि सरकार हमारी इन चोटोंको अपने तीनोंमेंसे किसी भी शस्त्रसे वन्द नहीं कर

सकती है। ५ वाँ और ६ ठा प्रकार ऐसा है कि उसके लिये कुछ छल-पूर्ण कानून निकाल कर रूपान्तरसे कोई शस्त्र (जेल आदि) काममें लाया जा सकता है। पर बहुत ही साधारण और यदि समझदारीसे अपनी मार मारी गई तो कदापि सरकार उसे रोक नहीं सकती। अब रहे ३ रा और ४ था काम, ये जोखिम-पूर्ण हैं। लेकिन सरकार इन पर केवल प्रथमके दो शस्त्र चला सकती है। तीसरा शस्त्र हरगिज नहीं चला सकती, यदि पूर्ण सावधानीसे हम अपना काम करें। यहाँ यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि प्रथमके दोनों शस्त्र बहुत ही साधारण और छिछोरे हैं और उनके प्रति हमारा केवल भय ही भय है। ये वास्तवमें डरानेके खिलौने हैं, सो उक्त ३ रा और ४ था मोर्चा जमाते ही दोनों शस्त्र हम पर पड़ेंगे, पर मैं विश्वास-पूर्वक कहता हूँ कि उनसे हमारी क्षति रत्ती भर न होगी। और सरकार शीघ्र समझ लेगी कि ये शस्त्र बहुत तुच्छ और व्यर्थ हैं।

परन्तु तीसरा शस्त्र भयकर है। उसे यदि सरकार निकाल कर प्रयोग कर सके तो खेद-जनक परिणाम होगा—और यहाँ तक सम्भावना है कि हमारा नाश भी हो जाय। पर सबसे मार्केकी बात ऊपर हम कह आये हैं कि सरकार स्वेच्छासे कभी इन हथियारोंको प्रयोग कर ही नहीं सकती, इसका उसे अधिकार नहीं है—क्योंकि वह एक नियामक और नियन्त्रित संस्था है। खास कर पिछले शस्त्रको प्रयोग करनेके लिये तो उसे पूरी पूरी जवाबदेही है। यही हमारी जीतका गुरु-मन्त्र है कि सरकार इस शस्त्रको विना बहाने निकाल नहीं सकती है, यदि हम उसे ऐसा बहाना मिलनेका अवसर न दें तो सरकार तलवार निकाल ही नहीं सकती। और तब हमारी जीत है।

यह बात मैं उदाहरणसे समझा दूँगा। कल्पना करिये कि आपने सरकारी टैक्स देनेसे इन्कार कर दिया। अब सरकार क्या करेगी? नियमसे वह यह कर सकती है—

१—आपको जेल भेज दे।

२—आपका माल कुर्क कर ले।

इससे अधिक कुछ नहीं। उसके पास एक करोड़ तोपें हों और एक लाख हवाई जहाज, पर वह इस कामके लिये इससे अधिक दण्ड दे ही नहीं सकती। इस दण्डको

आप प्रसन्नतासे स्वीकार करिये । विना उज्र जेल जाइये । और हँसते हँसते अपना माल कुर्क होने दीजिये । इसी तरह आपके पडोसी, गाँवके सव लोग करें। वल्के कुल देशके लोग करें । अब मजा आवेगा यहाँ कि अपने आप सरकारका यह शस्त्र टूट कर टुकडे हो जायगा ।

क्यों? यह भी सुनिये । जेल भेजनेका क्या अर्थ है? यही न, कि आपको आपके परिजनसे अलग रक्खा जाय—आपकी स्वच्छन्दता छीन ली जाय—समाजसे अलग कर दिया जाय । पर यह वात तव हो सकती है कि आप अकेले जेल जायँ । अर्थात् जेल जाने योग्य कार्य आप अकेले करें । पर यदि सव करेंगे तो सब ही जेल जावेंगे, वहीं घर वसेगा । सरकारकी इतनी हैसियत नहीं है कि वह सबको रहनेको पक्के घर और भोजन दे। और न सरकार इतनी मूर्ख है कि वह वे-अन्दाज मह-मानोंको घर बुला कर वरात जोडेगी । निदान वह जेल नहीं लेजा सकती । यही हाल कुर्कीका होगा । अकेले आपकी कुर्की होगी तो पास-पडोसी खरीदेंगे । पर जब सभीका माल कुर्क होगा और खरीदेगा कोई नहीं तव क्या सरकार आपके खाट, पीढे, रजाई, विछौने, पोतडे, चक्की सव लेजा कर अपने दफ्तरमें रक्खेगी? असम्भव है, सरकार मुँहके वल गिरेगी—उसकी हार होगी—वह किसी तरह इन हथियारोसे हमें न दवा सकेगी ।

उदाहरणके लिये खेडा जिलेका मामला ताजा है । किसानोंने लगान देनेसे इन्कार कर दिया । सरकारको म० गान्धीने वहुतेरा समझाया, पर सरकार अकड गई । कुर्की जारी हुई । वडा मजा आया । लोग अमीनको बुला बुला कर ले गये कि भाई, जरा महरवानी करके पहले मेरा माल कुर्क कर लो—मै धन्वेसे लगूँ । वेचारे अमीनकी बोली वोलते वोलते बोलती वन्द हो गई, कोई खरीदार नहीं । अन्तमें गरीव किसानोंकी विजय हुई । लगान छोड दिया गया ।

परन्तु यह कार्य वुद्धिमानीसे शान्ति-पूर्वक न किया गया और सरकारको तलवार निकालनेका वहाना मिल गया तो हम हारेंगे । कल्पना करिये कि आपने चुपचाप अपना माल कुर्क न करने दिया, अमीनसे लड वैठे, सिपाईको मार वैठे, फौजदारी हो गई । इतना वहाना वहुत है । विद्रोह कह कर वरावर फौजकी गोलीसे आप भून दिये जावेंगे ।

कर्तव्य यह है कि शान्ति और नियममें काम हो तो अन्त तक सरकार तलवार न निकाल सकेगी । यह मशहूर था कि अँगरेज लहरों पर हुकूमत करते है, अँगरेज

दें। मुझे आशा है कि इसमें सफलता होगी। और यह निन्दनीय तथा कलंक-पूर्ण चेष्टाएँ भारतमें न होगी। दूसरे लोग तलवारवाले हैं। मुझे भय है कि यह दल अपने तेजकी आनको वडी वे-सब्रीसे छातीमें छिपाये हुए है। और यदि म० गान्धीका प्रयत्न सफल न हुआ तो यह दल आँधी और तूफानकी तरह खुली क्रान्ति करके देशके राजनैतिक आन्दोलनका मुख्य नेता वन जावेगा। मैं इसे पूर्ण भयप्रद और अज्ञान-पूर्ण पद्धति समझता हूँ। गान्धीके असहयोगके सर्वथा विफल होने पर भले ही देशका भाग्य इस दलके हाथ जाय उस समय देश कटे मरेगा तो मैं उसके लिये चिन्तित नहीं हूँ। हमें सच्चे वीरकी तरह तलवार निंकाल कर इनकी सहायताको भी तैयार रहना ही चाहिए। परन्तु इस समय तो मेरा कहना यह है कि इस समय यह दल यदि असहयोगके कार्य-क्रमको अधैर्य या अश्रद्धासे देखे और उसके वल वढानेमें सहायता न दे तो यह अपने काममें एक वडी भारी क्षतिकी बात होगी। और यदि वह हमारी अपेक्षा न करके तलवार लेकर सरकारके सामने खड़ा हो जाय तब तो उसका यह अर्थ होगा कि असहयोगसे ही उसने युद्ध ठान दिया है। क्योंकि इससे निश्चय असहयोगका अपघात होगा। असहयोगके लिये पूर्ण वीतरागता जरूरी है।

तीसरे नर्मदलके सज्जनोंकी है जिन्हें सरकारसे आशा है। खेदकी वात है कि ये कर्मठ भाई वरावर असफल और अपमानित होने पर भी अपनी तेज-हीनताका परिचय दे रहे हैं। यद्यपि इनका चाहे जितना वल वढे ये कभी अपने मार्गमें वाधक और भयंकर नहीं हो सकते। परन्तु इनकी शक्तिके मिल जानेसे असहयोग पक्ष सबल अवश्य हो जायगा। यह वात है जिसके लिये इन सुयोग्य भाइयोंको हमें अपने साथ लेना आवश्यक है और हमें साथ लेना ही चाहिए। ये लोग यदि कौन्सिलमें जायँ तो हम यह शंका नहीं करते कि वे भारतके हितके विरुद्ध करेंगे। ये वरावर अपनी पद्धति पर भारतके हितकी चेष्टा करते ही हैं। पर इसमें हानिकी वात एक तो यह है कि उन्हें राजभक्तिकी शपथ खानी पडती है और कानूनको मान्य करना पडता है। असहयोगी इन शपथोंको त्रुटि-पूर्ण समझता है—वह राजाके अत्याचारी होने पर राजाका विरोध और कानुनके अन्याय-मूलक होने पर कानूनका विरोध करना अपना धर्म समझता है।

ऐसी दशामें असहयोग अपने धर्मका पालन करता हुआ ऐसी दशामें आ सकता कि कौन्सिल उसका विरोध करे, कानून उसे रोके और उस रोकनेमें सभी सद-

स्योकी जिम्मेदारी हो सकती है—चाहे वे उस समय विरुद्ध पक्षमें ही क्यों न हों। यह एक ऐसी पेचीली परिस्थितिको ले आनेवाली वात हो सकती है कि आगे चल कर इससे अपना जातीय संगठन और विश्वास नष्ट हो सकता है।

चौथी मण्डली रायवहादुरों आदिकी है। इन्हींमें राजा लोग भी शरीक हैं। इन्हें हलुवेसे भी अधिक नर्म जो स्वेच्छाचारिताके अधिकार मिले हुए हैं उनके कारण ये आन्दोलनसे घवराते हैं। ये पोतड़ोंके अमीर डपट कर काम करानेके अभ्यस्त कव मनुष्यके अधिकारों पर उदार दृष्टि रख सकते हैं? पर ये असहयोगकी विपात्तियाँ हैं—इन्हें जरा जवरदस्ती करके साथ लेना पड़ेगा। ये वड़े हैं—अच्छी तरह तले विना कामके नहीं होते। हमें इनके तलनेकी व्यवस्था करनी ही होगी। यह असम्भव है कि "जान झोंके यार लोग और माल चीरे वीवी भटियारी।" हम मरें, जेल जायँ फाँसी पावें, दिन-रात पसीना वहावें और ये सज्जन गुदगुदे तकियो पर पड़े रहें। यह असम्भव है, पर ये वहादुर लोग विना परास्त किये कब्जेमें न आवेंगे—इन्हे भी हमें उसी नीतिसे परास्त करना होगा जिससे कि सरकारको करना चाहते हैं।

अव इन सवके पीछे एक और जवरदस्त दल है जिसे मिलाने पर हमारा युद्ध सफल होगा। वे सरकारके वेतनभोगी नोकर हैं। रेलके कर्मचारी, अदालतके कर्मचारी, पुलिसके कर्मचारी, सेनाके लोग और दूसरे महकमेके लोगोंको जव तक असहयोगमे पूरा पूरा सम्मिलित नहीं किया जायगा असहयोग कमजोर वना रहेगा। गान्धीजीका कहना तो यही है कि विना हमारी सहायताके अँगरेज हम पर हूकूमत ऐसे स्वेच्छाचारसे नहीं कर सकते हैं। वात सच है, पंजावके अत्याचारके समय देशी पुलिसने—देसी फौजने—देशी भाइयोंने—ही प्रजा पर घृणित अत्याचार किये! क्या विना निम्न कर्मचारियोंके कोई भी आफिस दफ्तर चल सकता है। वास्तवमें हमारे सहयोगके विना अँगरेज एक क्षण भी हम पर स्वेच्छाचार नहीं कर सकते हैं। सच्चा असहयोगका स्वरूप उसी समय वनेगा जव देशका एक भी वच्चा सरकारके पैसेसे कोई सरोकार न रक्खेगा। हम सरकारकी प्रजा वननेको मजबूर किये गये हैं न कि नौकर वननेको। नौकरीको हम चाहे जव छोड़ सकते हैं, यह कानूनन कोई जुर्म नहीं। नौकरी छोड़ते ही हम देखेंगे कि हम सरकारकी प्रजा भी नहीं हैं। क्योंकि विना प्रजाके राजा नहीं होता।

ये उपाय हैं जो हमें सफल वनावेंगे और ये विघ्न हैं जिनसे हमें सदा सावधान रहना चाहिए—और जिन्हें दूर करते रहनेकी सदा चेष्टा करनी चाहिए। जिससे

हमें इस पवित्र युद्धमें विजय मिले—हमारा मुख उज्ज्वल हो—हमारी वात रहे—और हमारे बुजुर्गोंका सम्मान रक्षित रहे।

२—इलाज।

मैं वैद्य हूँ। इलाज मेरा धन्धा है। वल्कि स्वभाव है। पाठकोंको आश्चर्य न करना चाहिए यदि मैं असहयोगके विघ्नोंके इलाजका भी जिक्र करूँ। मैं कुछ ऐसे नुसखे लिखता हूँ कि यदि ईश्वरने चाहा तो जिस रोग पर नुसखे लिखे हैं—वरावर फायदा करेंगे।

१—अराजकदलका इलाज—यदि वे सीधी रीतिसे असहयोगी न वनें तो माता पिता सम्वन्धी आदिका कोई आश्रय उन्हें न देना चाहिए। उनके वच्चोंको भी उन पर धकेल देना चाहिए और उनकी रक्षाका भार उनके परिजनोंको लेना न चाहिए, चाहे उन्हें कितना ही कष्ट हो। सम्भव हो तो उन्हें विवश कर रखना चाहिए। पर याद रहे कि उन्हें पुलिस या कानूनके सुपुर्द कभी न करना चाहिए, क्योंकि इन पर हमारा अविश्वास, अश्रद्धा और क्रोध है। इनके विरुद्ध ही हमारा युद्ध है।

२—नर्मदलका इलाज—इनकी मीटिंगमे शरीक न होना चाहिए। सम्भव हो तो जहाँ इनकी सभा हो उसके पास ही अपनी एक सभा करनी चाहिए जिससे हमारे पास मनुष्योंका झुकाव देख कर वे हताश हो जायँ। किसी भी चुनावमें उनके लिये वोट न देने चाहिए। वे जिस भी धन्धेको करते हों उसमे प्रजाको उनसे असहयोग करना चाहिए। वारम्वार प्रजाकी भीडको उनके द्वार पर धन्ना दे कर असहयोग-नेता वननेको हट और आग्रह करना चाहिए। पर उनके साथ द्वेष, अपमान या विद्रोह हरगिज न करना चाहिए।

३—तलवारवालोंका इलाज—इनकी स्त्री और माताओंको उनकी तलवार छीन लेनी चाहिए और उन्हें शुद्ध असहयोगी वनानेके लिये स्वय व्रत उपवास करने चाहिए। हो सके तो उन्हें स्वयं (चाहे वे कैसी ही पर्दानशीन हों) असहयोगी वननेको तैयार हो जाना चाहिए और जरूरत पडने पर हो ही जाना चाहिए। देशकी वहनोंको राखी भेज कर इन्हें भाई वनाना और अपनी वात रख कर तलवार म्यानमे रखानेका वचन लेना चाहिए। स्मरण रहे तलवारके धनी वीर सिवा स्त्रियोंके और किसीसे नहीं हारते—स्त्रियोंके

आगे उनकी सारी सिट्टी गुम हो जाती है । स्त्रियोंको यह बात अच्छी तरह समझ कर उन्हें परास्त करना चाहिए। और उन्हें हिला हिला कर असहयोगके वन्धनमे बॉध देना चाहिए।

४—रायबहादुर, राजा वहादुर और जमींदार आदि—सरकारके दिये हुए किसी भी टाइटिलको इनसे प्रत्यक्ष या परोक्ष बातचीत करती बार न प्रयोग किया जाय। यथाशक्ति इनके प्राइवेट नोकरों (खास कर व्यवसाय-सम्बन्धी) को एकदम नौकरी छोड देनी चाहिए। और आवश्यकता होने पर रसोइये, खिदमतगार आदि भी नौकरी छोड कर इनके घमण्डको नीचा करें। उनके मकानोमें जो भाडौती रहते हों उन्हे किराया देनेसे और इनकी जमीन पर जो रैयत हो उसे मालगुजारी देनेसे और खाली करनेसे इन्कार कर देना चाहिए । धोबियों, दर्जियों आदिको उनके विदेशी वस्त्र धोने और सीनेसे इन्कार कर देना चाहिए। सर्वसाधारणको अपने नोकरों और वच्चोंके नाम वहुतायतसे इन उपाधियोंवाले रखना चाहिए और इन्हीं नामोसे उन्हें खुल्लमखुल्ला पुकारना चाहिए। जैसे—ओ ! रायबहादुर, अरे ! दीवानवहादुर, इत्यादि।

५—विदेशी कपड़ों आदिके व्यापारियोंका इलाज—उनका जाति-व्यवहार एकदम वन्द कर दिया जाय, उनसे कोई माल न खरीदे। उनकी दूकान पर स्वयंसेवक नियत किये जायॅ जो ग्राहकोंको नम्रता-पूर्वक वहाँसे माल न लेनेकी प्रार्थना करें। उनके हाथमें तरह तरहके उपदेश-मय वाक्य लिखी झण्डिया हों और उनकी पूरी पोशाक पर भी यथासम्भव इवारत लिखी हो जिससे कि आकर्षक वन सकें। उनकी दूकानके कुल कर्मचारी—मुनीम गुमाश्ते—नौकरी छोड दें। हम्माल मजूर माल उठानेसे इन्कार कर दें।

६—लीडरोंका इलाज—जो लीडर असहयोगमें शरीक न हो उसके लिये प्रजाकी ओरसे वरावर सभा करके ऐसे प्रस्ताव पास किये जायॅ जिससे उन्हे मालूम हो कि यह वात जाहिर की जा रही है कि वे प्रजाके प्रतिनिधि नहीं हैं। प्रजाके डेपुटेशन उनसे मिल कर प्रार्थना करें कि वे अपने विचारोको प्रजाका पक्ष लेकर प्रजाकी ही वात कहें । यदि वे अपने स्वतन्त्र मतका पोषक व्याख्यान दें तो जनताको उसे नहीं सुनना चाहिए—उसमे वाधा देनी चाहिए—दनादन ताली पीटना चाहिए। परन्तु अपमान और असह्यताका व्यवहार न करना चाहिए।

अखबारवालोंका इलाज—जो असहयोगके विरुद्ध हो उसकी ग्राहकीसे इन्कार कर देना चाहिए। जगह जगह व्याख्यान देकर उसे न पढ़नेको और न खरीदनेको लोगोंको समझाना चाहिए। उसमें जो विज्ञापन छपते हैं उनके मालिकोंसे अपने विज्ञापन न छपानेकी प्रार्थना करनी चाहिए। उनके खण्डनोंके लेख और पॅम्फ्लेट छपा छपा कर बाँटना चाहिए।

इनके सिवा सत्याग्रह-खण्डके पंचम अध्यायमें जिन मोर्चोंका जिक्र है उनका यथावसर पालन करना चाहिए।

चौदहवाँ अध्याय।

अन्तकी बात।

आयर्लैंन्ड और हमारी आकाक्षाएँ एक हैं। हमारी ही तरह वह भी आत्मरक्षाके युद्धके लिये सर्वस्व होम देनेको तैयार है। मुझे यह कहते कुछ भी सकोच नहीं होता कि वह इस युद्धमें हमसे अधिक वीरता और तेजस्विताका परिचय दे रहा है। गवर्नमेन्टका सिर उसके सामने झुक गया है। गवर्नमेन्टने उसके साथ सन्धिका प्रस्ताव किया था, उसकी शर्तोंमें थोडा दवाव था। इसी कारण तेजस्वी लोगोंने उसे अस्वीकार कर दिया। प्रमुख मि० डी वेलेराका कहना है कि "आयर्लैन्ड्को वेवकूफ नहीं वनाया जा सकता। हम इन शर्तोंको स्वीकार नहीं कर सकते और न करेंही-गे। हम स्वतन्त्रताके संग्राममें अपना सर्वस्व होम देनेके लिये तैयार हैं।"

मेकस्विनीका वलिदान इस शताव्दीका सवसे उज्ज्वल उदाहरण है। इसकी मैं केवल गुरु तेगवहादुरके वलिदानसे ही उपमा दे सकता हूँ। और तेगवहादुरके वलिदानके प्रभावसे जैसे सिखधर्म सिंहत्वको प्राप्त हुआ वैसे ही आयर्लैन्डको भी अपने देशके प्राणका भरपूर मूल्य मिलेगा। भारतका युद्ध यद्यपि अहिंसात्मक और सत्याग्रहके आधार पर था, पर हिंसक योद्धाओंमें जो मेकस्विनीने आदर्श दिया उसके सामने सचमुच भारतका आत्मवल फीका पड गया। हम यदि धर्मको समझते

हैं तो हमे यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि धर्मकी रुसे केवल मेकस्विनीके कारण ही आयलैण्ड हमसे प्रथम स्वावलम्बनके योग्य प्रमाणित हो गया है। और हमारे राजनैतिक कैदियोको उस तेजस्वीका अनुकरण करनेके लिये अपनी आत्माओंमें वलका सचार करना चाहिए।

मैं यह मानता हूँ कि पकडे जाने पर निरुपद्रव अपनेको सौंप देना और दण्डित हो कर शान्तिसे जेल्मे चले जाना सत्याग्रह-धर्मके अनुरुप है। परन्तु जेलमे जाकर अन्न-जल ग्रहण करना और अधिकारियोंकी आज्ञानुसार परिश्रम करना मैं अनुचित तथा सत्याग्रह-धर्मके प्रतिकूल समझता हूँ। जब हमें यह विश्वास है कि हम निरपराध जेलमें आये हैं तव हमारा यह क्रर्तव्य है कि जेलमें भी अपना युद्ध करें। हम अन्न-जल न ग्रहण करें, जब तक कि हम स्वतन्त्र न कर दिये जायँ। हम चोरी नहीं करते, व्यभिचार नहीं करते, हत्या नहीं करते, पाप नहीं करते तव जेलमे क्यों जाते हैं? स्वदेश-प्रेम और स्वाधीनताकी चाहके कारण? क्या यह अधिकारियोंका अत्याचार नहीं है? और क्या हमें उन्हें अत्याचार करनेमें सहायक होना चाहिए? निरपराध आदमी जेलमें अधिकसे अधिक ६० दिन रह सकता है। इसके वाद उसे कोई वन्दी कर ही नहीं सकता—यह मेकस्विनीने हमें उत्कट उदाहरणसे समझा दिया है।

ऊपर जो मि० डी विलेराका वीरता-पूर्ण उत्तर है वह हमारे लिये दूसरे दर्जेका आदर्श है। आशावादी लोग इन दोनों वातोको देखे और समझे कि त्याग, स्वावलम्वन, वीरता एक और चीज है, और हमारे देखते ही देखते हिंसाशील पुरुष उसमें हमसे आगे वढे जाते हैं, यह देख कर भी हम सर्वथा त्यागी, वीर और निर्भय न वनें तो हमारी मौत है। और सिर पर खडी है।

आयर्लेन्डके विषयमे हाउस आफ लार्डसमें स्पष्ट कह दिया गया है कि हम आयर्लेन्डसे भारीसे भारी संग्राम करेंगे और उसे कभी साम्राज्यसे अलग न होने देंगे।

भारतवर्ष अभी तक शायद अँगरेजोंकी दृष्टिमें गुलाम—डरपोक—लोगोसे भरा हुआ देश है। इसमे अभी वहाँ यही चरचा चल रही है कि भारतको दवाना चाहिए, अराजकता मिटानी चाहिए। परन्तु जव अँगरेजोंको यह पता लगेगा कि वास्तवमें भारत वीर है, निर्भय है और अपने स्वत्वके लिये सर्वस्व होम देनेके

जिन्होने राजाका विरोध किया। परन्तु न्यायका विरोध पाप है। वे लोग चाहे राजा हो या प्रजा सदा घृणाकी दृष्टिसे देखे गये हैं जिन्होंने न्यायकी हत्या की है।

हम राजभक्त नहीं हैं, हम न्यायभक्त हैं। राजा अगर न्याय पर है तो हम उसके भक्त हैं, प्रजा यदि न्याय पर है तो हम उसके भक्त हैं और शत्रु यदि न्याय पर है तो हम उसके भक्त हैं—यही हमारे मनकी सत्य वात है—यही हमारे धर्मकी साक्षी है। और हम इस वचन पर दृढ रह कर कट-मरनेको तैयार हैं।

परन्तु ब्रिटिश सरकार हमें जवरदस्ती राजभक्त वनाना चाहती है। ब्रिटिश न्यायकी किताबोंमें राजाके प्रति वुरे भाव प्रकट करना—चाहे वे सच्चे भी क्यों न हो—अपराध माने गये हैं। यह एक ऐसा अनाचार है जिसके विरोधके लिये हममें सबसे अधिक दृढ़ताकी आवश्यकता है। अँगरेज सरकार व्यर्थ ही अपनी प्रत्येक चालको न्याय कहती और उसे पोषण कराना चाहती है। हमारे अन्ध विश्वास, भक्ति और अधीनता पर यह असम्भव है।

तब परिणाम केवल एक है। युद्ध। अव मेल हो नहीं सकता। उसके मार्ग दूर हैं। मेल होनेके दो ही मार्ग हैं। या तो गवर्नमेन्ट अपना सर्वस्व नाश कर भिखारी वननेको तैयार हो जाय और या हम पूरे पूरे वेगैरत और तुच्छ वन कर सिर झुका लें।

मेरी समझमे दोनो असम्भव है। गवर्नमेन्टका राजीसे सर्वस्व देना असम्भव है। मगरमच्छ जो निगल गया है वह वस्तु विना पेट चीरे निकल ही सकती नहीं। और देशकी जो दशा हम देख रहे हैं—उसका जैसा उत्थान हो रहा है—उसे देखते देश सिर झुकावेगा यह भी समझमे नहीं आता—हर सूरतमें युद्ध ही अवश्यंभावी है। और वह वरावर जारी है। पिछले दिनो जव भारतके वाइसराय लार्ड रीडिंगने म० गान्धी और कुछ नेताओको वुला कर मेलकी वातचीत करनी चाही तव भी यही नतीजा निकला।

हर्षकी वात है कि म० गान्धीने जिस साहस, वीरता और ढंगसे युद्ध छेडा है वे उसे अपने अदम्य उत्साहसे वैसी ही तेजीसे वरावर निभा रहे हैं। मै उनके कार्यको देख कर दंग हूं, उनकी वक्तता देख कर दंग हूँ, उनके पैतरेकी सफाई, नीति और क्रम देख कर दंग हूँ—'न भूतो न भविष्यति'। पहले वे रोगी थे, आशा नहीं थी कि इतना परिश्रम कर सकेंगे। पर ज्यों ज्यों परिक्षाका पहाड़ उनके सिर पर पडता है त्यो त्यों उनका शरीर

बलिष्ठ और स्वस्थ होता है, मानों ईश्वरीय ज्योति उनमे चमक पैदा कर रही है। वह धुनका मतवाला योद्धा अपनी कठिन प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए अडिग युद्धमें डट रहा है। कदाचित् ही ऐसा कोई महापुरुष पैदा हुआ हो जो धर्म और राजनीति दोनोंको इस खूबीसे पालन कर रहा है। यह हमारा सौभाग्य है। हमारी बराबर कोई अभागा न होगा यदि ऐसा जगन्मान्य सेनापति पाकर भी हम हारें। और अगर हारे तो अतल पातालके सिवा कहीं ठिकाना न मिलेगा—पूरा पूरा सर्वनाश होगा। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए।

ऐसी दशामे हमारा यह धर्म है, बल्कि सकट कालका कर्तव्य है कि सब स्वार्थ—सब प्रलोभन—सब दुर्बलताएँ—सब द्वेष, ईर्षा, फूट—भूल कर एक मन, एक वचन, एक प्राणसे इस युद्धसे जूझ मरें। दिगन्तको कम्पायमान करती हुई हमारी आवाजें निकले —"कार्यं वा साधयाम शरीरं वा पातयाम।"

ईश्वर हमें क्रोध, हिंसा, हत्या, द्वेष, नीचता और पापसे बचावे। हमें विजय दे, धैर्य दे, साहस दे और मार्ग दे। हम उठे, जियें, सुखी हों। हम अन्तमें रवीन्द्रके शब्दोंमें ईश्वरसे प्रार्थना करके अपना ग्रन्थ समाप्त करते हैं—

"जहाँ मन भयसे परे है, जहाँ मस्तक ऊँचा है, जहाँ स्वतन्त्र ज्ञान है, जहाँ उन्नति छोटी छोटी घरेलू दीवारोंमें नहीं रोकी गई है, जहाँ हृदयके अन्तर-तम प्रदेशसे सत्यकी अमृतमयी धारा निकलती है, जहाँ अनवरत परिश्रम उन्नति-स्थलकी ओर बाँह फैलाये हुए हैं, जहाँ बुद्धिके निर्मल और पवित्र स्रोतने अपना मार्ग निरर्थक व्यवहारोंके भयाकन रेगिस्तानमें नहीं खो दिया है, जहाँ मान-सिक प्रवाह पवित्र विचार और कर्मके विस्तीर्ण मैदानमें वह रहा है, जहाँ हृदय आपकी अखंड सुधा-धारा-प्रवाहिनी सौम्य मूर्तिको धारण करनेके लिये प्रस्तुत है और जहाँ इन्द्रियाँ आपके सर्व-स्वरूपसे भक्ति-पूर्वक सेवा करनेके लिये कटि-बद्ध हैं हे मेरे स्वामी! आनन्द और स्वतन्त्रताके उस शिखर पर मेरा देश पहुँचे।

ओऽम् शान्ति। शान्ति। शान्ति।



९ जीवन और श्रम । परिश्रम करनेसे घबडानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए संजीवनी शक्तिकी दाता । श्रम कितने महत्त्वकी वस्तु है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा । मूल्य १॥), स० १॥।≈)

१० प्रफुल्ल (नाटक) । हमारे घरों और समाजमे जो फूट, स्वार्थ, मुकद-मेबाजी, ईर्षा-द्वेष आदि अनेक दोषोने घुस कर उन्हें नरक-धाम वना दिया है उनके सशोधनके लिए महाकवि गिरीश बावूके प्रफुल्ल जैसे उत्कृष्ट सामाजिक नाटकोंका घर-घरमे प्रचार होना चाहिए । मूल्य १≈)

११ लक्ष्मीबाई । झॉसीकी रानीकी यह जीवनी बडी खोजके साथ लिखी गई है । सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि " केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए । " मूल्य १।) रु०, सजिल्दका १॥।)

१२ पृथ्वीराज (नाटक) । भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चौहानका वीररस-प्रधान चरित्र इसमे चित्रित किया गया है । मू० ॥।)

१३ महात्मा गॉधी । बहुत कुछ परिवर्द्धित दूसरा सस्करण । हिंदी-साहित्यमें यह बहुत वडा और अपूर्व ग्रथ है । इसमे २५० पृष्ठोमें महात्माजीकी विस्तृत जीवनी और ५५० पृष्ठोमें महात्माजीके १६० महत्व-पूर्ण व्याख्यानो और लेखोका सग्रह है। यदि आप देशकी सच्ची हालत जानना चाहते हैं, महात्मा गॉधीके अलौ-किक आत्मवल तथा सत्याग्रहका सच्चा रहस्य जानना चाहते हैं और उनके आध्या-मिक जीवनका महत्त्व समझना चाहते हैं तो इस ग्रन्थरत्नका स्वाध्याय, अभ्यास और मनन कीजिए । इससे आपकी सोई सब आत्मशक्तियॉ जाग्रत हो उठेंगी और आप अपने भीतर एक अपूर्व दिव्य ज्योतिके दर्शन करेंगे । मू० ४॥) रु० ।

१४ वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति ? यह भी गिरीशचंद्र घोषके एक उत्कृष्ट नाटकका अनुवाद है । इसमे विधवा-विवाहके विषयमे बडा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र खींचा गया है । मू० ॥।≈), सजि० १।-)

१५ आत्मविद्या । नये ढगसे लिखा हुआ वेदान्त विषयका यह अपूर्व ग्रथ है । इसमे सक्षिप्तमें पर वडी सुन्दरताके साथ वेदान्तके महान् ग्रंथ योगवाशिष्ठका सार दे दिया गया है । अनुवादक पं० माधवराव सप्रे बी० ए० । मू० २), २॥) रु० ।

१६ सम्राट् अशोक । यह एक उत्कृष्ट और भाव-पूर्ण उपन्यास है । इसमें अशोकका विश्वप्रेम, महात्मा मोग्गली-पुत्र तिष्य और श्रेष्ठी उपगुप्तकी पर-हित-साधनकी समुज्ज्वल भावनाऍ, कुमार वीताशोकका भ्रातृ-प्रेम, प्रमिलाका कारस्थान

और इन्दिरा तथा जितेन्द्रका स्वर्गीय प्रेम आदिकी एकसे एक बढ़कर घटनाएँ पढ़ कर आप मुग्ध हो जायँगे। मूल्य २॥।) रु०, कपडेकी जि० ३।) रु०।

१७ बलिदान। महाकवि गिरीशचन्द्र घोषके एक उत्कृष्ट सामाजिक नाटकका अनुवाद। इसमे वर-विक्रयसे होनेवाली दुर्दशाका चित्र बडी कारुणिक भाषामे खींचा गया है, जिसे पढ कर मर्मान्तिक वेदनाके साथ आप रो उठेंगे। देश और जातियोंकी हालतसे आपका हृदय तलमला उठेगा। मू० १।) और १॥।) रु०।

१८ हिन्दूजातिका स्वातन्त्र्य-प्रेम। हिंदी-साहित्यमें स्वतंत्र लिखी हुई एक उत्कृष्ट पुस्तक। इसमे स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए बलिदान होनेवाली हिन्दूजातिकी वीरताका ज्वलत चित्र खींचा गया है, जिसे पढ कर आपका रोम रोम फडक उठेगा। भाषा बडी ओजस्वी है। मू० १), सजिल्द १॥)।

१९ चादबीबी। इसमे बीजापुरकी वीर-नारी बेगम चॉद-सुलतानाकी अद्भुत वीरता और क्षमता, देशके उछरते हुए बालकोंका जन्मभूमिके लिए अपूर्व बलिदान और मराठे वीर रघुजीकी हृदयको हिला देनेवाली स्वामी भक्ति आदिकी वीर और करुण कहानीको पढ कर आपका हृदय भर आयेगा। मू० १।) रु० पक्की जिल्दके १॥।) रु०

२० भारतमें दुर्भिक्ष। ले० पं० गणेशदत्त शर्मा। कई पुस्तकोंके आधार पर लिखा गया स्वतन्त्र ग्रंथ। भारतमें जबसे अँगरेजोंका प्रभुत्व स्थापित हुआ तबसे देशके सब व्यापार-धन्धे विदेशियोंके हाथ चले गये, देशकी कारीगरी, कला-कौशल बडी क्रूरतासे बरबाद कर दिये गये, अन्न, वस्त्र, दूध, घी, आदिकी क्रूर मँहगींने गरीब भारतीयोंको तबाह कर दिया, देशकी छाती पर दुर्भिक्ष-दानव लोमहर्षण ताडवनृत्य करने लगा, जिस भारतमें ७५० वर्षोमे केवल १८ अकाल पडे—सो भी देशव्यापी नहीं, प्रान्तीय—उसमें सिर्फ सौ वर्षोंमें ३१ दारुण अकाल पडे और उनमे सवा तीन करोड मनुष्य काल-कवलित हुए। देशकी इस रोमाञ्चकारी दुर्दशाको पढ कर पत्थरके जैसा हृदय भी दहल उठेगा। मू० १॥।), सजि० २।)

२१ स्वाधीन भारत। ले० महात्मा गाँधी। गुलामीकी बेड़ियोंसे जकडा हुआ भारत स्वाधीन कैसे हो सकता है, इसी विषय पर सत्य, दृढता और निर्भीकतासे महात्माजीने इस दिव्य पुस्तकमें विवेचन किया है। इस पुस्तकका घर-घरमें प्रचार होना चाहिए। मूल्य सिर्फ ॥।) आने।

२२ महाराज रणजीतसिंह। ले० प० नन्दकुमारदेव शर्मा। कोई २५-३० ग्रंथोंके आधार पर लिखा गया रणजीतसिंहका स्वतंत्र और महत्त्व-पूर्ण जीवनचरित। इसे पजाबका सौ वर्षोंका इतिहास समझिए। पंजाबमें जब चारो ओर खून-खराबी

९ जीवन और श्रम। परिश्रम करनेसे घबडानेवाले और परिश्रम करनेको बुरा समझनेवाले भारतके लिए संजीवनी शक्तिकी दाता। श्रम कितने महत्त्वकी वस्तु है, यह इसे पढ़नेसे मालूम होगा। मूल्य १॥), स० १॥।≈)

१० प्रफुल्ल (नाटक)। हमारे घरों और समाजमे जो फूट, स्वार्थ, मुकदमेवाजी, ईर्षा-द्वेष आदि अनेक दोषोने घुस कर उन्हें नरक-धाम बना दिया है उनके संशोधनके लिए महाकवि गिरीश बाबूके प्रफुल्ल जैसे उत्कृष्ट सामाजिक नाटकोंका घर-घरमे प्रचार होना चाहिए। मूल्य १≈)

११ लक्ष्मीबाई। झाँसीकी रानीकी यह जीवनी बडी खोजके साथ लिखी गई है। सरस्वतीके सम्पादकका कहना है कि " केवल इसी पुस्तकके लिए मराठी सीखनी चाहिए। " मूल्य १।) रु०, सजिल्दका १।।।)

१२ पृथ्वीराज (नाटक)। भारतके सुप्रसिद्ध वीर पृथ्वीराज चौहानका वीररस-प्रधान चरित्र इसमे चित्रित किया गया है। मू० ।।।)

१३ महात्मा गाँधी। वहुत कुछ परिवर्द्धित दूसरा सस्करण। हिंदी-साहित्यमें यह वहुत वडा और अपूर्व ग्रंथ है। इसमें २५० पृष्ठोमें महात्माजीकी विस्तृत जीवनी और ५५० पृष्ठोंमें महात्माजीके १६० महत्व-पूर्ण व्याख्यानो और लेखोका सग्रह है। यदि आप देशकी सच्ची हालत जानना चाहते हैं, महात्मा गाँधीके अलौकिक आत्मबल तथा सत्याग्रहका सच्चा रहस्य जानना चाहते हैं और उनके आध्यात्मिक जीवनका महत्त्व समझना चाहते हैं तो इस ग्रन्थरत्नका स्वाध्याय, अभ्यास और मनन कीजिए। इससे आपकी सोई सब आत्मशक्तियाँ जाग्रत हो उठेंगी और आप अपने भीतर एक अपूर्व दिव्य ज्योतिके दर्शन करेंगे। मू० ४॥) रु०।

१४ वैधव्य कठोर दंड है या शान्ति? यह भी गिरीशचद्र घोपके एक उत्कृष्ट नाटकका अनुवाद है। इसमे विधवा-विवाहके विपयमे वडा ही मार्मिक और हृदयको हिला देनेवाला चित्र खींचा गया है। मू० ।।।≡), सजि० १।-)

१५ आत्मविद्या। नये ढंगसे लिखा हुआ वेदान्त विषयका यह अपूर्व ग्रथ है। इसमे सक्षिप्तमें पर वडी सुन्दरताके साथ वेदान्तके महान् ग्रंथ योगवाशिष्ठका सार दे दिया गया है। अनुवादक पं० माधवराव सप्रे बी० ए०। मू० २), २॥) रु०।

१६ सम्राट् अशोक। यह एक उत्कृष्ट और भाव-पूर्ण उपन्यास है। इसमें अशोकका विश्वप्रेम, महात्मा मोग्गली पुत्र तिष्य और श्रेष्ठी उपगुप्तकी पर-हित-साधनकी समुज्ज्वल भावनाएँ, कुमार वीताशोकका भ्रातृ-प्रेम, प्रमिलाका कारम्थान

और इन्दिरा तथा जितेन्द्रका स्वर्गीय प्रेम आदिकी एकसे एक बढ़कर घटनाएँ पढ़ कर आप मुग्ध हो जायँगे। मूल्य २॥।) रु०, कपड़ेकी जि० ३।) रु०।

१७ बलिदान। महाकवि गिरीशचन्द्र घोषके एक उत्कृष्ट सामाजिक नाटकका अनुवाद। इसमे वर-विक्रयसे होनेवाली दुर्दशाका चित्र बड़ी कारुणिक भाषामे खींचा गया है, जिसे पढ कर मर्मान्तिक वेदनाके साथ आप रो उठेंगे। देश और जातियोंकी हालतसे आपका हृदय तलमला उठेगा। मू० १।) और १॥।) रु०।

१८ हिन्दूजातिका स्वातन्त्र्य-प्रेम। हिंदी-साहित्यमें स्वतंत्र लिखी हुई एक उत्कृष्ट पुस्तक। इसमे स्वतंत्रता-प्राप्तिके लिए बलिदान होनेवाली हिन्दूजातिकी वीरताका ज्वलंत चित्र खींचा गया है, जिसे पढ़ कर आपका रोम रोम फडक उठेगा। भाषा बडी ओजस्वी है। मू० १), सजिल्द १॥)।

१९ चांदबीबी। इसमें बीजापुरकी वीर-नारी बेगम चाँद-सुलतानाकी अद्‌भुत वीरता और क्षमता, देशके उछरते हुए बालकोंका जन्मभूमिके लिए अपूर्व बलिदान और मराठे वीर रघुजीकी हृदयको हिला देनेवाली स्वामी भक्ति आदिकी वीर और करुण कहानीको पढ कर आपका हृदय भर आयेगा। मू० १।) रु० पकी जिल्दके १॥।) रु०

२० भारतमें दुर्भिक्ष। ले० पं० गणेशदत्त शर्मा। कई पुस्तकोंके आधार पर लिखा गया स्वतन्त्र ग्रंथ। भारतमें जबसे अँगरेजोंका प्रभुत्व स्थापित हुआ तबसे देशके सब व्यापार-धन्धे विदेशियोंके हाथ चले गये, देशकी कारीगरी, कला-कौशल बडी क्रूरतासे बरबाद कर दिये गये, अन्न, वस्त्र, दूध, घी, आदिकी क्रूर मँहगीने गरीब भारतीयोंको तबाह कर दिया, देशकी छाती पर दुर्भिक्ष-दानव लोमहर्षण ताडवनृत्य करने लगा; जिस भारतमें ७५० वर्षोंमे केवल १८ अकाल पडे—सो भी देशव्यापी नहीं, प्रान्तीय—उसमें सिर्फ सौ वर्षोंमें ३१ दारुण अकाल पडे और उनमे सवा तीन करोड मनुष्य काल-कवलित हुए! देशकी इस रोमाञ्चकारी दुर्दशाको पढ कर पत्थरके जैसा हृदय भी दहल उठेगा। मू० १॥।), साजि० २।)

२१ स्वाधीन भारत। ले० महात्मा गाँधी। गुलामीकी बेडियोंसे जकडा हुआ भारत स्वाधीन कैसे हो सकता है, इसी विषय पर सत्य, दृढता और निर्भीकतासे महात्माजीने इस दिव्य पुस्तकमें विवेचन किया है। इस पुस्तकका घर-घरमें प्रचार होना चाहिए। मूल्य सिर्फ ॥।) आने।

२२ महाराज रणजीतसिंह। ले० पं० नन्दकुमारदेव शर्मा। कोई ७५-८० ग्रंथोंके आधार पर लिखा गया रणजीतसिंहका स्वतंत्र और महत्त्व-पूर्ण जीवनचरित। इसे पंजाबका सौ वर्षोंका इतिहास समझिए। पंजाबमें जब चारों ओर गुन-गर्दी

और मारकाटका बाजार गर्म था तब अपनी लोकोत्तर वीरतासे पंजाब-केसरी सारे पजाबको विजय करके उस पर एकाधिपत्य शासन स्थापन किया था। उन्हीं पंजाब-केसरीकी यह वीररस-पूर्ण जीवनी प्रत्येक देशाभिमानीको पढनी चाहिए। मू० १॥।) रु०, सजि० २।) रु०

२३ सम्राट् हर्षवर्धन। ले० सम्पूर्णानद बी० एस० सी०। भारतके अन्तिम आर्य-सम्राट् परम दानवीर हर्षवर्द्धनका जीवन-चारित। मू ॥) आ०

२४ कादम्बरी (हिन्दी अनुवाद)। अनुवादक, श्रीयुत पं० ऋपीश्वर-नाथ भट्ट बी० ए० एल एल० बी०। संस्कृतके गद्य साहित्यमे इस ग्रंथका आसन सर्वोच्च है। महाकवि बाणभट्टकी अमृतमयी लेखनीसे यह सुन्दर सरस दिव्य चित्र अंकित हुआ है। महाकवि रवीन्द्रनाथके शब्दोंमें—" जो इस चित्रके सौन्दर्यके आस्वादनसे वंचित है वह नि सदेह दुर्भाग्य है।" इस स्वर्गीय चित्रका अद्भुत निर्माण-कौशल देखनेके लिए सात समुद्र पार तकके बडे बडे विद्वान् भारत आते हैं और इसकी दिव्य रचना देख कर परम आनन्द लाभ करते हैं। आप चिन्तित होगे, सकल्प-विकल्पसे होगे, शोकमे होगे, दु खी होगे, व्याकुलतासे घिरे होगे और ऐसी हालतमे कादम्बरी उठा कर पढने लगेंगे तो तुरंत आप सब शोक, दु ख, चिन्ता आदि भूल जावेगे और क्षणभरके लिए मानो अपनेको स्वर्गमे देखेगे। पुस्तकके प्रारंभमें महाकवि रवीन्द्रनाथकी कादम्बरी पर की हुई एक मार्मिक और महत्त्व-पूर्ण समालोचना भी दे दी गई है। इसके अनुवादकी सुन्दरता और सरलताके विषयमें श्रीयुत पं० चतुरसेनजी शास्त्रीने अपनी सम्मति दी है कि " कादम्बरीका इससे सरल अनुवाद हो ही नहीं सकता।" पृष्ठ-सख्या लगभग ४५०। मूल्य २॥।) रु० पक्की जि० ३।) रु०

२५ सत्याग्रह और असहयोग। हिन्दीके प्रतिभाशाली लेखक श्रीयुत पं० चतुरसेनजी शास्त्री द्वारा बडी ओजस्वी भाषामे लिखा हुआ, नई कल्पना, नये विचारोंसे परिपूर्ण सर्वथा मौलिक ग्रथ। यह ग्रथ आपको देशके नाम पर जूझ मरनेका ऐसा ढंग बतलायगा जिसमे आत्महत्या नहीं है, हिंसा नहीं है, अत्याचार नहीं है, पाप नहीं है, छल नहीं है, और जिसका प्रत्येक अक्षर लोहेकी कलमसे लिखा गया है. प्रत्येक अक्षरमे हृदयकी धधकती आग है, प्रत्येक अक्षर निर्भय वीरताकी ओर गया है। हिन्दी ही नहीं, किन्तु किसी भाषामें इस विषय पर इतना बडा और ऐसा ओजपूर्ण ग्रथ नहीं छपा। जिसे देशके नाम पर मरनेकी होस है उसे तत्काल एक प्रति अपने हृदयमें कर लेनी चाहिए,—फिर न जाने क्या हो! पृष्ठ-सं० २७५, मूल्य १॥।) रु०, सजि० २।) रु०।